संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला का 107वाँ पुष्प

अध्यापक शिक्षा में मूल्यमीमांसा वर्तमान परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियाँ

प्रधान सम्पादक
प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति

अध्यक्ष, सम्पादक मण्डल
प्रो. रमेश प्रसाद पाठक
संकायाध्यक्ष एवं विभागाध्यक्ष
शिक्षाशास्त्र विभाग



श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानित विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली-110016

संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला का 107वाँ पुष्प

अध्यापक शिक्षा में मूल्यमीमांसा
वर्तमान परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियाँ

शिक्षा सङ्काय द्वारा आयोजित

संगोष्ठी-कार्यवृत्त
(Seminar Proceedings)

प्रधान सम्पादक
प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति

सम्पादक मण्डल
प्रो. रमेश प्रसाद पाठक
प्रो. नागेन्द्र झा, प्रो. भास्कर मिश्र
प्रो. रचना वर्मा मोहन, डॉ. अमिता पाण्डेय भारद्वाज

उप सम्पादक मण्डल
प्रो. के. भारतभूषण
डॉ. सदन सिंह
डॉ. विमलेश शर्मा
डॉ. एम. जयकृष्णन
डॉ. सुरेन्द्र महतो
डॉ. शिवदत्त आर्य
प्रो. रजनी जोशी चौधरी
डॉ. कुसुम यदुलाल
डॉ. मीनाक्षी मिश्र
डॉ. मनोज मीणा
श्री जितेन्द्र कुमार
श्रीमती अनीता राय

प्रकाशक:
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानित-विश्वविद्यालय:)
कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्
नवदेहली-११००१६

आई.एस.बी.एन : 81-87987-83-9

प्रकाशन वर्ष - 2017

मूल्यम् : ₹ 325/-

मुद्रक:
अमरप्रिंटिंगप्रैस:
8/25 विजयनगरम्, देहली-११०००९
दूरभाष: : 9871699565, 8802451208

नैवद्यम्

अध्यापकशिक्षायां मूल्यमीमांसा वर्तमानपरिप्रेक्ष्येऽत्यन्तं महत्त्वपूर्णां भूमिकां निर्वहति। साम्प्रतं मूल्यह्रासता सर्वत्र दृग्गोचरो भवति मूल्यानां संरक्षणप्रासङ्गिकता नितरां महत्त्वपूर्णास्ति। शिक्षकनिर्माणप्रसङ्गे सर्वादौ मूल्यमीमांसा उपकरोतीति प्रतीयते। मनुस्मृतेरनुगुणं धर्मस्य दश लक्षणानि मूल्यरक्षकाणि एव। भारतीयपरम्परापरिपोषकसंस्कारा मूल्यरक्षका एव। शिक्षायां सम्प्रति चरित्रनिर्माणमेव महत्त्वभूतं पदक्षेपं करोति। प्रसिद्धं हि आभाणकमिदं- **'वृत्तं यत्नेन संरक्षेत्'** इति मूल्यमेव व्यवस्थितं समाजं सुरक्षितम् उन्नतिपरायणं च करोति।

शिक्षाविभागेण ''अध्यापकशिक्षायां मूल्यमीमांसा वर्तमानपरिप्रेक्ष्ये रणाह्वानञ्च'' इति विषये आयोजिता संगोष्ठी अत्यन्तं व्यवहारिकी वर्तते। अत्र विद्वद्भिः उपस्थापिताः विषयाः समाजे मूल्यरक्षणाय भारतीय-परम्परासंवर्धनाय च महत्त्वपूर्णां भूमिकां निर्वक्ष्यति इति मे दृढीयान् विश्वासः। अस्मिन् विषये संगोष्ठीसमायोजनाय शिक्षाविभागं प्रति भूरिशः अभिनन्दनानि यत् तेन एवंभूतस्य प्रासङ्गिकस्य विषयस्य चिन्तनं विहितमिति।

पुस्तकरूपेण विदुषां नितरां परिपोषणात्मकविचाराणां प्रकाशनं सर्वेषाम् अन्तेवासिनां छात्राणां सामाजिकानां प्रेरणायै अनतिसाधारणां भूमिकां निर्वहेदिति, शुभकामनाः प्रयच्छन् ईश्वरं प्रार्थयमानः-

प्रो. रमेशकुमारपाण्डेयः
कुलपतिः

पुरोवाक्

इण् गत्यर्थकधातुत: अधि–उपसर्गकात् णिच्+ण्वुल् प्रत्यये कृते सति अध्यापकशब्दस्य निष्पत्तिर्भवति। तस्यार्थ: गुरु:, शिक्षक: वेदानामध्यापयिता, नैयायिकादयश्च। विष्णुस्मृत्यनुसारमध्यापक: द्विविधो भवति। आचार्य:, उपाध्यायश्च।

अत एवोक्तम्–

उपनीय तु य: शिष्यं वेदमध्यापयेत् द्विज:।
सकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्यं प्रचक्षते॥

आचार्यस्याधो लिखिता: गुणा: भवन्ति।

पर्यवदातश्रुतं परिदृष्टकर्माणं दक्षं शुचिं जितहस्तमुपकरणवन्तं सर्वेन्द्रियोपपन्नं प्रकृतिज्ञं प्रतिपत्तिज्ञमनुपस्कृतविद्यमनसूयकमकोपनं क्लेशक्षमं शिष्यवत्सलमध्यापकं ज्ञानदानसमर्थमित्येवं गुणो ह्याचार्य: सुक्षेत्रमार्त्तवो मेघ इव शस्यगुणै: सुशिष्यमाशु वैद्यगुणै: सम्पादयति। तमुपसृत्यारिराधयिषुरुपचरेदग्निवच्च देववच्च राजवच्च पितृवच्च भर्त्तृवच्चाप्रमत्तस्ततस्तत् प्रसादात् कृत्स्नं शास्त्रमधिगम्य शास्त्रस्य दृढतायामभिधानसौष्ठवस्यार्थस्य विज्ञाने वचनशक्तौ च भूय: प्रयतेत सम्यक्। शिक्षयति इति शिक्षा, विद्यां ददाति वा विद्या एव शिक्षा वर्तते। मीमांसाशब्दस्यार्थ: पूजितविचार:। ईशावास्योपनिषदि उक्तम्–

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्यस्विद्धनम्॥

अर्थात् ईश्वर: सर्वजन्तूनामात्मा सन्प्रत्यगात्मतया तेन स्वेन रूपेण आत्मेनेशा वास्यमाच्छाद्यते। पृथिव्यां नामरूपकर्माख्यं विकारजातं परमार्थसत्यात्मभावनया व्यक्तं स्यात्। एवं रूपेण ईश्वर एव चराचरजगत: आत्मा वर्तते। पुत्राद्येषणात्रयसंन्यास एवाधिकारो न कर्मसु। अत: त्यागेन

पालयेथा: इत्यपि मानवानां मूल्यं वर्तते। श्रेयप्रेयौ शब्दौ स्वार्थं प्रकाशयत:। तत्र यौ तदार्थौ विद्येते, तौ मनुष्यं परित: आगच्छत:। उभयं सम्परीक्ष्य विद्वान् पृथग् 2 करोति। विवेकी जन: प्रेयं परित्यज्य श्रेयं परिचिनोति। परन्तु मूढा: योगक्षेमस्य निमित्तं प्रेयं परिचिन्वन्ति। अविद्यायामन्तरे घनीभूत इव तमसि वर्तमाना पुत्रपश्वादितृष्णापाशशतै: वैष्ट्यमाना:। स्वयं धीरा: प्रज्ञावन्त: पण्डिता: शास्त्रकुशलाश्च मन्यमाना: अनेकरूपां जरामरणरोगादिदु:खै: परिगच्छन्ति अविवेकिन: दृष्टिविहीनेनैव विषमे पथि अनर्थमृच्छन्ति इति। ''अध्यापकशिक्षायांमूल्यमीमांसावर्त्तमानपरिप्रेक्ष्ये रणाह्वानञ्चेति'' विषयमाश्रित्य शिक्षाशास्त्रविभागेन राष्ट्रिया संगोष्ठी समायोजिता। तत: अध्यापकशिक्षाया: मूल्यमीमासाया: यानि तत्त्वानि भवन्ति तानि सर्वाणि समुपलब्धान्यत्र सन्ति। तेषां प्रकाशनेन शिक्षाशास्त्रिणां: अन्तेवासिनाञ्च कृते महदुपकारो भविष्यति। अत: शिक्षाशास्त्रविभागस्य अध्यापकामन्येषां विदुषाञ्च कृते कार्तज्ञ्यं बिभर्मि।

प्रो. हरेराम त्रिपाठी

मानविकी-आधुनिकज्ञानं शोधविभागाध्यक्षश्च

सम्पादकीय

शिक्षा प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसको अपनाकर मानव अपना सर्वाङ्गीण विकास करने में समर्थ हो पाता है। अध्यापक के लिए शिक्षा की प्रक्रिया में उच्च मूल्यों का समावेश कर उसके अन्तर्गत ऐसे कौशलों का विकास किया जाता है जिससे वह अपने अधिगमकर्त्ताओं का जीवन जीने की कला में दक्ष करता है तथा निर्माण में अपना अमूल्य योगदान देता है। 'विद्यया विन्दतेऽमृतम्' इस सुक्ति को भी चरितार्थ कर शिक्षा अमृत की प्राप्ति में सहायता करती है। श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ के शिक्षा संकाय द्वारा इसी शैक्षिक परम्परा को और उन्नत बनाने के लिए दिनांक 30 मार्च 2015 को एक राष्ट्रीय संगोष्ठी 'अध्यापक शिक्षा में मूल्य मीमांसा : वर्तमान परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियां' विषय पर आयोजित की गई। इस शोध संगोष्ठी में मुख्य अतिथि प्रो. श्रीधर वशिष्ठ जी ने सात्त्विक भावों के विकास में मूल्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा यह भी कहा कि चरित्र निर्माण में भी ये अत्यन्त आवश्य हैं। यह संगोष्ठी छः तकनीकी सत्रों एवं 3 समानान्तर तकनीकी सत्रों में सम्पन्न हुई। इस सम्पूर्ण संगोष्ठी में जिन शोध पत्रों का वाचन हुआ वे इस ग्रन्थ में संगृहीत किए गये हैं। इनमें प्रो. गोपीनाथ शर्मा जी, प्रो. वी.पी. भारद्वाज, प्रो. चांद किरण सलूजा, प्रो. लोकमान्य मिश्र जो, प्रो. आर. के. पाण्डेय जैसे विद्वानों के विचार प्रकाशित किए गए हैं।

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि इस संगोष्ठी में जो विचार एवं शोध पत्र प्रस्तुत हुए वे अध्यापक शिक्षा को वर्तमान समय में और आगे ले जाने में सक्षम होंगे।

इन शोध पत्रों के प्रकाशन से न केवल शिक्षा संकाय अपितु समग्र विद्यापीठ तथा समग्र शिक्षा जगत् का मार्ग दर्शन होगा। मै, इस अवसर पर सभी शिक्षाविदों के समक्ष यह ग्रंथ-पुष्प अर्पित करते हुए अपने को कृत-कृत्य मानता हूँ तथा सभी लेखकों को भी धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने अपने सारगर्भित लेखों को प्रस्तुत कर इस संगोष्ठी को सफल बनाया।

प्रो. रमेश प्रसाद पाठक
संकायाध्यक्ष एवं विभागाध्यक्ष
शिक्षाशास्त्र विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
नई दिल्ली-110016

प्रतिवेदन

अध्यापक शिक्षा में मूल्य मीमांसा: वर्तमान परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियां

शिक्षाशास्त्र विभाग द्वारा अध्यापक शिक्षा में मूल्य मीमांसा: वर्तमान परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियां विषय पर द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन कुल आठ सत्रों में किया गया। इस संगोष्ठी का शुभारम्भ दिनाकं 30 मार्च, 2015 को 10.30 बजे विद्यापीठ के मुख्य सम्मेलन कक्ष में उद्घाटन सत्र द्वारा हुआ। उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि प्रो. श्रीधर वशिष्ठ जी (पूर्व कुलपति, श्री ला.ब. शा.रा.सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली) तथा सारस्वत अतिथि **प्रो. गोपीनाथ शर्मा जी (पूर्व संकायाध्यक्ष एवं विभागाध्यक्ष, राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर)** थे। अतिथियों का स्वगत शिक्षा विभागाध्यक्ष प्रो. भास्कर मिश्र जी ने किया। अपने स्वागत भाषण में उन्होंने संगोष्ठी के उद्देश्यों एवं प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला तथा शिक्षक निर्माण प्रक्रिया में मूल्य मीमांसा के आधाभूत सिद्धान्तों पर अपने विचार व्यक्त किये। **प्रो. गोपीनाथ शर्मा जी** ने अपने सारस्वत सम्बोधन में ज्ञान, तत्त्व तथा मूल्य मीमांसा पर गहन चिन्तन को आवश्यक बताते हुए सकारात्मक मूल्यों के विकास पर बल दिया। साथ ही धर्म के दसों लक्षणों को अपनाना मूल्य विकास के लिए अपरिहार्य आवश्यकता बताया। विद्यापीठ की वित्त अधिकारी श्रीमती कल्पना सिंह जी ने मूल्य विकास हेतु

अनुशासन तथा प्रेमभाव को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बताया तथा इनको अपनाने पर विशेष बल दिया। मुख्य अतिथि **प्रो. श्रीधर वशिष्ठ जी** ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि सात्त्विक भावों को मूल्य विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमें पश्चिम का अंधानुकरण न करके अपनी भारतीयता को बनाये रखना है तथा युवा पीढ़ी को संस्कारो से सुसज्जित करना आवश्यक है। शिक्षा का उद्देश्य परीक्षा पास करना या रोजगार पाना ही न हो बल्कि शिक्षा छात्रों के चरित्र निर्माण में भी सक्षम होनी चाहिए। साथ ही मूल्य मीमांसा हेतु अध्यापकों द्वारा मूल्यों को व्यवहार में लाने की आवश्यकता पर बल दिया। सत्र के समापन पर सभी अतिथियों का धन्यवाद शिक्षा विभाग के पूर्व **विभागाध्यक्ष प्रो. नागेन्द्र झा** द्वारा ज्ञापित किया गया। सत्र का संचालन **प्रो. आर.पी.पाठक** द्वारा किया गया।

तकनीकी सत्र-1 में **मुख्य वक्ता प्रो. गोपीनाथ शर्मा जी** ने जीवन को व्यवहारिक पक्ष में मूल्यों को प्रयोग करने पर बल दिया तथा उदाहरणों द्वारा अपने कथनों की पुष्टि की। इसी क्रम में विभाग से **डॉ. रचना वर्मा मोहन** ने मूल्य शिक्षा पर बल दिया तथा अन्य शोधछात्र **विवेक कुमार** ने मूल्य विकास हेतु प्रभावी रचना कौशलों पर अपने विचार प्रस्तुत किये। तत्पश्चात **राजीव सेठी** ने अध्यापक की भूमिका को समस्या निदानात्मक के रूप में बताते हुए अध्यापक शिक्षा में मूल्य मीमांसा पर चर्चा की। अन्त में अगले वक्ता श्री **शिवदत्त आर्य** ने मूल्य युक्त अध्यापकों के निर्माण के सन्दर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किये। इस सत्र में अपने अध्यक्षीय भाषण में **प्रो. वशिष्ठ** ने अद्रोह को गुरु का लक्षण बताते हुए प्रायोगिक तथा सैद्धान्तिक पक्ष में समन्वय पर बल दिया। सत्र का संचालन **डॉ. मीनाक्षी मिश्र** द्वारा किया गया।

तकनीकी सत्र - 2 में विभाग से **डॉ. विमलेश शर्मा** ने अध्यापक शिक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रम में मूल्य मीमांसा पर अपने विचार प्रस्तुत किये। तत्पश्चात पौरोहित्य प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के निदेश **डॉ. रामराज उपाध्याय** ने अपने पत्रक द्वारा मूल्यों के संरक्षण व संवर्धन में धर्म के योगदान सम्बन्धित विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला। इस क्रम में **डॉ. चेतन वेदिया, आशा, श्री नवल ठाकुर, प्रशान्त नन्दा,** तथा **डॉ. ऋषिराज** ने मूल्य संकट एवं समाधान, अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य मीमांसा तथा अर्वाचीन व्यवस्था में अध्यापक से सम्बन्धित उपविषयों पर पत्रक प्रस्तुत किये। इस सत्र की अध्यक्षता **डॉ. गोपी नाथ शर्मा जी** ने की सत्र का संचालन **डॉ. कुसुम युदलाल** ने किया। तकनीकी समानान्तर सत्र–2 में शोध छात्रों तथा शिक्षाचार्य छात्रों द्वारा संगोष्ठी के सभी उपविषयों सम्बन्धित पत्रक प्रस्तुत किये गये। इस सत्र में कुल 9 पत्र प्रस्तुत किये गये सत्र का संचालन **श्री मनोज कुमार मीणा** द्वारा किया गया।

तकनीकी सत्र–3 **प्रो. नागेन्द्र झा** की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। मुख्य वक्ता के रूप में **प्रो. बी.पी. भारद्वाज जी** (विभागाध्यक्ष, अध्यापक शिक्षा विभाग, NCERT) ने संविधान में निहित मूल्यों पर चर्चा की। उन्होनें विभिन्न आयोगों तथा राष्ट्रिय पाठ्यक्रम संरचना 1975, 1988, 2000, 2005 तथा 2009 में वर्णित मूल्य शिक्षा में मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डाला तथा जस्टिस वर्मा कमीशन 2012 के संदर्भ में अध्यापक शिक्षा के स्वरूप पर अपने विचार व्यक्त किये। तत्पश्चात **डॉ. सुरेन्द्र महतो** ने मूल्य शिक्षण तथा शिक्षक व्यवहार पर अपने विचार प्रस्तुत किये तथा शोध छात्रा **सोनम जैन** ने मूल्य संकट तथा

उसके समाधानों पर प्रकाश डाला। अन्त में **प्रो. नागेन्द्र झा जी** ने अपने अध्यक्षीय सम्बोधन में मूल्यों के विकास में छात्र व गुरु के मध्य आत्मीयता के सम्बन्धों पर बल दिया। सत्र का संचालन **डॉ. भारत भूषण** ने किया। तकनीकी समानान्तर सत्र-3 में शोध छात्रों तथा शिक्षाचार्य छात्रों द्वारा विभिन्न उपविषयों पर 10 पत्र प्रस्तुत किये गये। यह सत्र **प्रो. आर.पी.पाठक जी** की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। तकनीकी सत्र-4 में मुख्य वक्ता **प्रो. चांद किरण सलूजा जी** (CIE, Delhi) ने अपने वक्तव्य में संवैधानिक मूल्यों की चर्चा करते हुए उनके व्यवहारिक उपयोग पर बल दिया। साथ ही शान्ति के लिए शिक्षा के महत्त्व को बताते हुए सजग व मानवीय समाज की स्थापना को आवश्यक बताया। इसी क्रम में विभाग से **डॉ. रजनी जोशी चौधरी** ने के ICT युग में मूल्यों के पोषण वं संरक्षण में विभिन्न युक्तियों पर अपने विचार प्रस्तुत किये। अगली वक्ता के रूप में विभाग से **डॉ. अमिता पाण्डेय भारद्वाज** ने मूल्यों के यथार्थ व सौन्दर्य पक्ष पर बल देते हुए अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य मीमांसीय दृष्टि हेतु अपेक्षित उपाय कौशलों की महत्ता पर प्रकाश डाला। तत्पश्चात **डॉ. मदन कुमार झा** ने मूल्यां के विकास में संस्कृत के योगदान पर अपने विचार प्रस्तुत किये।

शोध छात्रा **नविता** द्वारा भी मूल्य संकट तथा समाधानों पर विचार व्यक्त किये गये। इस सत्र की अध्यक्षता **प्रो. लोकमान्य मिश्र** जी ने की तथा संचालन **डॉ. रचना वर्मा मोहन** द्वारा किया गया।

तकनीकी सत्र-5 **प्रो. श्रीधर वशिष्ठ जी** की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। मुख्य वक्ता **प्रो. लोकमान्य मिश्र जी** ने मूल्यों की

आत्मसातीकरण तथा व्यावहारिक अनुप्रयोग पर बल दिया। तत्पश्चात् **डॉ. कुसुम यदुलाल जी** ने भारतीय संस्कृति में समाहित मानवीय मूल्यों पर अपने विचार प्रकट किये। इसी क्रम में विभाग से **श्री मनोज मीणा** ने अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्यों के महत्त्व पर अपना पत्र प्रस्तुत किया तथा **डॉ. जयकृष्णन** ने मूल्यों की आवश्यकता तथा परिष्करण को अनिवार्य बताया। तत्पश्चात शोध छात्र **राकेश गोतम, प्रभाकर पाण्डेय, केसरी, देशबन्धु, दीपा रानी** तथा **संतोष कुमार झा** ने मूल्य शिक्षा, संकट तथा समाधान, मूल्य शिक्षा में भाषा शिक्षण के स्थान पर प्रकाश डाला। इस सत्र का संचालन **डॉ. विमलेश शर्मा** ने किया।

तकनीकी सत्र-6 **प्रो. लोकमान्य जी** की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। प्रथम वक्ता के रूप में **प्रो. आर.के.पाण्डेय जी** ने प्रबुद्ध नागरिक के स्वरूप को बताया तथा युरोपीय भाषाओं का संस्कृत भाषा के सन्दर्भ में वर्णन किया। इसी क्रम में विभाग से **डॉ. मीनाक्षी मिश्र** ने मूल्य विकास में नैसर्गिक आधारों की चर्चा करते हुए इसमें बिन्दओं जानकारी, जागरूकता, अभिवृत्ति केशल, प्रतिभाग तथा मूल्यांकन पर बल दिया। तत्पश्चात **डॉ. मार्कण्डेयनाथ तिवारी** ने अध्यापक शिक्षा में मूल्यों के क्षरण पर प्रकाश डालते हुए गुरु के प्रति श्रद्धा को आवश्यक बताया। अगले वक्ता **श्री जितेन्द्र** ने अपने पत्र में मूल्यों के विकास में सामाजिक सजगता तथा नियन्त्रण को अनिवार्य माना तथा मीडिया की सकारात्मक भूमिका को महत्त्वपूर्ण बताया। अन्त में **हर्षवर्धन वशिष्ठ, सर्वेश कण्डवाल, गिरीश चन्द उपाध्याय, सर्वेश कुमार मिश्र, नीरज द्विवेदी, मायाराज उनियाल**, एवं **कालीशंकर मिश्र** ने अध्यापक शिक्षा में मूल्य शिक्षा के संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किये।

अपने अध्यक्षीय सम्बोधन में **प्रो. लोकमान्य मिश्र** जी ने सत्र में प्रस्तुत विभिन्न पत्रकों पर अपने सारगर्भित विचारों को व्यक्त करते हुए मूल्य संवर्धन के उपायों को व्यावहारिक रूप में अपनाने पर बल दिया। सत्र का संचालन **डॉ. अमिता पाण्डेय भारद्वाज** द्वारा किया गया।

द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में वैचारिक मंथन से प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार है-

1. अध्यापक शिक्षा के विभिन्न पक्षों यथा अध्यापक, छात्र, शिक्षण विधियां, पाठ्यक्रम आदि को मूल्य युक्त बनाना।
2. मूल्य संकट के विभिन्न आयामों पर विचार कर समाधानों को व्यवहार में लाना।
3. मूल्यों के विकास हेतु विभिन्न प्रभावी व्यूहरचनाओं का कक्षा शिक्षण में प्रयोग करने पर बल देना।
4. शिक्षक निर्माण प्रक्रिया में मूल्य मीमांसीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखना।
5. मूल्य संकट समाधान हेतु भारतीय उपागमों यथा-धर्म, चारों पुरुषार्थों, योग, सत्यं शिव सुन्दरम्, आत्म बोध, आत्म मुक्तता पर बल देना।
6. सात्त्विक भावों द्वारा मूल्यों का विकास करना।
7. भारतीय तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मूल्यों का विश्लेषण करके उपयुक्त मूल्यों का चयन करना।
8. नवाचारों के प्रयोग द्वारा मूल्य शिक्षा देना।

उपरोक्त विचारणीय बिन्दु अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम को अवश्य ही नया कलेवर प्रदान करेंगे तथा इस वैचारिक मंथन से प्राप्त निष्कर्षों का व्यावहारिक स्वरूप अध्यापक तथा छात्रों को एक मूल्यवान व्यक्तित्व बनाने में अवश्य सशक्त भूमिका निभायेंगे।

विषय सूची

संस्कृतम्

हिन्दी

English

संस्कृतवाङ्मये नीतिशिक्षायाः तत्त्वानि

प्रो. लोकमान्यमिश्रः

विश्वस्मिन् विश्वे सर्वप्राचीनं हि वाङ्मयं संस्कृतभाषायामेवोपनिबद्धं वर्तते। संस्कृतभाषायाः बृहत्तमे आर्ष-काव्ये महाभारताख्ये विलिखितं वर्तते यत्—

न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।

अर्थात् मानवो हि सृष्टिकर्तुः विरचितायां सृष्टौ सर्वश्रेष्ठो जीव इति। अग्निपुराणेऽपि—

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।

कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥

इति प्रथितं वर्तते। मानवस्य हि श्रेष्ठता जन्मजातप्रवृत्तिभिः अनुकरणप्रवृत्तिभिः ज्ञानविज्ञानानां धारणक्षमताभिश्च वर्तते। जन्मना तु मानवः पशुवत् भवति परं शनैः शनैः मानवोचितव्यवहारं स शिक्षयति। साम्प्रतिके समाजे परिव्याप्तानामपाकृतीनां दूरीकरणं हि शिक्षायां नीतितत्त्वानां समावेशादेव सम्भवति। अत एव शिक्षाविद्भिः साम्प्रतं नैतिकशिक्षायाः अपेक्षाऽनुभूयते।

व्युत्पत्तिदृष्टया नीतिपदं 'णीञ्' प्रापणे इति धातोस्तिन् प्रत्ययात् निष्पन्नो वर्तते, नयनम् पथप्रदर्शनम् इत्यर्थः। नीयन्ते प्राप्यन्ते अवगम्यन्ते धर्मार्थकाममोक्षोपायाः अनया अस्यां वेति नीतिरीति। यया विद्यया अभीष्टितार्थो लभ्यते सा नीतिरित्यपि कथ्यते। एवं शास्त्रानुकूलो व्यवहार एव नीतिर्भवति।

जनान् कुमार्गात् सन्मार्गं प्रति नयनाय या मुक्तिः सैव नीतिरिति। शुक्रनीतिसारे तु ''नयनात् नीतिरुच्यते''[1] इति साक्षात् प्रतिपादितं वर्तते।

अत्यन्तं विपुलं हि वर्तते संस्कृतवाङ्मयम्। संस्कृते विद्यमानेषु ग्रन्थेषु महाभारताख्ये ग्रन्थविषये हि प्रसिद्धं वर्तते यत्–''यदि हास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'' इति। वर्तमानकाले शिक्षायां समावेशनयोग्यानां नीतितत्त्वानां विधानं वैदिकवाङ्मये लौकिकवाङ्मये च वर्तते। अत्र पदे पदे नीतितत्त्वानि अनुस्यूतानि सन्ति।

वैदिकवाङ्मये हि नीतितत्त्वानां विमर्शनं दरीदृश्यते। वस्तुतः सर्वाः विद्याः वेदादेव प्रस्फुटितास्सन्ति। वेदे मन्त्राणं विभाजनाय 'सूक्तम्' इत्यपि नीतिमेवोद्बोधयति। ऋग्वेदस्य आरम्भोऽग्निसूक्तेन भवति। तत्र होता सुपथो नियोजनम् आत्मनः कृते वाञ्छति यत्–

''अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्।''[2] इति

ऋग्वेदस्य दशममण्डले हि विश्वशान्तेः समुपदेशो विद्यते। यतो हि–

''संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।''3 इति।

अत्र नीतिपदस्य प्रयोगोऽपि दृश्यते। तद्यथा–

''ऋजुनीति नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्''[4] इति।

ऋग्वेदे सुस्पष्टं प्रतिपादितं वर्तते यद्देवाः क्रियाशीलः नरं यजमानरूपेण वाञ्छन्ति न तु स्वप्नशीलमलसम्। उक्तञ्च–

''इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं स्वप्नाय स्पृहयन्ति।''[5] इति

1. शुक्रनीतिः 1/56
2. ऋग्वेदः 1/189/1
3. तत्रैवः 10/191/2
4. तत्रैवः 1/90/1
5. तत्रैवः 8/2/18

ऋग्वेदस्य अक्षसूक्ते कितवसूक्ते वा द्यूतस्य निन्दां विधाय परिश्रमस्य प्रशंसा विहिता वर्तते। तद्यथा–

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्य बहुमन्यमानः।

तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्थः।[1]

ऋग्वेदे सत्यस्य प्रतिष्ठा बहुशः कृता वर्तते। यथा हि–

ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः।[2]

एनमेव भावं यजुर्वेदेऽपि प्रकटितं वर्तते। तद्यथा–

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।[3]

सामवेदेऽपि सत्यस्यानुपालनं प्रतिपादितं वर्तते। उक्तञ्च–

ऋतावृधौ ऋतस्पृशौ बृहन्तं क्रतुं ऋतेन आशाषे।[4]

अथर्ववेदे प्रियं वचनं सर्वथा कामयते ऋषिभिः। तद्यथा–

वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः।[5]

अपि च–

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।[6]

''दीर्घं न आयुः प्रति बुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।।''[7]

---

1. तत्रैवः 10/34/13
2. तत्रैवः 9/73/6
3. यजुर्वेदः 40/17
4. सामवेदः 848
5. अथर्ववेदः 1/34/3
6. तत्रैवः 3/30/2
7. तत्रैवः 12/1/62

''ये ब्राह्मणा: शुश्रुवासोऽनुचानास्ते मनुष्येषु देवा:।''[1]

''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म''[2]

''आचार्यदेवो भव''[3]

''दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञात।

विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त:॥''[4]

''नैषा तर्केण मतिरापनेया, प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।''[5]

''तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणि: श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥''[6]

''तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शामान्विताय।

येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥''[7]

उपनिषत्स्वपि 'सत्यं वद' 'सत्यमेव जयते' इत्यादिप्रकारै: सत्यस्योद्घोषा: प्राप्यन्ते।

वाल्मीकिरामायणे क्रोधस्य विषये प्रतिपादितं यत् क्रुद्धावस्थायां जनो विवेकशून्यो जायते इति। यथा हि–

वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित्।

नाकार्यमपि क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित्॥

1. शतपथब्राह्मण:, 11.2.5.6
2. तैत्तिरयोपनिषद्, 2/1
3. तत्रैव: 1/11/2
4. कठोपनिषद् 1/2/4
5. तत्रैव: 1/2/9
6. मुण्डकोपनिषद्, 1/2/12
7. तत्रैव: 1/2/13

अर्थात् कुपितो न जानाति यत् किं कथनीयं किंच न कथनीयमिति। तत्रैव–

कङ्कणं नैव जानामि, नैव जानामि कुण्डलम्।

नूपुरमेव जानामि, नित्यं पादाभिवन्दनात्।। रामायणम्

इति विलिख्य स्त्रीणां प्रति समादरः प्रकटितो वर्तते। तत्रैव सद्वचनस्य वक्ता दुर्लभेति प्रतिपादितम्। रामायणस्य सुप्रसिद्धं वचनं वर्तते यत्–

सुलभाः पुरुषाः राजन् सततं प्रियवादिनः।

अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।[1]

अर्थात् हे राजन्! प्रियवादिनस्तु सदैवोपलब्धाः भवन्ति सर्वत्र किन्तु सुमार्गावबोधनपरस्य कटुवचनस्य न तु श्रोतारो वर्तन्ते नैव प्रवक्तारो भवन्ति।

महाभारतं तु नीतिशिक्षायाः समुद्रसमं वर्तते। महाभारतस्यानुशासनपर्वणि सत्यस्य महिमा निरूपिता वर्तते। यथा हि–

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।

मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते।।

अन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः।

चरैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः।।[2]

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्य स धर्मः।

मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः।।

गृहस्थाश्रमी कीदृशः स्यादिति स्फुटं प्रतिपादितं महाभारतस्यानुशासनपर्वणि। तद्यथा–

---

1. रामायणम् 3/37/2
2. महाभारतम्, उद्योगपर्व

शीलवृत्तिविनीतस्य निगृहीतेन्द्रियस्य च।

आर्जवे वर्तमानस्य सर्वभूतहितैषिणः।। इति।।

महाभारतस्यङ्गभूतायां श्रीमद्भगवद्गीतायां तु नीतिशब्दस्य प्रयोगो विलसति। यथा हि–

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।[1]

अत्र नीयते व्यवस्थाप्यते स्वेषु सदाचारेषु लोको यया सा हि नीतिरीति।

श्रीमद्भागवदाख्ये ग्रन्थेऽपि नीतितत्त्वानि प्राचुर्येण प्राप्यन्ते। यथा हि–

''यः स्वां प्रतिज्ञां नातिपिपर्त्यसभ्यः।''

''गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात्।

'मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते।।''

''अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवैः।।'' इति च रूपेण प्रस्तुता नीतिः।

निरुक्ते **''विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शैवधिष्टेऽहमस्मि।**

असूयकायानृजवेऽताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम।[2]

यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम्।।

यस्ते न द्रुह्येत् कतमच्चनाह तस्मै मा ब्रूया निधियाय ब्रह्मन्।।''[3]

गरुडपुराणे सत्सङ्गतेर्माहात्म्यं समुद्गीतं वर्तते। यथा–

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता 10/78
2. निरुक्तम्, 2/1/1
3. तत्रैव: 2/1/4

त्यज्य दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।

कुरू पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम।।[1]

स्कन्दपुराणे धर्माचरणाय प्रवृत्तिः प्रथिता वर्तते। यथा हि–

धर्मात्सुखञ्च ज्ञानञ्च यस्मादुभयमाप्नुयात्।

तस्मात्सर्वं परित्यज्य विद्वान् धर्मं समाचरेत्।। इति।।

स्मृतिग्रन्था अपि श्रुतेरर्थमेव प्रतिपादयन्ति। संस्कृतस्य स्मृतिग्रन्थेषु मनुस्मृतिग्रन्थो नीतिशिक्षया परिपूरितो वर्तते। तत्राभिवादनस्य महत्त्वं स्फुटं प्रतिपादितं वर्तते। यथा हि–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।[2]

साम्प्रतिके युगे शिष्टाचारस्थले विषमलिङ्गजनानामालिङ्गनं प्रचलितं वर्तते। एतदर्थमेव स्त्रीणां प्रति समादरभावना विलुप्ता वर्तते। मनुस्मृतौ स्त्रीणां प्रति समादरस्य भावना भृशं प्रशंसिता वर्तते। यथा हि–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः।।[3]

मनुस्मृतिग्रन्थे परिश्रमस्य महत्त्वं रोचकतया प्रतिपादितं वर्तते। तद्यथा–

आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः।

कर्माण्यारभमाणं हि परुषं श्रीर्निषेवते।।[4]

---

1. गरुडपुराणम् 108/26
2. मनुस्मृतिः 2/121
3. तत्रैवः 3/56
4. तत्रैवः 9/300

अर्थात् श्रान्ते सत्यपि कार्यमाचरणीयम्। यतो हि कार्येणैव सिद्धिर्भवति नान्यथा।

चाणक्यनीतिग्रन्थो नीतिशिक्षाया आगारो वर्तते। तत्र बहुविधानां नीतीनां विद्यमानता वर्तते। तत्र वर्जितस्थानविषयकमभिमतं सुप्रसिद्धं वर्तते। यथा हि–

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः।

न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्।।[1]

इति रूपेण प्रस्तुता नीतिः।

स्वभावेऽतिसारल्यं सर्वथानुचितमिति प्रतिपादितं चाणक्यनीतौ। यथा हि–

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम्।

छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः।।[2] इति च रूपेण प्रस्तुता नीतिः।

स्मृतिग्रन्थेषु नीतिशिक्षा स्फुटं प्रतिपादिता वर्तते। यथा हि–

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।[3]

नास्ति सत्यापरो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।[4]

अपि च–

---

1. चाणक्यनीतिः 1/8
2. चाणक्यनीतिः 17/12
3. मनुस्मृतिः 4/138
4. नारदस्मृतिः 4/206

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।

तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।[1]

एवञ्च–

सत्येन धार्यते पृथिवी सत्येन तपते रविः।

सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥[2]

विदुरनीतौ हि चारित्र्यस्य विषये प्रतिपादितं यत्–

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।

अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥[3]

इति च रूपेण प्रस्तुता नीतिः।

महाकविभासेन स्वकीये नाटकचक्रे विविधानां नीतीनामुपस्थापनं विहितम्। तेनोक्तासु प्रसिद्धासु नीतिषु–

''चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः।''[4]

''न व्याघ्रं मृगाशिशवः प्रघर्षयन्ति।'' इति च प्रामुख्यं बिभर्ति।

महाकविकालिदासेन स्वरचनासु नीतिशिक्षायास्तत्त्वानां समावेशः प्राचुर्येण विहितः। तत्र रघुवंशे यथा हि–

''अभितप्तमयोऽपिव मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु।''[5]

---

1. चाणक्यनीतिः 16/14
2. तत्रैवः 5/11
3. विदुरनीतिः 4/3
4. स्वप्नवासवदत्तम् 1/4
5. रघुवंशम् 8/43

''हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ त्रिशुद्धिः श्यामिकापि वा।''[1]

''उष्णत्वमग्न्यातपसम्प्रयोगात् शैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य।[2]

इति च रूपेण प्रस्तुता नीतिः।

कुमारसम्भवे यथा–

''क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीययेत्।''[3]

''न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते।''[4]

''मनोरथानामगतिर्न विद्यते।''[5]

''द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्।।[6]

इति च रूपेण प्रतिपादिता नीतिः।

कालिदासीयनाटकेषु अभिज्ञानशाकुन्तले यथा हि–

''भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।''[7]

''किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।[8]

''सतां हिं सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।''[9]

इति च रूपेण प्रस्तुता यथा नीतिः।

---

1. तत्रैवः 1/10
2. तत्रैवः 5/54
3. कुमारसम्भवम् 5/5
4. तत्रैवः 5/16
5. तत्रैवः 5/64
6. तत्रैवः 5/75
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/6
8. तत्रैवः 1/19
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/6

विक्रमोर्वशीयनाटके हि–

''मदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरम् निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः।''[1]

''उत्सङ्गवर्धितानां तरुषु भवेत्कीदृशः स्नेहः।''[2]

इति च रूपेण प्रतिपादिता नीतिः।

मालविकाग्निमित्रनाटके हि–

''पुराणमित्येव न साधु सर्वम्।''[3]

''पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमधातुः।

''जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलता पयोदस्य।''[4]

इति च रूपेण प्रतिपादिता।

कालिदासस्य खण्डकाव्ये मेघदूतेऽपि नीतिवाक्यानि सुशोभन्ते। यथा हि–

''याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।[5]

''मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।''[6]

''आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्।।''[7]

बृहत्त्रय्यां किरातार्जुनीयमहाकाव्ये नीतेर्महत्त्वं भारविणा सुप्रतिपादितम्।

---

1. विक्रमोर्वशीयनाटकम्
2. तत्रैवः
3. मालविकाग्निमित्रनाटकम् 1/2
4. तत्रैवः 1/6
5. मेघदूतम् 1/6
6. तत्रैवः 1/38
7. तत्रैवः 1/53

यथा हि–

''निरुत्सुकानामभियोगमाणां समुत्सुकेवाङ्कमुपैति सिद्धिः।''[1]

''न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्''।[2]

''वसन्ति हि प्रेम्णि गुणाः न वस्तुनि।''[3]

विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसाभिवाशयः।

स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः।''[4]

अर्थात् उत्तमसोपानैः अतिविषयोऽपि जलाशये अवतरणं प्रवेशः कृततीर्थायापि सुगमो भवति तथैव नीतिभिः मनुष्याय विषमपरिस्थितयोऽपि सुगमाः संजायन्ते इति।

शिशुपालवधमहाकाव्येऽपि महाकविमाघेन नीतिपदं साक्षात् समुद्धृतं वर्तते। यथा हि–

''आत्मोदयः परज्यानिः इयं नीतिरितीयती'' इति।

अर्थात् नीतेः स्वरूपद्वयं वर्तते। यया रीत्या स्वस्योत्कर्षः स्यादिति एकं तथा च अपरस्य ह्रासः स्यात्, सापि रीतिः नीतिरेव कथ्यते।

अपि च–

''श्रेयसि केन तृप्यते''।[4]

''तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गम्यते''।[5]

''समये हि सर्वमुपकारि कृतम्''।[6]

1. किरातार्जुनीयम्
2. तत्रैव: 4/23
3. तत्रैव: 8/37
4. तत्रैव: 2/3
5. शिशुपालधम्, 1/!39
6. तत्रैव: 2/51

''भ्रान्तिभाजि भवति क्व विवेकः''।[1]

''नीतिरापदि यद् गम्यः परस्तन्मानिनो हि ये''।[2]

चेति प्रतिपाद्य नीतिमार्गस्य महाकविमाघेन महत्त्वं प्रकटितम्।

महाकविश्रीहर्षस्य नैषधीयचरिते महाकाव्ये हि–

''झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः।''[3]

''उत्तरोत्तरशुभो हि विभूनां कोऽपि मञ्जुलतमः क्रमवादः।''[4]

''आर्जवं हि कुटिलेषु नीतिः।''[5] .

''मान्येन मन्ये विधिना वितीर्णः स प्रीतिदायो बहुमन्तुमर्हः।''[6]

इति च रूपेण प्रतिपादिता नीतिः।

संस्कृतनाट्येषु मुद्राराक्षसनाटके यथा–

''चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रप्रतिपातिता कृषिः।

न शालेः स्तम्बकारित्वं चातुर्गुणमपेक्षते।।''

''नहि सर्वः सर्वं जानाति।''

मित्राणि शत्रुत्वमुपानयन्ती मित्रत्वमर्थस्य वशाच्च शत्रून्।

''नीतिर्नयत्स्मृतपूर्ववृत्तं जन्मान्तरं जीवत एव पुंसः।''

---

60. तत्रैव: 9/43
61. तत्रैव: 10/5
62. तत्रैव: 1/39
63. नैषधीयचरितम् 4/118
64. तत्रैव:
65. तत्रैव: 5/103

इति च रूपेण प्रतिपादिता नीतिः।

उत्तररामचरिते नाटके हि–

''सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति।''[1]

''गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।''[2]

इति च रूपेण प्रतिपादिता नीतिः।

वेणीसंहारे नाटके यथा–

''स्त्रीणां हि साहचर्यात् भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि।

मधुराणि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रितवल्ली।''[3]

''अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा।''[4]

''अनतिक्रमणीयं लोकवृत्तम्।''[5]

इति च रूपेण प्रतिपादिता नीतिः।

संस्कृतवाङ्मयस्य ग्रन्थरत्नस्य पञ्चतन्त्रस्य प्रसिद्धिस्तु संसारे सर्वत्र वर्तते। ग्रन्थस्यास्य विश्वस्य सर्वासु भाषासु अनुवादोऽत्र हेतुभूतो भवति। ग्रन्थस्योद्देश्यमेव नीतिरेव–''कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते'' इति आसीत्। पञ्चतन्त्रस्य सुप्रसिद्धासु नीतिषु केषुचिदत्र प्रस्तूयन्ते। यथा हि–

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।

न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।''[6]

---

1. तत्रैवः
2. उत्तररामचरितम्, 2/1
3. तत्रैवः 4/11
4. वेणीसंहारम् 1/2
5. तत्रैव
6. तत्रैव

अपि च–

वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्यायाः बुद्धिरुत्तमा।

बुद्धिहीनाः विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः॥[1]

आशयोऽयं यत् विद्याया अपेक्षया बुद्धिः श्रेष्ठतरा भवतीति। शिक्षैषा तत्र रोचककथया प्रदर्शिता वर्तते।

एवं संस्कृतवाङ्मये नीतितत्वानां विद्यमानता सर्वत्र वर्तते।

1. पञ्चतन्त्रम् 1/36

मूल्यसंरक्षणे संवर्द्धने च धर्मस्य योगदानम्

डॉ. रामराज उपाध्यायः

धर्मस्य व्याख्या द्विधा क्रियते धारणाद्धर्मः धिन्वनाद्धर्मश्च। धारणाद्धर्मानुसारेण यस्य धर्मस्य धारणं जनाः कुर्वन्ति स धर्मो भवति। सामान्यतया इदं वक्तुं शक्यते यत् स्वकीयस्य जीवनस्य संचालने कस्य पथस्यानुपालनं क्रियेत इति? विविधाः पंथास्सन्ति परञ्च कस्याप्येकस्यैव धारणं कर्तुं शक्यते। यस्य धारणं कृत्वा स्वकीयजीवनपथं संचालयिष्यामः। अस्य निर्धारणं स्वधर्मः विद्यते। भगवता कृष्णेन गीतायामुक्तं स्वधर्मे निधनं श्रेयः। यस्य निर्धारणं जातं तस्मिन्नेव धर्मेऽस्माकं जीवनपथः अग्रेसरः भवेदिति कर्त्तव्यः। यथा सामान्योदाहरणेन एवं वक्तुं शक्यते यत् कोऽपि शिक्षकः अस्ति तर्हि शिक्षा प्रदानमस्ति तस्य धर्मः इति। तस्य कार्यस्य सम्पादनेन यथा समये यथा स्थाने निर्धारिते स्थले गन्तव्यम्। तत्र गत्वा यत्किमपि अस्माकं कृते कार्यं प्रदत्तमस्ति तस्य सम्पादनं करणीयम् इत्यस्ति स्वधर्मः। अनेन मूल्यवर्द्धनं भवति। एतदतिरिक्तं अहं तत्र गत्वा नं पाठयिष्यामि। इतः ततः कृत्वा समयस्य यापनं करिष्यामि एतादृशो विचारः अधार्मिकः। अनेन अवमूल्यनं भवति। प्रकारेणानेन बहूनि उदाहरणानि सन्ति परञ्च सर्वेषां वर्णनमत्र नास्त्युचितम्।

अस्मिन्नेव प्रकरणे इदं विचार्यते स्वकीयस्य कार्यस्य अकरणे अस्माकं हानिर्भवितुं शक्यते तर्हि तस्योत्तरदायित्वस्य निर्वहणं निष्ठापूर्वकं भवितुं शक्नोति परम् एवमनुभूयते अकरणे हानिर्नास्ति तर्हि तस्य कार्यस्य असम्पादनेन अवमूल्यनं भवति। यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् इति उक्त्वा आचार्याः वदन्ति क्रिया आवश्यक्यस्ति। यत्र क्रिया भवति तत्रैव मूल्यस्य संरक्षणं संवर्द्धनं च भवति। वस्तुतः एवं प्रतिभाति धर्मादीनां वर्णनं शास्त्रे मानवीयमूल्यानां वर्द्धनाय संरक्षणाय च कृतमस्ति।

धर्मस्य लक्षणं मनुरेवञ्चकार-

धृतिक्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

येषु धर्मलक्षणेषु प्रत्यक्षतया मूल्यानां संरक्षणं संवर्द्धनं च दृश्यते। धृति इत्युक्ते धारणं क्रियते। किं धारणीयं किमधारणीयं विद्यते इति विचार्य धारणं कुर्यात्। अस्मिन् जना: चिन्तयन्ति प्राप्यन्ते एतावता प्राप्नुवन्तु। परञ्च मनुना प्रतिपादितं एवं नहि धारणीयमस्तीतिविचार्य धारणं करोतु। द्वितीयं धर्मलक्षणमस्ति क्षमा। यावत् सामर्थ्य क्षमां कुर्वन्तु। परन्तु क्षमादानमपि नियमानुसारेण कुर्यात्। येन क्षमादानेन कस्यापि जनस्य समाजस्य वा हानि: भवति चेत् क्षमादानमुचितं नास्ति। अनेन प्रकारेण यत्किमपि धर्मलक्षणं प्राप्यते तेषां समेषामनुपालनेन मूल्यवृद्धिर्भवितुं शक्नोति।

वेदोऽखिलो धर्ममूलमित्युक्त्वा एवं ज्ञायते धर्ममूलकत्वं वेदे विद्यते। वेदस्य षड्वेदाङ्गगानि सुप्रसिद्धानि। शिक्षाकल्पोव्याकरणं निरुक्तं छन्द: ज्योतिपञ्च। वेदाङ्गेष्वेषु मुख्यत: कल्पसूत्राणि चतुर्विधानि। श्रौतसूत्रम्, गृह्यसूत्रम्, धर्मसूत्रम् शुल्वसूत्रंञ्चेति। श्रौतसूत्रे ब्राह्मणग्रन्थवर्णितानां श्रौताग्नियागानां क्रमबद्धं वर्णनमस्ति। वर्त्तमाने श्रौतयागानां प्रचलनं लुप्तप्राय: दरीदृश्यते। यतोहि इदानीन्तने जना: तादृशा न सन्ति यादृशा: तदानीन्तने आसन्। श्रौतयागादीनां कृते [1]अधिकारनिरूपणं कात्यायनश्रौतसूत्रे प्राप्यते। तत्र प्रथमसूत्रस्य व्याख्यायां वेदाध्ययनान्तरं तादृशवेदप्रतिपादितेषु कर्मसु अधिकार: अनुष्ठानरूपो व्यापार: कस्य इति विचार्यते। तत्र निर्णय: [2]मनुष्याणामेव कर्मस्वधिकार:। तेषामेव हि अनुष्ठानसामर्थ्यमस्ति। देवादीनां तु देवतान्तराद्यभावात्, तिर्यगादीनां कर्मानुष्ठानाशक्तेश्च न तेषामधिकार:। [3]वेदोक्तानि सर्वाणि कर्माणि पुण्यदुलजनकान्येवेति। श्रौतयागाद्यधिकारिणां निरूपणे तत्र बहूनि सूत्राणि प्राप्यन्ते। तानि सर्वाण्यत्र विवेचनीयानि न भवितुं शक्नुन्ति। अस्माकं भाव: केवलं श्रौतसूत्रेषूक्तानां कर्मणां प्रतिपादने मानवीयमूल्यानां संरक्षणं विद्यते। तेनाचरणेन सम्पादनेन च उपकारो भवति। [4]दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत् स्वर्गकाम: इत्यादि वाक्यैरिदं सिद्धम्।

---

1. अथातोऽधिकार:- कात्यायनश्रौतसूत्रम्- 1.1
2. मनुष्याणां वाऽरम्भसामर्थ्यात् - तत्रैव- 1.4
3. फलयुक्तानि कर्माणि- तत्रैव-1.2
4. आप0 श्रौ0-3.14.08

द्वितीयमस्ति गृह्यसूत्रम्। गृह्यसूत्रेषु षोडशसंस्काराणां विशिष्टं वर्णनमस्ति। समेषां मानवानां जीवने संस्काराणां महत्त्वमवर्णनीयमस्ति परञ्च मूल्यसंरक्षणे योगदानं संक्षेपतोऽत्र प्रतिपाद्यते।

सम्-कृ-घञ्-प्रत्ययेन निष्पन्नोऽयं संस्कारशब्दः। संस्क्रियते येन कर्मणा स संस्कारः। आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशय-विशेषः संस्कारः। आत्मशुद्धेः प्रक्रिया संस्कारप्रक्रियाः। यतोहि **अशुचिर्भूत्वा श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म न कुर्यादिति** महर्षि भृगुमतं विद्यते। पुरुषार्थचतुष्टयस्य संप्राप्तये श्रुतिस्मृत्युदितानि कर्माण्यवश्यमेव कर्त्तव्यानि। एतदर्थमात्म-शुद्धिरूपिक्रियाः संस्काराः समेषां कृते आवश्यक्यः। परञ्च संस्काराणां संख्या विनिश्चयविषये वैमत्यं दृश्यते। महर्षिगौतमस्यमतानुसारेण अष्टाचत्वारिंशत् संस्काराः विनिश्चिताः। ते सन्ति[1] गर्भाधानम्, पुंसवनम्, सीमन्तोन्नयनम्, जातकर्म, नामकरणम्, अन्नप्राशनम्, चौलम्, उपनयनम्, चत्वारि वेदव्रतानि, स्नानम्, सहधर्मचारिणीसंयोगः, पञ्चमहायज्ञानामनुष्ठानम्, अष्टकापार्वणं श्राद्धं, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री, आश्वयुजी, सप्तपाकसंस्थाः, अग्न्याध्येयम्, अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि, आग्रयणेष्टिः, निरूढपशुबन्धः, सौत्रामणिः इति सप्तहविर्यज्ञसंस्थाः, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम इति सप्तसोमयज्ञसंस्थाः एते चत्वारिंशत् संस्काराः। अष्टौ आत्मगुणाः- दया सर्वभूतेषु, शान्तिः, अनसूया, अनायासोमांगल्यम्, अकार्पण्यम्, अस्पृहा चेति। यस्य एते चत्वारिंशत् संस्काराः सन्ति परञ्च अष्टौ आत्मगुणाः न सन्ति स ब्रह्मणः लोकं न गच्छति सायुज्यमपि न प्राप्नोतीत्यर्थः। यस्य जनस्य पार्श्वे एते संस्काराः तथा चाष्टौ आत्मगुणाः सन्ति स ब्रह्मणः लोकं गच्छति सायुज्यमपि प्राप्नोतीत्यर्थः।

[2]महर्षिणा आंगिरसेन पञ्चविंशतिसंस्काराः निगदिताः। पञ्चविंशतेः-संस्काराणां नैमित्तिकवार्षिकमासिकनित्यभेदेन चातुर्विध्यमाहाश्वलायनः। नैमित्तिकाः षोडशोक्ताः समुद्वाहावसानकाः। सप्तैवाग्रयणाद्याश्च संस्काराः

1. संस्कारभाष्करः-पृ.सं.-01
2. तत्रैव- पृ. सं.-02

वार्षिका: मता:। मासिकं पार्वणं प्रोक्तमशक्तानां तु वार्षिकम्। महायज्ञास्तु नित्या: स्यु: सन्ध्यावच्चाग्निहोत्रवदिति।

पारस्करगृह्यसूत्रस्यप्रणेता महर्षि पारस्कराचार्यै: त्रयोदशसंस्कारा: स्वीक्रियन्ते। तत्र विवाह:, गर्भाधानम्, पुंसवनम्, सीमन्तोन्नयनम्, जातकर्म, नामकरणम्, निष्क्रमणम्, अन्नप्राशनम्, चूणाकरणम्, उपनयनम्, केशान्तम्, समावर्तनमन्त्येष्टिसंस्काराश्च। येषां समेषां संस्काराणां सम्पादनं जनानामभ्युदयाय भवति। अतिसमासेनेदं विचार्यते-

विवाहसंस्कार:-विशिष्टदायित्वस्य वहनं विवाहोऽस्ति। सर्वे सुपरिचिता: सन्त्यनेन संस्कारेण। अस्माद् संस्कारादेव गृहस्थाश्रमारभ्यते। संस्कारेणानेन पतिं पत्नी पत्नी पतिञ्च प्राप्नोति। अत्र विष्टरग्रहणप्रकरणे-[1]वर्षोऽस्मि समानानामुद्यतामिवऽसूर्य:। इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदा-सती। प्रकरणेऽस्मिन् गदाधरभाष्ये उक्तम्- कुलज्ञानाचारवपुर्वयोगुणैरहं समनानां सजातीयानां मध्ये वर्ष्म: श्रेष्ठ: ज्येष्ठ: अस्मि भवामि। उद्यतामुदयं प्रकाशं कुर्वतां ग्रहनक्षत्रादीनां मध्ये सूर्य इव। किञ्च इमं विष्टरं तं पुरुषमुद्दिश्य विष्टरवत् बद्धमभिलक्षीकृत्य तिष्ठामि अध: कृत्वोपर्युपविशामि। य: कश्चन मा मामभिदासति उपक्षीणं कर्तुं इच्छति।

मन्त्रेऽस्मिन् यद्भावमुद्भूतं तमभ्युदयस्यभावम्। जनस्याभ्युदय: तदा न भवितुं शक्नुते यदा अभ्युदयस्य भावस्य व्युत्पत्तिर्न भवति। परस्परं भावयन्त: कर्मणि सम्पादने अभ्युदयो भवति। सत्यमेवमुक्तम्-

[2]सन्तुष्टो भार्यया भर्त्रा भर्त्रा भार्या तथैव च।
तस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।।

गृहस्थजीवनं कल्याणसंपृक्तं भवेदेतदर्थं उक्तिरियमतीवसमीचीना वर्तते। विवाह- संस्कारेऽपि हृदयालम्भनप्रकरणैरेतादृशा: विचारा: समुदेत्यस्मिन् मन्त्रे-

---

1. पारस्करगृह्यसूत्रे-1.3.8.
2. मनुस्मृति:-3.60

[1]मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं तेऽस्तु
मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्।।

मन्त्रस्यास्य व्याख्यानावसरे गदाधरमहोदयैः प्रतिपादितम्- मम व्रते शास्त्रविहितनियमादौ ते तव हृदयं मनः दधामि स्थापयामि। किञ्च मम चित्तमनु मम चित्तानुकूलं ते तव चित्तमस्तु। त्वं च मम वाचं वचनं एकमना अव्यभिचारि मनोर्वृत्तिर्जुषस्व हृष्टचित्तादरेण कुरुष्व। त्व त्वां स च एवं प्रजापतिर्मह्यं मदर्थं मा प्रसादयितुमित्यर्थः नियुनक्तु नियोजयतु। मन्त्रस्यास्योपयोगित्वं अभ्युदयाय वर्तते । पतिपत्न्ययोर्मध्ये भेदो मा भवेदिति तात्पर्यायः।

2- **गर्भाधानसंस्कारः**- गर्भाधानसंस्कारेण बैजिकं गार्भिकं दोषञ्चोपशमयति। बैजिकदोषस्य गार्भिकदोषस्य च प्रभावः गर्भगतशिशोरुपरि भवति। अनेनैव प्रभावेण वंशानुगतरुजाः सन्तानं प्रति परम्परया गच्छति। दोषयुक्तं शिशुर्माभवेदेतदर्थं संस्कारोऽयं सम्पाद्यते।

3- **पुंसवनसंस्कारः**- गर्भस्थशिशुः वीर्यवान् भवेदेतदर्थं पुंसवनसंस्कारः क्रियते । [2]कूर्मपित्तं चोपस्थे कृत्वा स यदि कामयेत् वीर्यवान्त्स्यादिति विकृत्यैनमभिमन्त्रयते। संस्कारेणानेन गर्भस्थशिशोः बलं विवर्द्धति।

4- **सीमन्तोन्नयनसंस्कारः**- [3]अयमुर्ज्जावतो वृक्षउर्ज्जीव फलिनीभव इत्यनेन मन्त्रेण संस्कारोऽयं सम्पाद्यते। अत्र निर्देशो विद्यते औदुम्बरादि-पुञ्जमाबध्नाति भर्ता अयमूर्जावत इति मन्त्रेण। गर्भस्थशिशुः उर्जावान् भवेदेतदर्थं सीमन्तोन्नयनं क्रियते।

शिशुः यथा वांछामि तथा भविष्यतीति विषये संस्काराणां महत्वं नास्ति प्रच्छन्नम्। प्रह्लादस्य जीवनवृत्त अभिमन्यु जीवनवृत्तञ्च स्पष्टं करोति सर्वम्।

---

1. पारस्करगृह्यसूत्रे-1.8.8.
2. तत्रैव 1.4.5.
3. तत्रैव 1.15.6.

प्रकारेणानेन जातकर्मसंस्कार: [1]मेधजननायुष्ये करोति। नामकरण-निष्क्रमणादिकं कृत्वा [2]**षष्ठे मासि अन्नप्राशनम्** इत्यनेन अन्नप्राशनसंस्कार: कर्त्तव्य:। षष्ठमासानन्तरं शरीरस्य सम्यक् विकासाय अन्नप्राशनं क्रियते। अन्नस्य भक्षणं शरीरस्य कृते शुभं भवेदेतदर्थमन्नप्राशनसंस्कारो भवति। उपनयनादिकं ज्ञानस्याभिवृद्धये कर्त्तव्यम्। गुरो: समीपे शिक्षार्थ बालकस्यानयनमुपनयनमस्ति। संस्कारेणानेन बटु ब्रह्मचारी स्वतनुं ब्राह्मीयं करोति। यथा-

[2]स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्ययासुतै:।
महायज्ञैश्चयज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुम्॥

अत्र ब्राह्मीयतनुतदा भवितुं शक्यते यदा अस्माकं शरीरे मनसि कर्मणि वा दोषा: न स्यु:। एतदर्थ प्रयास: क्रियेत। इदमेवास्ति मूल्यसंवर्द्धनं संरक्षणं च। अस्माकं कृत्यं सर्वदा चिन्तनयुक्तं भवेत्। धर्म विचार्य चिन्तनं क्रियेत चेत् अवश्यमेव इयं तनु: दोषमुक्ता भवितुं शक्यते। आचारविचारव्यवहारस्य शिक्षा अस्मिन् संस्कारे प्रदीयते। विद्या कथं प्राप्यते? विद्याया: महत्त्वं किमस्ति जीवने ? एतादृशानां सर्वेषामुपरि गुरु: शिष्यं ज्ञानं ददाति। किं कर्त्तव्यमकर्त्तव्यं वा इति सर्वमत्र विचार्यते। प्रकारेणानेन संस्कारा: मूल्यस्याभ्युदये महती भूमिकां निर्वहन्ति।

तृतीयमस्ति धर्मसूत्रम्- इदानीं ये मनुस्मृति-याज्ञवल्क्यस्मृति-प्रभृतिग्रन्था: धर्मशास्त्रत्वेन गृह्णन्ते ते सर्वे कल्पसूत्रमेव प्राणसंयुक्तं कुर्वन्ति। धर्मसूत्राणां संस्कृतवाङ्मये विशिष्टं सम्मानम् आदरश्चास्ति। धर्मसूत्रेषु प्रतिपादिता: सर्वे धर्मा: सूत्रकारैर्न प्रकल्पिता: अपितु तै प्राक्तनेभ्य: स्त्रोतोभ्य: यथा समये व्याख्याता:। महर्षिबौधायनस्य मतं बौधायनस्मृतौ-**उपदिष्टो धर्म: प्रतिवेदं तस्यानुव्याख्यास्याम:**। आपस्तम्बोऽपि **अथात: समयाचारिकान् धर्मान् व्याख्यास्याम:**। इत्थं धर्मसूत्राणि प्राक्तनानामेव धर्माणां व्याख्यानरूपाणि सन्ति।

1. तत्रैव 1.16.3
2. तत्रैव 1.19.1.
3. मनुस्मृति:-2 . 28

धर्मसूत्राकारा: धर्म चतुर्षु भागेषु विभजन्ते। साधरणधर्म:, विशेषधर्म:, असाधारणधर्म: आपद्धर्मश्च। तत्र **साधारणधर्म:** दानतपोयज्ञभेदेन त्रिविध:। अर्थदान-ब्रह्मदान-अभयदानञ्च दाने भवन्ति। अर्थदाने अर्थस्य अन्नादिकस्य वा दानं क्रियते। ब्रह्मदानस्य संबंध: विद्यादानेन सह विद्यते। अभयदानं भयातुराणां कृते प्रदेयमस्ति। तपोऽपि त्रिविध: शरीरतप: मानसतपसा वाक्तपश्च। शरीरतपे व्रतादिकं नियमादिकञ्च स्वीक्रियते। मानसतपसा मन: शुद्धं क्रियते। वाक्तपसा वाणीशुद्धं क्रियते। मनसा वाचा कर्मणा च शुद्धो पूतो जन: सम्मानयोग्यं भवति। यज्ञस्य अष्टादशभेदा: भवन्ति। यज्ञस्य त्रिविधं रूपं कर्मयज्ञ:, उपासनायज्ञ: ज्ञानयज्ञश्च विद्यते। नित्य-नैमित्तिककाम्याध्यात्माधिदैवाधिभूतभेदै: कर्मयज्ञ: षड्विध: प्रोक्त:। उपासनायज्ञ: नवविध: निर्गुणोपासना, सगुणोपासना, अवतारोपासना, ऋषिपितृदेवतोपासना, भूतप्रेतासुराद्युपासना, मन्त्रयोगोपासना, हठयोगोपासना, लययोगोपासना, राजयोगोपासना च। ज्ञानयज्ञ: त्रिविध: श्रवणमनन-निदिध्यासनभेदेन।

अत्र दानतपोयज्ञानां संकलने कृते चतुर्विंशतिभेदा: अभवन्। सात्विकादिगुणत्रयै: त्रिगुणीकरणेन द्विसप्ततित्वं प्राप्यते। प्रकारेणानेन विचारणेन सर्वाणि धर्माणि सनातनधर्मेऽन्तर्भूतानि सन्ति। सनातनधर्मस्येदं स्वरूपं सर्वलोककल्याणकरं वर्तते।

विशेषधर्म: यथा पुरुषस्य कृते पुरुषधर्म: तथैव नार्य: कृते नारीधर्म:। गृहस्थस्य कृते प्रवृत्तिधर्म:, सन्यासिनां कृते निवृत्तिधर्म:। एवमेव ब्राह्मणादीनां कृते पृथक्-पृथक् धर्मो य उक्त: सो विशेष: धर्म:।

असाधारणधर्म: असाधारणजनानां कृते धरणीपोडस्ति। न साधारणमनुष्या: तदधिकारिणो भवन्ति।

आपद्धर्म:-विपदि निपत्य जीव: स्वं मुख्यमुद्देश्यं लब्धं चेत् पापमापद्धर्मत्वेन मत्वाऽऽचरति तदा न स पापभाक् भवति। आत्मरक्षायै आपद्धर्मो धर्मविर्निर्दिष्ट:।

अनेन प्रकारेण धर्माचरणेन मूल्यानां संरक्षणं संवर्द्धनं च भवतीति मे मतम्।

मूल्यशिक्षा : शिक्षकव्यवहारः

डॉ. सुरेन्द्रमहतो

'मूल्य-शिक्षकयोर्मध्ये श्लिष्टसम्बन्धो दृश्यते। मूल्यानां कियती आवश्कता महत्त्वं च अनुभूयते इति अनुभूतं विद्वद्भिः इह लोके। शिक्षकाः बालकानां सामाजिकगुणाधाने कथं सहायकाः सन्ति विषयेऽस्मिन् न प्रतिपत्तिः। समाजीकरणप्रक्रियासु विद्यालयस्यगृहस्यसमवयसमूहस्य-शिक्षकस्य च महती भूमिका भवति। बालकेषु मूल्याधाने संस्थापने वा शिक्षकाणां व्यवहारः अप्रतिमम्। यदि विश्वेऽस्मिन् मानवीयमूल्यानां सम्वर्द्धनं विस्तरेण कल्पते तर्हि सर्वादौ मातुः पितुः गुरुचधरणानां च व्यवहारः अनुकरणीयो भवेत्। विषयेऽस्मिन् शास्त्रेषु–

आत्मज्ञानेन विज्ञानं सदाचारेण शिक्षणम्।
बुद्धया धर्मं च संयोज्य करिष्ये विश्वमंगलम्॥'

शिक्षकस्य आत्मज्ञानबुद्धिः सदाचरणंशिक्षणंकर्त्तव्यपालनं मूल्यशिक्षा चेत्यादीनां प्रदाने कथं महत्त्वपुर्णमिति विषये सविस्तरेण वर्णितस्यते। पञ्चसोपनात्मिका योजनाऽपि प्रताः।

मूल्यशिक्षाया आवश्यकता अखिले जगति दरीदृश्यते न तु भारते एव। शिक्षा एका अनवरतप्रक्रिया, यया न व्यक्तेः मात्रम् अपितु परिवारस्य समुदायस्य समाजस्य विश्वस्य च परिशोधनं सम्भवति। शिक्षा विकासस्य। शिक्षाप्रक्रियायां शिक्षकस्य केन्द्रवर्ति स्थानं वर्तते। शिक्षकशब्दः आङ्ग्लभाषायां

1. संस्कृतव्याकरणम् पं. श्रीरामचन्द्र झा–चौखम्बा विद्याभवनं वाराणसी–1

टीचर इति। भारतीयशास्त्रेषु गुरु इति आचार्यपदे अभिहितः। आचार्यस्य लक्षणम्, इत्थम्–

आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि।
स्वयं चाचरते यस्मात् तस्मादाचार्य उच्यते।।[1]

अतः मूल्यानाम् अभिज्ञानेसंकलनेत्यजने अनुपालने अवबोधने शिक्षकस्य तद् व्यवहारस्य चापि महनीयता आवहति।

मूल्यस्यावधारणा (Concept of Value)

मूल्य (वि.) मूल+यत्–मूल्यम्[2] क्रीणन्ति स्म प्राणमूल्यशांसि[3], मूल्यशब्दस्य रूपान्तरणं भवति आङ्ग्लभाषायां वैल्यू (Value)। आङ्ग्ल वैल्यू (Value) इति शब्दः लाटिन भाषायाः वैल्वेर (laten-valuere) शब्दात् निष्पन्नः। यस्यार्थः भवति 'टू वी वर्थ' (To be worth) योग्यता, क्षमता, ग्रहणीय शक्तित्वमित्यादयः। मूल्यविषये विद्वच्चराः स्वाभिप्रायं इत्थं व्यनक्ति–

"मूल्यं तु मानवविश्वासः वर्तते येन जनाः वरिष्ठताक्रमेण कार्याणिकुर्वन्ति।[4]

'सामाजिक–कलात्मक–नैतिकस्तराणि एव मूल्यानि यान्यनुसर्तुं व्यक्तिः प्रयतते। स एतदपि वदति यत् अधिकमूल्यात्मकाभिवृत्तयः आत्मप्रत्ययेन सह युक्ता भवन्तीति।[5]

'मूल्यानि क्रियायाः व्यवहारस्य च आधारं कल्पयन्ति, व्यवहाररूपे परीक्ष्यापि च भवन्ति।[6]

---

1. तत्रैव
2. संस्कृत हिंदी शब्दकोश–शिवराम आप्टे–नागपलिशर्स–दिल्ली–7
3. तत्रैव
4. गॉर्डन ऑलपोर्ट
5. कैटल
6. वी. कुप्वास्वामी

'भारतीयदर्शने पुरुषार्थ एव मूल्यं नाम। धर्मार्थकाममोक्षरूपं चतुर्विध-पुरुषार्थाः मूल्यत्वेन परिगण्यन्ते।''[1]

मूल्यं तु व्यक्तेरन्तरनिहितगुणं भवतीति। देशकालव्यक्त्यानुगुणं मूल्यानां मूल्यं परिवर्तितं भवति। स्वीकरणीयास्वीकरणीयभेदे मूल्यमूल्यं च। सामाजिकानां कृते स्वीकरणीयं स्यात् यत् कल्याणकारि भवेदिति। यदि स्वीकारणीयं परन्तु समाजिकेषु तिरस्करणीयं स्यात् उत नाशयति तर्हि तत् मूल्यरूपेण स्वीकरणीयम्। स्वीकरणीयमनुकरणीयमवधारणीयं चेदम्। आङ्ग्लभाषाया-मुक्तिरस्ति- 'वैल्यू टू बी कॉट नॉट टू बी टॉट (Value to be cought, not to be tought) अभिप्रायः 'मूल्यं तु ग्रहणीयं न तु शिक्षणीयम्'। परन्तु चेत् शिक्षकाः मूल्यानामात्मसात् कृत्वा स्वव्यवहारे व्यवहरणीयं स्यात् तर्हि अधिगामकाः (अधिगन्तारः) व्यवहारावलोकनमनुकरणरूपेण व्यवहरिष्यन्ति। अतोमूल्यानां ग्रहणं शिक्षणञ्च भवतीति नापत्त्यवकाशः। ततः 'वैल्यू टू बी टॉट एण्ड कॉट बोथ' (Value to be tought & cough are both)

शिक्षकव्यवहारः शिक्षणव्यवहारयोः स्पष्टभेदो विद्यते। शिक्षणव्यवहाराशयः भवति शिक्षणक्रियायाम् एव कृतव्यवहारः। अर्थात् शिक्षणावसरे जायमानानां क्लेशानां समाधानोपायः व्यवहारश्च। ततः शिक्षकव्यवहाराशयः स्यात् शिक्षकस्य सम्पूर्णजीवनस्य व्यवहारः। अर्थात् शिक्षणव्यवहारस्तु कक्षाकक्षसम्बद्धः किन्तु शिक्षकव्यवहाराभिप्रायः कक्षेतरक्रियाष्वपि। बालकानां समाजीकरणप्रक्रियायां गृहविद्यालयोः समानंमहत्त्वं प्रयक्षन्ति शिक्षा सामाजशास्त्रियः। तत्र विद्यालयस्य महत्त्वं स्वयमेव सिद्धम्। विद्यालयेषु शिक्षकस्य शिक्षकव्यवहारस्य च महत्त्वम् अद्वितीयम्। छात्राणां व्यवहारशोधने शिक्षकव्यवहारान् अप्रतीमं स्वीकुर्वन्ति शिक्षाविदः। शिक्षकव्यवहार एव छात्राणां सामाजिकानां च कृते आकर्षणकेन्द्रीभूतः। शिक्षक एव आदर्शः (Role modle) भवति। छात्राणांकृते प्रथमतः व्यवहारादिमनोवैज्ञानिकाः शिक्षकव्यवहारविषये स्वाभिप्रायमीत्थं व्यञ्जन्ति 'शिक्षकव्यवहारस्तु शिक्षकस्य समस्तक्रियाणां योगो भवति कक्षायां

---

1. मनुस्मृतौ

छात्राणामधिगमप्रक्रिया: प्रभावयति।''[1]

'शिक्षकव्यवहार: सामाजिक: सापेक्षितश्च व्यवहारोभवति।'[2]

मैकडोनाल्डमहोदयेन तं शिक्षकव्यवहारविषये महत्त्वपूर्णं सूत्रं व्यरचि। यथा–

TB = F [(TV) × (PV) × (EV)][3]

अ. व्य = का [(अ च) ×(छा च) × (प च)]

अर्थात् TB - Teacher Behaviour अ.व्य– अध्यापकव्यवहार:

F = Faetors : का – कारकम्

TV - Teacher Variables : अ च – अध्यापकचर:

PV = Pupil Variables : छा च – छात्र: चर

EV - Enviromental Variables : प च – पर्यावरणचर:

सूत्रेनानेन स्पष्टयति प्रस्फुटति वा यत् शिक्षकव्यवहारस्तु शिक्षकस्य व्यक्तिगतवैशिष्यं परिस्थितिजन्यतत्त्वानां व्यवहारिकरूपं च भवति। यस्य निरीक्षणं (अवलोकनम्) सम्भाव्यते, वस्तुनिष्टमापनमूल्याङ्कनं सम्भाव्यम्। अत:

–शिक्षकव्यवहारेषु शिक्षकप्रक्रिया सीमितसंख्यायां भवति।

–तत्र विश्वसनीयता एकरूपता च भवति।

–स वैयक्तिक–सामाजिक–बौद्धिक–संवेगात्मक–क्रियात्मकविशिष्टतानां

---

1. Teacher behaviour Consist of those sets that the teacher typically perform in the classroom in order to induce learning smith 1964
2. D.G Ryan - E.T. & Foundation of Management - G.S. Verma.
3. तत्रैव

योग एव।

–शिक्षकव्यवहारेषु गतिशीलता दृश्यते।

–शिक्षकव्यवहारस्तु स्वसामान्यविशिष्टपरिस्थितियोः कार्यात्मकं रूपं भवति।

–शिक्षकव्यवहारः अवलोकनीयो वर्तते तस्य वस्तुनिष्ठतया मापनमूल्याङ्कनयोग्यं स्यात्।

–रेयनव्रूनरमहाभागाः स्व-स्व-अन्वेषणे सिद्धान्तस्यास्य प्रतिपादनम् अकुर्वन्। यत्र निर्मितः शिक्षकव्यवहारः बाह्यलक्षणव्यवहाराभ्यां प्रदर्शनयोग्यः।

शिक्षकव्यवहारान्तर्गतघटकद्वयं समागच्छत् शाब्दिकाशाब्दिकञ्च शिक्षणाधिगमप्रक्रियाः व्यवहारद्वयंप्रभावयन्ति।

मूल्यानां संख्याविषये मतैक्याभावो दृश्यते। तथापि 'राष्ट्रिय-शैक्षिक-अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद[1] नाम्ना विख्यातेन स्वायत्तसंस्थानेन प्रकाशितं 'राष्ट्रियपाठ्यक्रमसंरचना (NCF) 2005 नामकेन स्वपत्रे छात्रेषु पञ्चमूलमूल्यानां संवर्धनाय बलमादत्ते। यथा–सत्याहिंसासदाचरणबन्धुत्वमादयः। अनेके विद्वांसः मूल्यानां संख्यां (500) पञ्चशतरिमितं परिगणयन्ते। मूल्यानां भेदाभेदक्रमे शाश्वत् तात्कालिकमूल्यम् अन्ये सामाजिक-धार्मिकार्थिक राजनैतिक सैद्धान्तिक सौन्दर्यनामक[2] मूल्यम्। साम्प्रतिके भारतवर्षेऽस्मिन् संवैधानिकमूल्यानां प्राधान्यं भवेदिति। यत्र समानता न्यायप्रियता, गणतन्त्रात्मकता कर्त्तव्यपरायणता पंथनिरपेक्षतादयः मूल्यानामनुपालनं छात्रेष्वपि संस्थापनीयं स्यात् इति शिक्षायाः भूमिका।[3]। तत्र शिक्षकस्य महत्त्वपूर्णं कर्त्तव्यं वर्तते। शिक्षकः छात्रेषु सामाजिकेषु मूल्यानां सम्प्रेषणं कथं करणीयमिति विचारयति? उत्तरं सम्भाव्यते स्वव्यवहारैः। शिक्षकाः स्वव्यवहारैः मूल्यानां शिक्षणं

1. NCERT
2. Vernon & G. Allport (Theorical social economical. asthetic, Political & Religious Types of persanality) According These value)
3. भारत का संविधान सुभाष कश्यप

छात्राणामधिगमप्रक्रिया: प्रभावयति।''[1]

'शिक्षकव्यवहार: सामाजिक: सापेक्षितश्च व्यवहारोभवति।'[2]

मैकडोनाल्डमहोदयेन तं शिक्षकव्यवहारविषये महत्त्वपूर्णं सूत्रं व्यरचि। यथा–

TB = F [(TV) × (PV) × (EV)][3]

अ. व्य = का [(अ च) × (छा च) × (प च)]

अर्थात् TB - Teacher Behaviour अ.व्य– अध्यापकव्यवहार:

F = Faetors : का – कारकम्

TV - Teacher Variables : अ च – अध्यापकचर:

PV = Pupil Variables : छा च – छात्र: चर

EV - Enviromental Variables : प च – पर्यावरणचर:

सूत्रेनानेन स्पष्टयति प्रस्फुटति वा यत् शिक्षकव्यवहारस्तु शिक्षकस्य व्यक्तिगतवैशिष्य्ं परिस्थितिजन्यतत्त्वानां व्यवहारिकरूपं च भवति। यस्य निरीक्षणं (अवलोकनम्) सम्भाव्यते, वस्तुनिष्टमापनमूल्याङ्कनं सम्भाव्यम्। अत:

–शिक्षकव्यवहारेषु शिक्षकप्रक्रिया सीमितसंख्यायां भवति।

–तत्र विश्वसनीयता एकरूपता च भवति।

–स वैयक्तिक–सामाजिक–बौद्धिक–संवेगात्मक–क्रियात्मकविशिष्टतानां

---

1. Teacher behaviour Consist of those sets that the teacher typically perform in the classroom in order to induce learning smith 1964
2. D.G Ryan - E.T. & Foundation of Management - G.S. Verma.
3. तत्रैव

योग एव।

-शिक्षकव्यवहारेषु गतिशीलता दृश्यते।

-शिक्षकव्यवहारस्तु स्वसामान्यविशिष्टपरिस्थितियोः कार्यात्मकं रूपं भवति।

-शिक्षकव्यवहारः अवलोकनीयो वर्तते तस्य वस्तुनिष्ठतया मापनमूल्याङ्कनयोग्यं स्यात्।

-रेयनव्रूनरमहाभागाः स्व-स्व-अन्वेषणे सिद्धान्तस्यास्य प्रतिपादनम् अकुर्वन्। यत्र निर्मितः शिक्षकव्यवहारः बाह्यलक्षणव्यवहाराभ्यां प्रदर्शनयोग्यः।

शिक्षकव्यवहारान्तर्गतघटकद्वयं समागच्छत् शाब्दिकाशाब्दिकञ्च शिक्षणाधिगमप्रक्रियाः व्यवहारद्वयंप्रभावयन्ति।

मूल्यानां संख्याविषये मतैक्याभावो दृश्यते। तथापि 'राष्ट्रिय-शैक्षिक-अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद[1] नाम्ना विख्यातेन स्वायत्तसंस्थानेन प्रकाशितं 'राष्ट्रियपाठ्यक्रमसंरचना (NCF) 2005 नामकेन स्वपत्रे छात्रेषु पञ्चमूलमूल्यानां संवर्धनाय बलमादत्ते। यथा-सत्याहिंसासदाचरणबन्धुत्वमादयः। अनेके विद्वांसः मूल्यानां संख्यां (500) पञ्चशतरिमितं परिगणयन्ते। मूल्यानां भेदाभेदक्रमे शाश्वत् तात्कालिकमूल्यम् अन्ये सामाजिक-धार्मिकार्थिक राजनैतिक सैद्धान्तिक सौन्दर्यनामक[2] मूल्यम्। साम्प्रतिके भारतवर्षेऽस्मिन् संवैधानिकमूल्यानां प्राधान्यं भवेदिति। यत्र समानता न्यायप्रियता, गणतन्त्रात्मकता कर्त्तव्यपरायणता पंथनिरपेक्षतादयः मूल्यानामनुपालनं छात्रेष्वपि संस्थापनीयं स्यात् इति शिक्षायाः भूमिका।[3]। तत्र शिक्षकस्य महत्त्वपूर्णं कर्त्तव्यं वर्तते। शिक्षकः छात्रेषु सामाजिकेषु मूल्यानां सम्प्रेषणं कथं करणीयमिति विचारयति? उत्तरं सम्भाव्यते स्वव्यवहारैः। शिक्षकाः स्वव्यवहारैः मूल्यानां शिक्षणं

---

1. NCERT
2. Vernon & G. Allport (Theorical social economical. asthetic, Political & Religious Types of persanality) According These value)
3. भारत का संविधान सुभाष कश्यप

सम्प्रेणं वा कर्त्तुं समर्थाः। विषयेऽस्मिन् मया एकायोजना प्रस्ताविता। यया योजनया यदि् चेत् व्यवहरन्ति तर्हि मूल्यानां सम्प्रेषणंसंस्थापनंशिक्षणं च सम्भाव्यते। योजनायामस्यां पञ्च सोपानानि सन्ति। यथा–

प्रथमसोपानम्

नियमितरूपेण कक्षाकक्षिगमनम्– **नियमवद्धता**

नियतसमयेन कक्षाकक्षिगमनम्– **समयवद्धता**

सत्यं शुद्धञ्च सूचनया संसूचनम्– **सत्यता**

द्वितीयसोपानम्

कक्षायां प्रवेशान्तरम् अभिवादनं प्रत्यभिवादनम्–**विनयशीलता**

आदर्शः– स्वच्छवस्त्रादिकम्, स्वच्छश्यामफलकम्, ततः स्पष्टलेखनम् स्वच्छ–सुन्दरमालेखः शुद्धोच्चारणम्– **स्वच्छता**

कक्षायाः उत्तमशिक्षणाय शिक्षकैः यदि अवकरः दृश्येत तर्हि छात्रा अवश्यं छात्राणां पुरतः स्वयं स्वच्छतां कृत्वा छात्रान् प्रेरयेयुः।

तृतीयसोपानम्

सम्प्रेषणे– आदरसूचकशब्दानां प्रयोगः सर्वदा करणीयः।

अवसरप्रदाने– सर्वान् छात्रान् सममवसरः प्रदेयः।

न करणीयम्– जातिसूचकम्, धर्मसूचकम् क्षेत्रसूचकम्, वर्णसूचकम्, उपाधिसूचकशब्दानां व्यवहारः न करणीयः।

करणीयम्– पाठेषु निहितमूल्यप्रदांशान् चित्वा परिस्थितिजन्यदृष्टान्तो–दाहरणैः सह सम्बन्धः स्थापनीयः।

चतुर्थसोपानम्

कक्षाकक्षे छात्रेषु चरित्राचरणव्यवहारेषु श्रेष्ठच्छात्रस्य प्रोत्साहनेन अन्यच्छात्रान् प्रेरष्येयु।

नियमपूर्वकं छात्रं प्रति विशिष्टप्रोत्साहनं प्रदाय शेषान् छात्रान् अभिप्रेरणावसरः प्रेरयेत।

कक्षायां शिक्षणक्रमे यदा-कदा प्रेरणाप्रदलघुकथा कथनीयाः।

प्रयोजनादि- (Project) विधीनां प्रयोगेण छात्राः अन्वेषपाय प्रेरणीचाः।

पाठ्यसहगामिक्रियाणामायोजनेन विशिष्टं सहभागभाजनमावश्यकम्।

पञ्चमसोपानम्

शिक्षणभिन्नक्रियाष्वपि दायित्वनिर्वणम्, मनोयोगपूर्वकं तपः मत्वा एव व्यवहारः व्यवहरणीयः।

शिक्षकव्यवहारो न हि शिक्षणपरिसरे अपितु समाजेऽपि अवलोकनीयोऽनुकरणीयश्च भवेत्।

शिक्षकः तपोपूतः तस्याचरणमनुसेव्यः। त्यागः कर्तव्यनिष्ठता-रचनात्मकता तस्य स्वभाव एव।

पाठसम्वर्द्धने तस्य साहाय्यक्रियायां शैक्षिक-मानवीयसांस्कृतिक-प्रजातांत्रिकमूल्यानां चयंनम् संसूचनम्प्रदर्शनं च भवेत्।

उक्तेषु पञ्चेसु सोपानेषु प्रदत्तक्रियायां व्यवहाराणां च स्व-स्व चरित्रेशिक्षणेव्यवहारषु व्यवहरणीयं स्यात तर्हि मूल्यशिक्षायाः विकासः अवश्यमेव भविष्यन्तीति न सन्देहावसरः शिक्षकाणां कृते वर्तमानपरिदृश्ये न केवलं क्लिष्टम् अपितु असम्भवः। तथा चेत् दृढसंकल्पितः शिक्षकः तर्हि अवश्यमेव कर्तुं क्षमः।।

अध्यापकशिक्षायां गुणवत्तासंवर्धने मूल्यशिक्षायाः उपादेयता

डॉ. स्नेहलता मिश्रा
सहयकाचार्या

त्रिमुखीप्रक्रियायां शिक्षायां शिक्षकस्य स्थानं तथैव महत्त्वपूर्णं विद्यते, यथा छात्रस्य। अतः शिक्षकेभ्यः अपि कदाचित् शिक्षा प्रदातव्या। यया ते स्वछात्रेभ्यः उत्तमशिक्षणंप्रदास्यन्ति। अध्यापकेभ्यः प्रदीयमाना शिक्षा एव अध्यापकशिक्षा। **डॉ. सर्वपल्लीराधकृष्णन्** महोदयेनोक्तं यद् एकस्य वैद्यस्य शिक्षाप्रणाल्यां यदि त्रुटिः जायते चेत् तेन एकस्यतुरस्य जीवनं नष्टं जायते। तथैव एकस्य यन्त्रिणः शिक्षापद्धतौ कापि त्रुटिः भवति चेत् तेन एकः सेतुः विनष्टो भवति। परन्तु एकस्य शिक्षकस्य शिक्षाप्रणाल्यां यदि कापि त्रुटिः संजाता, तर्हि तेन एकस्य सन्ततिक्रमस्य विनाशः नूनमेव जायते। अत्र नास्ति सन्देहावकाशः। अतः शिक्षकाणां शिक्षणप्रणाली तादृशी मानवर्धका, गुणवर्धकाश्च भवेत् यया समाजस्य अग्रिमपीढिनां संरक्षणं च भविष्यति।

छात्राः राष्ट्रस्य प्राणस्वरूपाः भवन्ति। राष्ट्रस्य उन्नतये सुछात्रसमाजस्य निर्माणमावश्यकम्। छात्रेषु नैतिकमूल्यस्य चारित्रिकमूल्यस्य च वर्धनं भवेत्। सामाजिकमूल्यं स्वीकृत्य एव छात्राः राष्ट्र समाजे च स्वस्य प्रतिष्ठा संस्थापयितुं शक्नुवन्ति। एतदर्थं शिक्षकैः तथा छात्राः निर्मातव्याः, यथा समाजे ते सुनागरिकरूपेण अभिहिताः भविष्यन्ति। अतः यथार्थेनोच्यते यत् यदि भवान् एकवर्षस्य कृते फलं प्राप्तुमिच्छन्ति, तर्हि शस्यस्य वपनं कुर्यात्। यदि दशवर्षस्य कृते फलं वाञ्छति तर्हि वृक्षः रोपणीयः, परन्तु यदि

शतवर्ष कृते फलं वाच्छति तर्हि मानवस्य निर्माणं कुर्यात्। **If your plan for one year then plant grain, If your plan for ten years then plant trees, If your plan for hundred years then plant men.**

अस्मात् ज्ञायते यत् शिक्षकेन छात्राणं निर्माणं तु जायते एव। परन्तु छात्राः प्रथमं सुमानवरूपेण परिचिताः भवेयुः। सुमानवाः भूत्वा ते आजीवनं स्वस्य मूल्यं वर्धयित्वा देशेस्य समाजस्य च मानवर्धने सहायकाः भवेयुः। एतदर्थम् अध्यापकशिक्षायां मूल्यशिक्षायाः समावेशः अवाश्यकेति मन्यते। ये अध्यापकाः प्रशिक्षणं गृहीत्वा छात्रान् अध्यापयन्ति, तेषां कृते मूल्यपरकशिक्षा तथा मूल्यशिक्षा उभयमेव आवश्यकम् मूल्यशिक्षामाध्यमेन तेषाम् आचरणे व्यवहारे च वाञ्छितं परिवर्तनं तेषां जीवनशैली शिक्षणशैली च समाजोपयोगी भविष्यति।

अध्यापकशिक्षा इदानीन्तनसमाजे समुचिता स्थितिम् अलङ्करोति। तथापि तस्याः गुणवत्तासंवर्धने मूल्यशिक्षायाः योगदानमत्यन्तमावश्यकं वर्तते। मूल्यशिक्षाधारेणैव अध्यापकशिक्षायाम् अपेक्षितं परिवर्तनमानेतुं शक्यते। अध्यापकानां शिक्षणशैलीषु परिवर्तने परिष्करणे च मूल्यशिक्षा आधुनिकसमाजे अस्त्रसदृशा कार्यं करोति। अध्यापकेषु नैतिकगुणानां विकासायं सुचरित्रसंगठनाय च मूल्यशिक्षा अपरिहार्या।

मूल्यशिक्षया निम्नोक्तप्रकारेण अध्यापकशिक्षायां गुणवत्तासंवर्धने मार्ग प्रदर्शयितुं शक्यते। यथा-

- बी.एड.पाठह्यक्रमे परिवर्तनम्।
- समन्वितः बी.एड.पाठह्यक्रमः।
- बी.एड.पाठह्यक्रमे इन्टर्नशिपव्यवस्था।
- अभिविन्यासपाठह्यक्रमः।
- युक्तिमूलकनियुक्तिः।
- आत्मरक्षाशिक्षा।

- यौनशिक्षा।
- प्रशिक्षणम् आवासीयं भवेत्।
- अध्यापकशिक्षा नियोजनपूर्ण भवेत्।
- अध्यापकशिक्षायां नवीनानुसंधानम् भवेयुः।
- प्रशिक्षणपाठह्यक्रमे मूल्यशिक्षा अनिवार्या।
- मूल्यपरकशिक्षा ऐच्छिकी

शिक्षकाणां चारित्रिकविकासाय आन्तरिकमूल्यानां विकासाय च मूल्यशिक्षा सर्वेभ्यः अध्यापकेभ्यः प्रदेया। एतेषां विषये निम्नप्रकारेण आलोच्यते। यथा-

1. **प्रशिक्षणपाठ्यक्रमे मूल्यशिक्षा अनिवार्या**- राष्ट्रस्य सर्वासु प्रशिक्षणसंस्थासु बी.एड.पाठ्यक्रमे मूल्यशिक्षा अनिवार्यतया स्थापनीया। शिक्षको छात्राणां कृते आदर्शाः मार्गाप्रदर्शकाः च भवन्ति। एतदर्थ तेषु आन्तरिकमूल्यस्य कदाचित् अभावः न भवेत्। ते जीवनस्य वास्तविंक मूल्यं ज्ञात्वा शिक्षणं प्रदास्यन्ति, चेत् छात्राणां जीवनमपि मूल्यमयं भविष्यति। ते छात्राः अग्रेगत्वा भाविजीवने सुयोग्याः अध्यापकाः भूत्वा राष्ट्रस्यान्नयने सहायकाः भविष्यन्ति।

2. **समन्वितः बी.एड.पाठ्यक्रमः**- अस्माकं राष्ट्रे यथा वैद्यछात्राः यन्त्रीछात्राः वा तथा प्रविधिमूलकं किमपि पाठ्यक्रमम् आश्रितवन्तः छात्राः द्वादशकक्षायाः अनन्तरमेव तेषां पठनं प्रचाल्यन्ते। तथैव ये अध्यापकाः भवितुमिच्छन्ति, ते द्वादशकक्षयाः अनन्तरं समन्वितं बी.एड.पाठह्यक्रमं पठेयुः। अनेन तेषां कालः वृथा व्ययो न भविष्यति। तथाा च ते अध्यापनकर्मणि अधिकतया निपुणाः भविष्यन्ति।

3. **अभिविन्यासपाठ्यक्रमः**- प्रशिक्षण विभागे छात्राणां शिक्षकाणाञ्च सौकर्याय मध्ये अभिविन्यासः पाठ्यक्रमः आयोजनीयः। ये शिक्षकाः अभिज्ञाः भवन्ति, तेभ्यः नवीनज्ञानप्रदानमावश्यकम्। प्रतिदिनं ज्ञानस्य प्रचारप्रसाराभ्यां

सह उन्नतिरपि अपेक्षिता। ते कथं नवीन्प्रविधिभिः सह कौशलैः सह पाठयिष्यन्ति। तथा तेषां ज्ञानभाण्डागारे कथमभिवृद्धिः भवेत्, एतदर्थ अभिविन्यासपाठह्यक्रमः संचालनीयः।

4. **प्रशिक्षणम् आवासीयं भवेत्**– राष्ट्रस्य सर्वेषु प्रशिक्षणसंस्थानेषु प्रशिक्षणव्यवस्था आवासीया भवेत्। अनेन छात्राणं सौकर्य जायते। किमर्थमित्युक्ते छात्राः प्रातकालादारभ्यः सायं यावत् अस्मिन पाठ्यक्रमे व्यस्ताः भवन्ति। अत एव तेभ्यः स्वस्योपरि ध्यानं प्रदातुं समयः नैव लभ्यते। पुनः बहवः छात्राः दूरादागच्छन्ति। एतदर्थ आवासीयव्यवस्थया तेषां सुरक्षां प्रति ध्यानं दातुं शक्यते। ते समाजे सुरक्षिताः। सम्भूय स्वाध्ययने तत्परा भविष्ययन्ति।

5. **अध्यापकशिक्षा नियुक्तिपरका भवेत्**– अध्यापकशिक्षा ईदृशी भवितव्या, यया छात्रा झटिति एव शिक्षाप्राप्त्यनन्तरं नियुक्ति प्राप्नुयः। यदि प्रशिक्षणं प्राप्य नैवोपलभ्यते, तर्हि प्रशिक्षणस्य आवश्यकता का। नियुक्ति मूलामिमां शिक्षां विचिन्त्य साधारणजनाः अध्यापकाः भवितुं प्रयतमानाः भवन्ति। इतः पूर्वं तु विचारः आसीत् यद् **सा विद्या या विमुक्तये**, किन्त्विदानीं **सा विद्या या नियुक्तये** इति विचारः प्राबल्यं धते। अतः अध्यापकशिक्षा इत्थं भवितव्या, यया छात्राः पठनादनन्तरं नूनमेव उद्योगं प्राप्य नियुक्ता भवेयुः।

अनेन प्रकारेण अध्यापकशिक्षायां मूल्यशिक्षा यदि समन्विता भविष्यति, तर्हि शिक्षायामस्यां गुणवत्तासंवर्धने अत्यन्तं सौकर्य भविष्यति। इमां गुणवत्तामाश्रित्य अध्यापकाः स्वस्मिन् क्षेत्रे प्रतिष्ठिताः प्रशंसिताः च भविष्यन्तीति नास्ति सन्देहावकाशः।

॥ जयतु भारतम्, जयतु संस्कृतम्॥

अर्वाचीनशिक्षाव्यवस्थायामध्यापनमूल्यानि

डॉ. चेतनवेदिया
संस्कृतशिक्षकः

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥

(स्कन्दपुराणम्)

'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' उक्तिः यथार्थभावेन स्वाशयं प्रकटयति यत् संसारे मोक्षस्य विविदिषा केवलं ज्ञानेनैव तृप्तिं प्रयाति एवञ्च ज्ञानस्य प्रसारकोपादानरूपेण गुरुणां योगदानं विविनक्ति। अन्धकारात् प्रकाशं प्रति नयमानः गुरवः अस्मान् लौकिकालौकिकज्ञानेन सन्तर्पयन्ति। गुरुः सर्वदा शिष्योपकर्ता, ज्ञानवान् आत्मनिष्ठः च भवति यथा आदिशति शास्त्रं यत्-

गुरुशिष्योपकर्ता च सत्पथस्य प्रवर्तकः।

वर्तमाने गुरुचयार्याः नवीनस्वरूपः दृश्यते यत्र गुरुः ज्ञानोत्पादनस्य अभिकरणरूपेण स्थितो भवति। वास्तविके व्यावसायिकरणस्य युगे सर्वत्र व्यावसायिकतायाः प्रश्रयः दृश्यते। यद् प्राक्काले धनार्जननिमित्तं शिक्षमाणमाचार्यं वणिजं भवति। यथोक्तं कालिदासेन मालविकाग्निमित्रे यत्-

यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।

सम्प्रति शिक्षा स्वयमेव एकः लाभप्रदव्यापाररूपेण प्रतिष्ठिताऽस्ति। अतः वर्तमानयुगधर्मानुकूलमध्यापकेषु कीदृशानि मूल्यानि अनिवार्यानि सन्ति विषयेऽस्मिन् अवधेयम्। सर्वतः प्राक् गुरुः स्वशास्त्रज्ञाता एवञ्च समुचितसम्प्रेषकः स्याद्। उक्तञ्चापि-

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था सङ्क्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्त।

यस्योभं साधु स शिक्षकाणां धुरिप्रतिष्ठापयितव्य एव॥

कक्ष्यायाः सः छात्रान् विषयवस्तुं प्रति कर्षणे शक्यः भवेदः। सः सफलवक्ता स्याद् येन सः न केवलमात्मज्ञानस्योपस्थानं छात्राणां पुरस्तात् रोचकरीत्या कर्तुं शक्नुयात् अपितु छात्राः अपि तस्य वाक् कलामाध्यमेन प्रभाविताः स्युः। एतदर्थमध्यापक-प्रशिक्षणान्तराले वाग्वर्धिनीसभायाः निरन्तरमायोजनं कर्तव्यम्।

अध्यापकः समयानुकूलं सैद्धान्तिकं प्रयोगिकञ्च स्याद्। सर्वदा सैद्धान्तिकत्वात् व्यक्तित्वः रुक्षायते तत्र अधिकप्रायोगित्वात् शिक्षणस्य अनुशासनं निर्मिलितं भवति। अतः उभयोः समत्वमाचरेत्। एवञ्च यावच्छक्यं शिक्षकः ज्ञानस्य प्रायोगिकपक्षान् उद्घाटयेत्। उक्तञ्चापि-

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।

सुचिन्तितं चौषधमातुराणां न नाममात्रेण करोत्यरोगम्॥

अध्यापकानां व्यक्तित्वे तावत् वैशिष्टं स्यात् येन छात्राः स्वमेव तं प्रति आकर्षिताः भवेयुः। अध्यापकेभ्यः आवश्यकता वर्तते यत् ते नवीनोपागमनां एवञ्च नवाचारान् प्रति जागरूकाः भवेयुः। यतोहि समयानुसार जायमानेषु परिवर्तनेषु यः आत्म-अस्तित्वं प्रभावीरीत्या प्रमाणितं कर्तुमिच्छति सः नूतनसम्प्रत्ययायानां सर्वदा विज्ञः स्यात्। उक्तञ्चापि-

पुस्तकस्था च या विद्या परहस्तगतं धनम्।

कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम्।।

अध्यापकः निष्पक्षः मूल्याङ्कनकर्ता भवेत्। अत्र ध्यातव्यमस्ति यत् अध्यापकाः मूल्याङ्कनस्य सैद्धान्तिकं व्यावहारिकञ्च पक्षाणां समुचितज्ञाता स्यात्। मूल्याङ्कनस्य बहुविमियतायाः ज्ञानं एवञ्च मूल्याङ्कनस्य मनोवैज्ञानिकपक्षाणामपि अध्येता भवेत्। उक्तञ्चापि-

ज्ञानेन विद्यया चैव प्रज्ञां शश्वद्विवर्धयेत्।

यस्य प्रज्ञामयं चक्षुः चक्षुष्मान स नरः स्मृतः।।

यथोक्तं वर्तते यत् 'सत्यं परं धीमहि' अध्यापकाः अपि सत्यवादिनः भवेत्। कक्षागतपरिस्थितिषु जीवनचर्यायां च यदि सत्यस्य तपस्या भवति चेत् व्यक्तित्वे स्वमेव दृढता आयाति। उक्तञ्चापि कविना कबीरदासेन-

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।

जाके हृदये साँच है ताके हृदये आप।।

आत्मावलोकनं, आत्ममन्थनं स्वमेव भावात्मकं शुद्धिः वर्तते येन अन्तरात्मशुद्धिः जायते। यथोक्तं उपनिषदि 'आत्मा वा रे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' समदृष्टेः शिक्षणं स्यात्। समदृष्टा अध्यापकः ज्ञानस्य वितरणमपि समानरूपेण करिष्यति। 'समत्वः' व्यक्तित्वं आदर्शशिक्षकस्य परिचायकः भवति। दीक्षा, सव्रतः एवञ्च भद्रभाषणं अध्यापकानां वैशिष्टयं भवति। वेदेषु अपि प्रार्थ्यते। 'मा भ्राता भ्रातरं दीक्षं मा स्वसा रमतः स्वसा, संमञ्चसर्वतो भूत्वा वाचवद्तद्रिया।'

अथ उक्तञ्चापि यजुर्वेदे यत्-

आनोभद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।।

अथ च गीतायां-

शुनि चैव श्वपाके च पण्डितः समदर्शिनः।।

अध्यापकाः नूतनायोजनेषु योगदानं प्रति नैष्ठिकाः स्युः। सहकर्मिणं प्रति सहिष्णु स्यात्। स्व व्यवसायं प्रति जागरूकाः भवेयुः। अध्यापकः छात्राणां प्रेरकः स्याद्। अतः शिक्षकेण यत्नेन वृत्तं संरक्षेद्। उक्तञ्चापि महाभारते-

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।

अथ च मनुस्मृतौ अपि व्यवसायं प्रति निष्ठतायाः विषये भणते यत्-

अज्ञेभ्यो ग्रन्थितः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः।

धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः।।

मूल्येषु अन्यतमः गुणः भवति दृढनिश्चयः। अध्यापकेषु आत्मविश्वासः एवञ्च आत्मव्यवसाये दृढनिश्चयश्च अत्यावश्यकता वर्तते। अनेन तेषां शिक्षणोद्देश्यं एवञ्च जीवनदर्शनं प्रोन्नतिं यास्यति। शिक्षणस्य पथे तेषां पदानि न्यायमार्गे सदैव अग्रगामिनः भवेयुः उक्तञ्च भर्तृहरौ-

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु,

लक्ष्मीः समाविशन्तु गच्छतु वा यथेष्टम्।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,

न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

अध्यापक शिक्षा में मूल्यमीमांसा

प्रो. भास्कर मिश्र

ऋषि-मुनियों, पैगम्बरों और साधु-सन्तों के वचनों से देदीप्यमान होने पर भी आज अराजकता असन्तोष और अलगाववाद की बिखरती छटाओं ने सम्पूर्ण मानव समाज को गहरी चिन्ता में झोंक दिया है। चिन्ता स्वाभाविक है, क्यों कि ज्ञान मे उदय काल से ही जहाँ सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामया: की मानना के साथ यत्र विश्व भवेत्यके नीडम् की परिकल्यना की गई थी, वहीं शान्ति के स्थान अशान्त वातावरण क्यों बनता जा रहा है, सभी के खरों और वचनों में एकरचता मल के ऐसी कामना की जाती रही है, वहाँ आपसी विद्वेष से नफरत के बीज कैसे अङ्कुरित होने लगे? ऐसे न जाने कितने प्रश्न विद्वत् समाज के मन-मस्तिष्क पर अङ्कुरित होते दिखाई दे रहे हैं, किन्तु इन प्रश्नों का कहीं से भी समाधान होता नजर नहीं आ रहा है। सामाजिक विघटन को लेकर चिन्ताएँ बढ़ती जा रही हैं विश्व की एक रसता टूटती नजर आ रहा है। इन्ही आकाक्षाओं ने न जाने क्यों सम्पूर्ण शिक्षा - प्रणाली पर एक प्रश्न चिह्न अङ्कित कर दिया है।

स्वाभाविक भी है कि 'ज्ञानादेव तु केवल्यम्' के द्वारा ऋषि-मुनियों न ज्ञान को कैवल्य के यदाता के रथ में परिभाषित किया है तथा उत्कृष्ट जीवन का साधक माना है, वह आज भटकाव के मार्ग को क्यों प्रदर्शित कर रहा है? आज भौतिक चका चौंध ने मानव को इतना प्रभावित कर दिया है कि निज स्थार्थ से आगे उसे कुछ दिखाई ही नहीं देता है। भौतिक संसाधनों की लोलुप्तत्ता ने उसे इतना, प्रभावित कर दिया है कि वह सम्बन्धों को भुलाकर किसी भी तरह से केवल अर्थोपार्जन तक ही सीमित हो गया है? उसे सुसभ्य और संस्कृत समाज की आवश्यकता

नहीं है जहाँ समानता सहयोग और सह अस्तित्व के भाव विद्यमान हैं, जिसका आधार आध्यात्मिकता से पोषित मानवतावादी भावनाओं में हैं जिसे ऋषि-मुनियों ने मूल्याधारित शिक्षा के रूप में विवेचित किया है। जैसा कि भामह ने-

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीति च साधु काव्य विवेषणम्।।

के द्वारा पुरुषार्थ। रूपी मानवता को आयुषण की प्राप्ति शिक्षा द्वारा ही प्राप्त ही सकती है फिर शिक्षा पर प्रश्न करना कहाँ तक उचित है। हाँ मानवीय मूल्यों पर आद्यात अवश्य हुआ है और उसका प्रथम कारण पारिवारिकपदिप्रेक्ष्य तथा द्वितीय विद्यालयीय परिसर जहाँ संस्कारों की शिक्षा का अभाव दिखाई देता है, यथा-

जन्मना जयते शुद्रः संस्काराह द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिमि क्षोत्रिय उच्यते।।

आज के परिप्रेक्ष्य में स्मृति कारों को समन्पने की आवश्यकता है, क्यों कि मानवता का आभूषण संस्कार ही हैं, जिससे संस्कृत हुआ व्यक्ति चारों दिशायों में अमन और शान्ति की धारा प्रवाहित कर पायेगा। तभी तो हमारे ऋषियों न विद्या-अविद्या रूपी ज्ञान और विज्ञान की धारा द्वारा आत्म-तत्त्व के विवेचन के साथ सांसारिक सुख-समृद्धि के विकास का मार्ग प्रशस्थ किया है, शैक्षणिक प्रणाली में समाहित करने की आवश्यकता है। सम्मवत इसी कारण अर्थ और काम को धर्म मोक्ष से साधने का आदेश दिया है। जैसा कि श्रीमद्मगवद्गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए श्री कृष्ण कहते हैं-

ज्ञानं लेऽहं सविक्षानमिदं वक्ष्यान्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।।

के द्वारा स्पष्ट निर्देश दिया गया है ज्ञान और विज्ञान तथा विज्ञान सहित ज्ञान का उपदेश शिक्षा का ध्येय होना चाहित। क्यों कि जब तक

वस्तु का पदार्थ के बाहर और आध्यान्तर तत्त्व का ज्ञान नहीं होता तक तक सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है। क्यों कि तत्त्व ज्ञानी ही के विश्लषेण द्वारा अपने परम लक्ष्य को साध सकता है अर्थात् सही और गलत अथवा पाप और पुण्य के अन्तर को समझ सकता है। यही कारण है कि आज के परिप्रेक्ष्य में विद्यालयीय शिक्षा के दायित्व का विस्तार होते दिखाई दे रहा है। जहाँ अक्षर बोध के साथ-साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है। जिसका उद्देश्य मानव-व्यक्तित्व के बहुआयामी पक्ष का विकास है। पूर्व में जो शिक्षा स्वर-वर्णादि के उच्चारण के रूप में विख्यात थी, वहीं शिक्षा के आधुनिक परिप्रेक्ष्य में क्षेत्र विस्तार के कारण ज्ञानात्मक पक्ष के साथ व्यक्तिविकास और सामाजिक भावों को विकसित करने का आधार बन गई है।

शिक्षा अपने अन्तर में मानव के बहुआयामी पक्ष के विस्तार के उपरान्त भी केवल रोजगार के संसाधनों की उपलब्धी का आधार बन कर रह गई है, वह भी कहीं पूर्ण होता दिखाई नहीं दे रहा है। यही कारण है कि मानव की अपेक्षाओं की पूर्ति के अभाव में युवा पीढ़ी में असन्तोष, विद्वेष, अलगाव और अराजकता के भाव उजागर होते दिखाई दे रहें, जिनके निदान का एक ही मार्ग है और वह है मूल्य-संरक्षण। जिसके लिए शिक्षाविदों ने समय-समय पर अपने महनीय सुझाव द्वारा विश्व समुदायों को चेताया है। उनका मानना है कि भौतिक चकाचौंध के प्रभाव से मूल्यों की अनदेखी नहीं की सकती है। एतदर्थ प्राच्यार्वाचीन काल में ऋषि-मुनियों और धर्मशास्त्रियों द्वारा विवेचित मूल्यावधारणा मीमांसा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आवश्यक हो गई है। क्योंकि धार्मिक उन्माद के बहाने से जिस जेहाद के नाम पर अलगाववाद और आतंक पनप रहा है, उसमें नैतिक मूल्यों का ह्रास ही तो है। धर्म तो परस्पर जोड़ने का कार्य करता है न कि आपस में विद्वेष और नफरत का संचार करता है। वाजयनेयि बाह्मणोपनिषद् भी तरह के संकेत देता है जहाँ 'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा। लोके धमिष्ठाम् प्रजा उपसर्पान्ति....' के द्वारा धर्म लक्षण को विवेचित करते हुए कहा गया है। समस्त विश्व धर्म के आधार पर

ही अवस्थित है, धार्मिक कृत्यों में आसक्त जन ही अभ्युदय को प्राप्त होते हैं, धर्म अनाचार को दूर करता है तथा इस भवसागर से पार लगाने के फलस्वरूप धर्म को परमश्रेष्ठ कहा गया है। धर्म मनुष्य को अन्तरदृष्टि प्रदान करता है, गम्भीर समस्याओं का समाधान देता है, लोगों के साथ पूर्व सम्न्वय करता है तथा हमारे मन-मास्तिष्क को परिपक्वता, प्रदान करते हुए अभ्युदय और नि:श्रेयस् का मार्ग प्रशस्त करता है। वास्ताविक रूप में धर्म ही एक ऐसा मार्ग है, जो समाज विश्व को मानवत्स के सूत्र में बांधते हुए सदाचार और सह -व्यवहार का प्रशिक्षण प्रदान करता है। आपसी सहयोग और प्रेम पूर्ण आचरण का प्रशिक्षण धार्मिक शिक्षा के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। तभी तो राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने धर्मविहीन शिक्षा को अस्तित्व हीन बताया था। तभी महात्मा गाँधी ने हरिजन पत्र 29 अगस्त 1936 में धर्म की विवेचना इस प्रकार की है- धर्म हीन जीवन बिना पतवार की नाव के समान है जिस प्रकार बिना पतवार के नाव अपने उद्दिष्ट स्थल पर नहीं पहुँचेगी, उसे लहरे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जायेंगी, उसी प्रकार मनुष्य बिना धर्म के इस संसार रूपी भवसागर में नित्य गोते खाता फिरेगा और अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा। वास्तविकता भी है- धार्मिक भावना से ओत-प्राप्त व्याक्तित्व ही विश्व-बन्धुत्व की भावना से भाषित होता हुआ समाज में आपसी सहयोग और सह-व्यवहार के अनुरूप आचरण कर पायेगा।

यही कारण है कि धार्मिक शिक्षा की विवेचना में भारत के संविधान निर्माताओं ने सर्वधर्मसम्भाव पर आधारित शिक्षा-व्यवस्था का संविधान में स्पष्ट उल्लेख किया है। धर्म नहीं सिखाता आपस में वैर करना हिन्दी है हम हिन्दुस्तान हमारा के भावों को ही प्रधानता दी है।

रामायण के रचनाकार वाल्मीकि ने लङ्कापति रावण का अन्त मर्यादापुरुषोत्तम राम की दिग्विजय द्वारा भी यही संदेश देने का प्रयास किया है कि अधर्म पर धर्म की जीत स्पष्ट है। तभी तो 'रामादिवत्प्रवर्तितव्यं

न तु रावणादिवत्' के द्वारा आचार्य विश्वनाथ ने कृत्य में प्रवृत्ति और अकृत्य का त्याग, की प्रवृति द्वारा धर्माचरण का उपदेश दिया है। आचार्य मनु ने धर्माध्याय में धर्म और धर्माचरण की विषद व्याख्या में जिन दस लक्षणों 'धृति क्ष्मा दमोऽस्तेयं.....' का विवेचन किया है, वे भी इस समन्वित स्वरूप का ही, समर्थन करते हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् में भी धर्म के स्वरूप और उसकी आवश्यकता पर बल देते हुए कहा गया है 'अन्धकार से प्रकाश की और प्रवृत्त करने का, असत्य से सत्य का मार्ग प्रशस्त करने का तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर जाने का कार्य धर्म ही करता है। अतः मानव व्यक्तित्व के निर्माण के लिए धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता है, धार्मिक शिक्षा सह-व्यवहार, सहाचरण, नैतिकता और अहिंसात्मक प्रवृत्ति के विकास का आधार है। यह सभी धर्मो का अन्तव्य है। फिर धर्म के नाम पर ऐसा अन्माद क्यों को जीवन में अमृतत्व के स्थान पर विष का संचार करता है। मानव को विश्व सभारी बनाता है। इसे रोकना होगा, धर्म-विवेचना द्वारा मानव समुदाय को यह तान होगा कि धर्म विवंश नहीं है, अपितु मानवता के संरक्षण का आधार है। तभी तो हमारे पूर्वाचार्यो ने व्यक्तित्व के बहु आयामी पक्ष के विकास हेतु धर्म और विज्ञान को एक ही तराजु के दो पलड़ों में समान रूप से तोलने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि ज्ञान और विज्ञान अर्थात् परा और अपरा विद्या को समान रूप से जानना चाहिए, जिससे आध्यात्मिक गुणों के विकास के साथ-साथ भौतिक संसाधनों की प्राप्ति सहज रूप से हो सके। ज्ञान और विज्ञान, इस दोनों पक्षों का आधार सत्य का अन्वेषण रहा है। तभी तो ऋषि-मुनियों ने मानव समाज को आदेश दिया है कि यदि विश्व का कल्याण चाहते हो तो धार्मिक स्त्रोत में बँध कर जन-कल्याण की भावना से मर्यादित संस्कृति के अनुपालन द्वारा राष्ट्रोत्थान में अपना योगदान दो। यही मूल्यमीमांसा का प्रतिपाद्य विषय है।

तभी तो मूल्यमीमांसा के तात्त्विक विश्षूलेषण की दृष्टि से दिल्ली विद्यापीठ के संस्थापक कुलपति पद्मश्री डॉ. मण्डन मिश्र ने

जीवन शैली को विकसित करने में आध्यात्मिकता से संवोष्टित भौतिक तत्त्वों को सहायक माना है, जिनकी उपलब्धि वैज्ञानिक पक्ष के विकास पर आधारित है। अध्यात्मिकता धर्म से पोषित है, तो भौतिक उपलब्धियाँ विज्ञान से धर्म और विज्ञान दोनों ही सत्य के अन्वेषण में सहायक हैं और दोनों मानव-व्यक्तित्व के विकास में समान महत्त्व है। अन्तर केवल इतना है कि धर्म ब्रह्मवद ब्रह्मेव भवति की अवधारणा को पूर्व में निश्चित कर सत्यान्वेषण की ओर प्रवृत करता है, जब कि विज्ञान अन्वेषण के परिणाम के आधार पर सत्य के स्वरूप को पारिभाषित करता है। इस प्रकार यदि देखा जाये तो धर्म और विज्ञान एक दूसरे के विरोधी नहीं, अपितु दोनों का लक्ष्य सत्य का शोध है। मूल्यमीमांसा का प्रतिपाद्य विषय इस ओर संकेत देता है, जिसे वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है और तदनुरूप उसे पाठ्यक्रम में समाहित करने की आवश्यकता है।

परिवर्तित मूल्य संकट समीक्षा–समाधान के भारतीय उपागम

प्रो. रमेश प्रसाद पाठक
संकाय प्रमुख शिक्षा शास्त्र

आज का युग विज्ञान का युग कहा जाता है। मनुष्य ने विज्ञान के क्षेत्र में अपरिमित उन्नति की है। वह प्रकृति पर विजय का दावा करने लगा है। किन्तु इतने विशाल और विस्तृत जगत में वह स्वयं बहुत छोटा होकर खड़ा है। उसमें अहंकार और व्यक्तिवाद की प्रकृति घर कर गई है। वह केवल शरीर पर केन्द्रित हो गया है। उसे भौतिक साधन ही सुख का आधार मालूम पड़ते हैं। भौतिकवाद का बोलबाला है। इसी के परिणाम स्वरूप मनुष्य के सम्मुख अन्य समस्यायें भी खड़ी हो गई है। दुश्चिन्ता, तनाव, असुरक्षा उसकी प्रवृत्ति बन गई हैं। बहुधा मद्यपान, धूम्रपान आदि इसका उपचार समझे जाते हैं। यहाँ तक बात आत्महत्या तक पहुंच जाती है। साम्प्रदायिकता, आतंकवाद सभी तरह के भ्रष्टाचार विकराल रूप से मनुष्य के सम्मुख खड़े हैं। यौन शोषण, भ्रूण हत्या तथा दहेज प्रथा नारी जीवन के लिए अभिशाप बन गये हैं। प्रातः समाचार पत्र इन्हीं सब सामाजिक समस्याओं से भरा रहता है। ये सारी समस्यायें समाज, जीवन को दूषित करके विघटित करने का कार्य कर रही हैं। धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक नेताओं ने भी अपनी विश्वसनीयता खो दी है। वास्तव में हमारे सामने एक भयावह और निराशाजनरक स्थिति उत्पन्न हो गई है। ये सब देखकर विचारवान व्यक्ति अत्याधिक चिन्तित हैं तथा समाधान

खोजने का प्रयास करते रहते हैं। सभी एक ही निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि व्यक्ति की शुचिता और समाज की व्यवस्था बनाये रखने के लिए जिस तत्व की आवश्यकता होती है वह है जीवन के मूल्य। जीवन मूल्यों के अभाव में मनुष्य चरित्रहीन, दिशाहीन, उद्देश्यहीन और श्रद्धाविहीन हो जाता है।

मूल्य एक आधुनिक शब्द है। यह उपभोक्तावादी विचारधारा से निकलकर आया है। गुण, सदगुण, आदर्श, सदाचार आदि शब्दों का प्रयोग बहुत पहले से होता आया है। अब आगे मूल्य शब्द का प्रयोग ही उचित होगा। वास्तव में मूल्य मानव जीवन को दिशा देते हैं। उसकी गुणवत्ता का विकास करते हैं, उसे शुद्धता, शुचिता एवं पवित्रता प्रदान करते हैं। साथ ही साथ समाज जीवन की व्यवस्था और सुचारूता बनाये रखते हैं।

देखा जाये तो पुराने विचार आदर्श अब दकियानूसी शब्द लगने लगे हैं। मूल्यहीनता ने ही मूल्य का स्थान ले लिया है। भौतिक वस्तुओं का मूल्य इतना बढ़ गया है कि मनुष्य का मूल्य बहुत गिर गया है। भारत में व्यक्ति और समाज में व्यवस्था बनाये रखने के लिए जीवन को चार आश्रमों में बांटा गया था। ये थे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। जीवमे शरद: शतम् अर्थात् सौ वर्ष के जीवन की कल्पना की गई थी और हर आश्रम 25 वर्ष का माना गया था। ब्रह्मचर्य के पच्चीस वर्ष संयम, स्वाध्याय और विद्या अध्ययन; गृहस्थ के पच्चीस वर्ष परिवार बनाकर समाज के उत्कर्ष के लिए कार्य करना; वानप्रस्थ के पच्चीस वर्ष परिवार और समाज में रहते हुए समाज सेवा में लगाना तथा सन्यास के पच्चीस वर्ष धार्मिक एवं आध्यात्मिक अभ्यास में समय लगा देना। इस प्रकार की आश्रम व्यवस्था व्यक्ति तथा समाज को बनाये रखती थी। दूसरी ओर मनुष्य को सतत उन्नति के लिए पुरुषार्थ की व्यवस्था दी गई थी। ये चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मानव जीवन के उत्कर्ष की सीढ़ियां मानी गई थी। पुरुषार्थों में धर्म मूल है। भारत में मनुष्य जीवन की प्रेरक शक्ति धर्म ही है, अर्थ और काम इसी पर आधारित हैं। धर्म मानव जीवन

को परमात्मा की ओर जाने वाला एक श्रेष्ठ साधन है तथा मानव जीवन को गुण सम्पन्न बनाकर उसे पवित्र जीवन जीने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार से मनुष्य भौतिक जीवन के मोहपाश से मुक्त होकर परमशक्ति को प्राप्त कर लेता है।

प्राचीन काल से धर्म ही मनुष्य के आचरण का मार्गदर्शन और नियंत्रण करता आया हैं। लोगों के मन में एक आस्था, एक विश्वास उन्हें पवित्र जीवन जीने की प्रेरणा देता था। धर्म का अर्थ था जीवन की कला। इसी धर्म के सम्बन्ध में मनुस्मृति में कहा गया है,

धृति क्षमा दमो अस्तेयं शौचं इन्द्रिय निग्रहः।

धीर्विद्या सत्यम अक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम॥–6/92 मनुस्मृति

इस श्लोक में धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं–दृढ़ इच्छा शक्ति, क्षमा, दम, शुद्धता, चोरी न करना, इन्द्रिय संयम, स्वाध्याय, सच्चा ज्ञान, सत्य और क्रोध न करना। वास्तव में ये दसों सद्‌गुण मूल्य ही तो हैं।

आज हमारा देश ही नहीं सम्पूर्ण विश्व मूल्यों के संकट से जूझ रहा है। आवश्यकता है इस संकट का समाधान खोजने की। यद्यपि भौतिकवाद ने कुछ तात्कालिक समाधान सुझाये हैं जब 'सब चलता हैं, सत्य वही है जिससे काम चल जाये', या मूल्य वही जो उपयोगी हो। वास्तव में हमें समस्याओं के स्थायी समाधान की आवश्यकता है। यह भी सच है कि हर समाज की अपनी एक संस्कृति होती है और मूल्य भी उस संस्कृति पर आधारित होते हैं। हमारे देश में मूल्यों के संकट का समाधान भारतीय दृष्टिकोण से ही खोजना होगा।

मूल्यों के संकट के समाधान हेतु कुछ भारतीय उपागम :

- भारत की प्रकृति आध्यात्मिक है। यद्यपि आजकल पश्चिम के प्रभाव में भौतिकता का अधिक जोर है। आवश्यकता है कि परिवारों, विद्यालयों तथा मीडिया के द्वारा बच्चों तथा युवाओं में आध्यात्मिक चेतना का विकास किया जाए।

- वेदान्त एक ऐसा जीवन दर्शन प्रस्तुत करता है जो सबमें एक ही आत्मा विद्यमान होने की बात करता है। यह विचार हमें अनेक दोषों से बचाये रखता है। हिंसा, किसी के प्रति घृणा, दुराचार या अन्याय के भाव ही हमारे मन में नहीं आ सकते क्योंकि सबमें अपना ही रूप दिखाई देता है। अतः वेदान्त दर्शन की व्यावहारिक शिक्षा आवश्यक है।

- धर्म ही मूल्यों का मुख्य स्रोत है। विश्व के सभी धर्म अपने अनुयाइयों के श्रेष्ठ आचरण की शिक्षा देते हैं। धर्म मनुष्य में पवित्रता तथा शुचिता का संदेश देता है। अतः व्यक्ति को धर्म पर आरूढ़ होने की प्रेरणा देनी चाहिये।

- आज विश्व को सभी देशों में योग की मान्यता बढ़ रही है। यद्यपि अधिकांशतः आसन, प्राणायाम और ध्यान के ही अपनाये जा रहे हैं। जबकि योग में यम और नियम मुख्य रूप से मानव आचरण को परिशोधित करने के उपाय हैं। पाँच यम-सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह और पाँच नियम-शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान देखा जाये तो ये सब जीवन मूल्य ही हैं। आजकल शिक्षा व्यवस्था में भी योग का प्रविधान किया गया है; आवश्यकता है उचित रूप से उसे व्यावहारिक बनाया जाये।

- गीता में प्रकृति के तीन गुणों का वर्णन है। इन्हीं गुणों के आधार पर मनुष्य का स्वभाव बनता है। ये गुण है सत, रज, तम। इन्हीं के आधार पर सत्यं, शिवं, सुन्दरम् तीन मौलिक मूल्यों का विकास होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव मन के तीन आयाम होते हैं-जानना, मानना और करना। सत्य जाना जाता है, सुन्दर माना जाता है और शिव किया जाता है। अतः बच्चों को सत्य जानने, सुन्दर को मानने और श्रेष्ठ कार्य करने की प्रेरणा दी जानी चाहिए।

- मानव जीवन व्यष्टि, समष्टि से सृष्टि और सृष्टि से परमेष्ठि की ओर बढ़ता है। व्यक्ति समाज में समरस होने, सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही चेतना की अनुभूति करते हुए परमात्मा तक जा सकता है। यह आध्यात्मिक दृष्टि व्यक्ति को श्रेष्ठ और महान बना सकती है। यहीं व्यक्ति का समग्रता में विकास है। शिक्षा का उद्देश्य भी बच्चे के समग्र व्यक्तित्व का विकास करना होता है।
- बच्चे पर गर्भकाल से ही संस्कार पड़ने प्रारम्भ हो जाते हैं। संस्कार प्रक्रिया द्वारा दोषों को समाप्त करके गुणों का विकास करना सम्भव है। वेदान्त सूत्र में शंकराचार्य ने संस्कार को परिभाषित करते हुए कहा है, 'संस्कारो हिं नाम गुणाधानेन वस्याद दोषापनयनेन वा' गर्भोपनिषद में गर्भ कालीन संस्कारों का उल्लेख है। अभिमन्यु का उदाहरण उल्लेखनीय है।
- ब्रह्मचर्य का पालन करना-ब्रह्मचर्य को रूढ़ अर्थों में नहीं लिया जाना चाहिए। यह संयम, स्वाध्याय और आत्म नियमंत्रण की अवस्था है। इसकी प्रेरणा से स्वतः जीवन मूल्य विकसित होने लगते हैं।

शिक्षा द्वारा बच्चों में मूल्यों का संस्कार :

बच्चों में संस्कार देने का सबसे सशक्त माध्यम शिक्षा है। परिवार और विद्यालयों में संस्कारमय वातावरण होना नितान्त आवश्यक है। बच्चों का स्वभाव है वे जो देखते हैं, वही सीखते हैं। अतः माता-पिता और आचार्य को बच्चों के सम्मुख वही आचरण प्रस्तुत करना चाहिए जैसा वे बच्चों में देखना चाहते हैं।

बच्चों में आदेशात्मक विधि से मूल्यों के संस्कार नहीं डाले जा सकते, उनके सामने उदाहरण प्रस्तुत होना चाहिए। उन्हें केवल विचार नहीं उन में संवेदनशीलता विकसित करनी चाहिए। अच्छी आदतों से चरित्र का निर्माण होता है, आदतें स्वभाव बनकर आचरण में उतरती हैं। बच्चे ही

नींव हैं, यदि बचपन सुधर गया तो आगे का जीवन अपने आप अच्छा होता जायेगा। हमें बच्चों का मस्तिष्क केवल जानकारियों या ज्ञान से भर देने के बजाय भावनाओं का परिशोधन करना चाहिए।

बच्चों की अपनी एक सोच, अनुभूति, परिकल्पना और अभिव्यक्ति की शैली होती है। अत: बच्चों का मनोविज्ञान समझकर उन्हें संस्कार देने का प्रयास किया जाना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में व्यक्ति निर्माण ही शिक्षा का उद्देश्य है। व्यक्ति क्या और कैसा समझकर ही इसका विकास करना चाहिए।

वर्तमान परिवेश जीवन के अनेक पक्षों को समाहित किये हुए है। मानव जीवन विकास के पथ को अंगीकार करके भौतिकता के ताने-बाने में आबद्ध हो गया है। आज हम सुखमय जीवन जीने में परमार्थ और परोपकार आदि अनेक मूल्य व्यवहार में नहीं आ रहे हैं। बच्चे जो देख रहे है वही अनुकरण कर रहे है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम स्वयं जीवन में ऐसा कार्य करे जो दूसरों के लिए आदर्श और रोल मॉडल बन सके। इसके लिए अध्यापक समाज को आगे आना होगा वही मूल्य को जीवन में प्रतिस्थापित कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. डागर, वी. एस. (1985), शिक्षा और मानव मूल्य, चंडीगढ़ हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
2. मनुस्मृति, भाष्य, रमाशंकर शुक्ल, वाराणसी, चौखम्भा प्रकाशन।
3. वेदान्त सूत्र–शंकराचार्य, वाराणसी चौखम्भा प्रकाशन
4. गर्भोपनिषद–वाराणसी, चौखम्भा वाराणसी
5. श्रीमदभागवद्गीता, गोरखपूर, गीता प्रेस
6. पाठक आर.पी. (2011), भारतीय परम्परा में शैक्षिक चिन्तन, दिल्ली कनिष्का प्रकाशन

मूल्य संकट की चुनौतियाँ : समाधान हेतु प्रभावी व्यूह रचनाएँ

प्रो. रचना वर्मा मोहन
सहाचार्या, शिक्षा विभाग

स्वयं तथा अपने वातावरण के साथ सन्तुलन बनाकर रहना मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है। शान्ति के वातावरण में ही मनुष्य के व्यक्तित्व का उचित प्रकार से विकास हो सकता है। एक असंतुलित प्राकृतिक तथा मनो-सामाजिक वातावरण मानवीय सम्बन्धों में तनाव लाता है तथा असहनशीलता व अन्तर्द्वन्द्व को बढ़ावा देता है।

वर्तमान समय में हम स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा वैश्विक हिंसा के माहौल में जी रहे हैं। समाज में मूल्यों का निरन्तर ह्रास हमें क्षुब्ध कर रहा है। शीघ्रता से होने वाले तकनीकी तथा सामाजिक परिवर्तनों के कारण दुनिया बहुत जटिल होती जा रही है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति के कारण प्रत्येक व्यक्ति भौतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में व्यस्त है। जिसके परिणामस्वरूप मानवीय, नैतिक, आध्यात्मिक तथा नीतिगत मूल्यों में गिरावट परिलक्षित हो रही है। वर्तमान सदी में प्रतिस्पर्धा के साथ भौतिकवादी दृष्टिकोण आधुनिकीकरण का प्रतीक बन गया है।

भारत जहाँ आध्यात्मिक मूल्यों की परम्परा रही है, वह भी इस परिवर्तन से अछूता नहीं है। देश के विभिन्न भागों में अनुशासनहीनता, दंगे-फसाद यहाँ तक कि हत्याओं की भी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ घटती रहती हैं। यहाँ तक कि उच्च पदों पर बैठे व्यक्ति भी आपस में झगड़ते रहते हैं

जिससे वातावरण दूषित होता है। इसी वातावरण में युवा पीढ़ी शिक्षा प्राप्त कर रही है। स्थितियों में तेजी से गिरावट आ रही है तथा छात्रों में मूल्यों तथा चरित्र के गुणों के विकास की अत्यधिक आवश्यकता है।

मूल्य संकट प्रत्येक नागरिक के लिए चिन्ता का विषय है। धार्मिक, राजनैतिक तथा समाज के दूसरे नेताओं की निष्ठा पर प्रश्नचिन्ह लग गये हैं। सब तरफ अव्यवस्था तथा असंतुलन है। नीति तथा नैतिकता सम्बन्धित प्रत्यय लुप्तप्राय हो रहे हैं, जिनका कारण जीवन के वास्तविक स्वरूप का नष्ट होना है। जबकि हमारे देश में जीवन उद्देश्यपूर्ण माना गया है। पशुत्व से मनुष्यत्व तथा मनुष्यत्व से देवत्व की ओर बढ़ना जीवन का लक्ष्य है। मनुष्य की सतत उन्नति के लिए चार पुरुषार्थों-धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की व्यवस्था की गई है। इनमें धर्म मूल तत्व है तथा मनुष्य जीवन की प्रेरक शक्ति है। अर्थ और काम इसी पर आधारित है। धर्म मनुष्य को गुण सम्पन्न बनाकर पवित्र जीवन जीने की प्रेरणा देता है। किन्तु वर्तमान समय में यह सब धारणाएँ बदल रही हैं तथा मूल्यों का ह्रास हो रहा है। इस प्रकार मूल्यों का संकट एक भयावह स्थिति होती जा रही है। मैथिलीशरण गुप्त जी की पंक्तियों में:-

"हम कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी।
आओ विचारे मिलकर ये समस्याएँ सभी।"

इन समस्याओं के समाधान हेतु कुछ भारतीय उपागमों पर चर्चा करना आवश्यक है–

- मूल्यों के संकट की इस स्थिति में अध्यात्मिक चेतना का विकास किया जाना चाहिए।
- वेदान्त एक ऐसा जीवन दर्शन प्रस्तुत करता है जो सबमें एक ही आत्मा विद्यमान होने की बात करता है। यह विचार हमें अनेक दोषों से बचाये रखता है। हिंसा, दुराचार या अन्याय के भाव मन में नहीं आते हैं। अतः वेदान्त दर्शन की व्यावहारिक

शिक्षा आवश्यक है।

- धर्म मूल्यों का मुख्य स्रोत है। धर्म मनुष्य को सद्आचरण करने के लिए प्रेरित करता है तथा पवित्र जीवन जीने की प्रेरणा देता है। धर्म के दस लक्षण-दृढ़ इच्छा शक्ति, क्षमा, दम, शुद्धता, चोरी न करना, इन्द्रिय संयम, स्वाध्याय, सच्चा ज्ञान, सत्य व क्रोध न करना दस मूल्य ही हैं, अतः उनका पालन करना आवश्यक है।
- योग शिक्षा को अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाना चाहिए तथा उसे व्यावहारिक बनाया जाये। योग में यम और नियम मुख्य रूप से मानव आचरण को परिशोधित करने के उपाय हैं तथा आत्म नियन्त्रण उत्पन्न करते हैं।
- मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव मन के तीन आयाम हैं—जानना, मानना तथा करना। सत्य जाना जाता है, सुन्दर माना जाता है तथा शिव किया जाता है। अतः छात्रों को सत्य जानने, सुन्दर को मानने तथा श्रेष्ठ कार्य करने की प्रेरणा देनी चाहिए। सत्य, शिव, सुन्दरम् तीनों मौलिक मूल्यों का विकास होता है।
- संयम, स्वाध्याय तथा आत्मनियन्त्रण के लिए प्रेरित करना चाहिए।
- इसी संदर्भ में सन् 1995 में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गठित आयोग जिसके अध्यक्ष Delors थे, उन्होंने इसके प्रतिवेदन जिसे "Learning : The Treasure with in" कहा है। ये शिक्षा (Learning to do) के चार स्तम्भ-ज्ञान के लिए शिक्षा (Learning to know), कर्म के लिए शिक्षा (Learning to do), सहिष्णुता के लिए शिक्षा (Learning to live together) तथा आन्तरिक सम्भावनाओं को श्रेष्ठ रूप देने की शिक्षा (Learning to be) को महत्वपूर्ण बताया है। यदि इन्हें भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो Learning के यह सभी स्तम्भ आत्म बोध

(Self understanding) से प्रारम्भ होते हैं जो ज्ञान, ध्यान तथा आत्म मूल्यांकन पर आधारित है। साथ ही आत्म-मुक्तता (Self-liberation) पर बल देते हैं। (सा विद्या या विमुक्तये)।

अध्यापक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जिन शिक्षकों को आज की शिक्षा प्रणाली तैयार कर रही है क्या वे स्वयं मूल्य युक्त है? क्या उनमें उन गुणों को विकसित किया जा रहा है जिससे वे वास्तव में अपने छात्रों में मूल्यों का विकास कर सकें? अध्यापक शिक्षा क्या उन्हें एक मूल्ययुक्त अध्यापक बना रही है? अध्यापक न केवल राष्ट्र निर्माता होता है बल्कि छात्रों को जीवन के उच्चतम लक्ष्यों को प्राप्त कराने में सहायक होता है। अत: अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्यों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होना चाहिए।

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) ने पाठ्यक्रम में जीवन कौशलों को पढ़ाने पर बल दिया है। विद्यालयों में मूल्य शिक्षा एक विषय के रूप में या अन्य शैक्षणिक, सहशैक्षणिक गतिविधियों के रूप में अब अनिवार्य रूप से सम्मिलित की गई है। अत: अध्यापक शिक्षा में भी मूल्योन्मुखता पर विशेष बल दिया जा रहा है। मूल्य शिक्षा को द्विवर्षीय बी. एड. पाठ्यक्रम में अनिवार्य पत्र के रूप में पढ़ाया जायेगा (NCFTE 2009) । इस संदर्भ में छात्रों में मूल्यों के विकास हेतु प्रभावी व्यूह रचनाओं को जानना नितान्त आवश्यक है।

मूल्य विकास हेतु प्रभावी व्यूह रचनाएँ

मूल्यों का विकास एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। (Values are caught rather than taught) बालकों में संस्कार देने का सबसे सशक्त माध्यम शिक्षा है। परिवार तथा विद्यालय ये संस्कार दे सकते हैं। अत: माता-पिता तथा अध्यापकों को बालकों के सम्मुख वही आचरण प्रस्तुत करना चाहिए जैसा वे बालकों में देखना चाहते हैं। आदेशात्मक विधि से बालकों में मूल्यों का विकास नहीं किया जा सकता है। उनके विचारों में संवेदनशीलता तथा परानुभूति विकसित करना आवश्यक है, जिसका माध्यम उदाहरण हो

सकते हैं। मस्तिष्क में केवल सूचनाएँ या ज्ञान भरने की अपेक्षा भावनाओं का परिशोधन आवश्यक है। मूल्यों को आत्मसात कराना आवश्यक है जिससे बालक एवं मूल्यों को अपने व्यवहार में प्रस्तुत कर सकें। प्रस्तुत पत्र में मूल्यों के आभ्यान्तरीकरण हेतु मुख्य पाँच व्यूह रचनाओं को लिया गया है।

(1) मूल्य स्पष्टीकरण (Value Clarification)

आदेशात्मक उपागम के विपरीत मूल्य स्पष्टीकरण बालकों में मूल्यों के विकास की महत्वपूर्ण विधि है। इस विधि द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि मूल्य संशय की स्थिति (Value Confusion) को कैसे दूर किया जा सकता है। इस विधि को मानने वाले मनोवैज्ञानिक का कथन है कि मूल्य निश्चित तथा वस्तुनिष्ठ नहीं होते हैं बल्कि व्यक्तिगत विचार अधिक महत्व रखते हैं। अतः कोई भी मूल्य सभी परिस्थितियों में न तो सही होते हैं, न ही गलत होते हैं। जनतांत्रिक व्यवस्थाओं में मूल्यों का चयन तथा मूल्यों के सम्बन्ध में निर्णय लेना अत्यावश्यक है। जीवन में ऐसे बहुत से अवसर होते हैं जब व्यक्ति को निर्णय लेने होते हैं, किन्तु अन्य बहुत से कारक निर्णय पर प्रभाव डालते हैं तथा व्यक्ति के लिए निर्णय लेना कठिन तथा संशयात्मक हो जाता है। छात्र भी माता-पिता, साथी समूह, परिवार, विद्यालय कई प्रकार के दबाव में रहते हैं तथा निर्णय लेने हेतु संशय में पड़ जाते हैं। विद्यालयों में प्रत्यक्ष रूप से ऐसी मूल्य शिक्षा नहीं दी जाती है। मूल्य स्पष्टीकरण विधि द्वारा मूल्य संशय को दूर किया जाता है। इसमें उपदेश न देकर (Indoctrination) मूल्य निर्धारण में छात्रों की तर्कशक्ति के प्रयोग पर बल दिया जाता है। छात्रों को प्रश्न के रूप में समस्या समाधान हेतु विभिन्न विकल्प दिये जाते हैं तथा छात्र उन पर तर्क-वितर्क करके बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय लेते हैं, इस प्रकार मूल्य स्पष्टीकरण (Value clarification) भावनात्मक पक्ष के प्रति विचारात्मक चिन्तन कौशलों का प्रयोग है।

इसमें दूसरों के साथ विचारों तथा भावनाओं को बांटना (Share) आवश्यक है। जो कक्षा में छोटे समूह बनाकर किया जा सकता है। इसमें

अध्यापक मूल्यों को स्पष्ट करते हैं तथा छात्र उसे समझ कर तर्क-वितर्क करके निर्णय लेते हैं। जिसकी सात उपप्रक्रियाएँ हैं:-

(1) स्वतंत्र रूप में चयन (Choosing freely) (2) विकल्पों में चयन (Choosing from alternatives) (3) परिणामों का विचार करके चयन (Choosing after considering the consequences) (4) अनुमोदन/आनन्दानुभूति होना (Prizing and cherishing), (5) तथ्य की तरह बताना (Affirming) (6) अपने मूल्य को यथार्थ के अनुसार उचित ठहराना (Acting upon reality) (7) मूल्यों में स्थायित्व आना अर्थात् मूल्यों का विकास होना (Repeating)

इस प्रकार छात्र मूल्यपरक निर्णय लेने में सक्षम बनते हैं।

(2) भूमिका निर्वाह (Role Playing)

भूमिका निर्वाह द्वारा वास्तव में भावनाओं तथा व्यवहारों का प्रकटीकरण किया जाता है। इससे पता चलता है कि किसी समस्या के बारे में बात करने से उसे महसूस करने का अनुभव होता है। इसका मुख्य उद्देश्य छात्र को दूसरे के चरित्र में प्रवेश कराना होता है। उनको अवसर दिया जाता है कि वे महसूस करें कि तनावपूर्ण तथा विवादास्पद स्थितियों में दूसरे कैसा महसूस करते हैं।

इसके द्वारा छात्र नई सूचनाएँ प्राप्त करते हैं। विकल्पों को विश्लेषित करना, भावनाओं को पहचानना एवं परीक्षण करना तथा समूह में कार्य करने के सामाजिक मूल्यों का विकास होता है। साथ ही मूल्य स्पष्ट होते हैं तथा विभिन्न परिप्रेक्ष्यों के सम्बन्ध में प्रशंसा तथा समाज का विकास होता है। इस विधि में परानुभूति द्वारा ही मूल्यों का विकास किया जाता है।

(3) वार्ता विधि (Discussion)

इसके अन्तर्गत किसी दिये गये प्रकरण पर छात्रों के विचारों के आदान-प्रदान से है। किसी नैतिक मूल्य से जुड़ी कोई दुविधापूर्ण परिस्थिति लेकर छात्रों से वार्ता विधि द्वारा निष्कर्ष पर पहुँचने को कहा जाता है। दूसरे

छात्र समस्या को पहचानना, अनुभवों को बांटना, विचारों का परीक्षण करना, परिकल्पना बनाना, समस्या को सुलझाना आदि करते हैं। अध्यापक को वार्ता (Discussion) को निर्देशित (Guide) करना होता है। इस विधि द्वारा छात्रों में समूह में कार्य करने की योग्यता, सहयोग, सद्‌भावना के गुण विकसित होते हैं। अध्यापक निरन्तर मुख्य बिन्दु पर केन्द्रित (Focus) करते रहते हैं जिससे छात्र मूल विषय से न भटके। इससे छात्रों को समस्या को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में देखने का अवसर मिलता है तथा मूल्यों का आत्मसातीकरण होता है।

(4) सहशैक्षिक क्रियाओं द्वारा (Co-scholastic Activities)

CBSE द्वारा जीवन कौशलों को सहशैक्षिक क्रियाओं के अन्तर्गत पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। CCE की प्रक्रिया में सहशैक्षिक गतिविधियों का भी मूल्यांकन किया जाता है। अत: सभी विद्यालयों में अनिवार्य रूप से इन गतिविधियों का आयोजन होता है। इनमें छात्र बहुत सारे सामाजिक तथा व्यक्तिगत गुणों के विकास का अवसर पाते हैं, जैसे–सहयोग, धैर्य, सहनशीलता, उत्तरदायित्व निभाना, आत्मनियन्त्रण आदि।

(5) विद्यालयी विषयों द्वारा (Through School Subjects)

विभिन्न विद्यालयीय विषयों द्वारा मूल्य शिक्षा देकर मूल्यों का विकास छात्रों में किया जा सकता है। इस दिशा में अध्यापकों को विशेष ध्यान देने की जरूरत है। प्रत्येक विषय में कुछ न कुछ मूल्य अवश्य होते हैं। अध्यापक को उन मूल्यों को दैनिक जीवन के अनुभवों से जोड़ने की क्षमता अवश्य होनी चाहिए। जैसे–भाषा, साहित्य पढ़ाते समय अध्यापक को कविता, कहानी, नाटकों में स्थित मूल्यों को खोजना चाहिए तथा विभिन्न पात्रों के माध्यम से प्रदर्शित मूल्यों की कक्षा में परिचर्चा करनी चाहिए। इतिहास पढ़ाते समय महान शासकों के जीवन वृत्त, मूल्यों आदि पर चर्चा करनी चाहिए। समाज–सुधारकों के जीवन से प्रेरित होकर मूल्यों का विकास करना चाहिए।

इसी प्रकार विज्ञान के विषयों में तार्किक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निरीक्षण, प्रयोग करना जैसे मूल्यों पर बल देना चाहिए। केवल विशिष्ट तथ्यों, सिद्धान्तों को स्पष्ट करना पर्याप्त नहीं है। गणित तथा मानसिक अनुशासन, तर्क तथा सामान्यीकरण की क्षमता विकसित होती है। इस प्रकार सभी विषयों में निहित मूल्यों को महत्व देकर छात्रों में मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त-

- मूल्य शिक्षा को शिक्षा का उद्देश्य मानना चाहिए, न कि एक क्षेत्र क्योंकि यह शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक सभी पक्षों से जुड़ी है।
- पाठ्यक्रम अध्यापक-छात्र सम्बन्ध को मजबूत करें जिससे सम्प्रेक्षण क्षमता का विकास हो सके।
- विभिन्न गतिविधियाँ विद्यालयों में आयोजित हों जो सभी धर्मों, संस्कृतियों तथा आर्थिक स्तर के छात्रों को समभाव का सन्देश दे सके।
- छात्रों के नैतिकता आधारित अनुभवों को कक्षा में बताना तथा विश्लेषित करना चाहिए तथा नैतिक मूल्यों का विकास करना चाहिए।

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है मूल्य शिक्षा को केवल पुस्तकों तक सीमित न रखकर उनका आभ्यान्तरीकरण विभिन्न विधियों द्वारा कराया जाना चाहिए, जिससे छात्र अपने आचरण को बदलते वैश्विक सन्दर्भ में श्रेष्ठ मूल्य मानकों के अनुरूप बन सके। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मूल्य शिक्षा के संदर्भ में गठित सभी आयोग मूल्य शिक्षा को उस स्तर पर ले जाना चाहते हैं जिससे सच्चे अर्थ में विद्यार्थी को एक मूल्ययुक्त व्यक्तित्व बनाया जा सके। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए हमें अपने संकल्पों तथा प्रयासों को निरन्तरता प्रदान करनी होगी तथा स्वयं को देश व समाज की आकांक्षाओं के अनुरूप ढालना होगा। इस प्रकार हमें

दृढ़ संकल्प लेकर कार्य करना होगा, तभी हम मूल्य संकट की चुनौतियों का निराकरण कर पायेंगे।

संदर्भ

1. गुप्त नत्थू लाल (2005) मूल्य परक शिक्षा और समाज, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. जैश्री, (2008), मूल्य पर्यावरण और मानवाधिकार की शिक्षा, शिप्रा प्रकाशन, नई दिल्ली
3. Biswas N.B. (1998) Stress on Changing Values of Life of the Teaching Professionals. Teacher Education, Vol. XXXII Nos. 1 & 2.
4. Curriculum Framework for Quality Teacher Education (1998) NCTE, New Delhi.
5. National Curriculum Framework 2005, NCERT, New Delhi.
6. National Curriculum Framework for Teacher Education, 2009, NCTE, New Delhi.
7. NCTE, Discussion Document, 2004
8. Some Specific Issues and Concerns of Teacher Education. NCTE, 2003.

ICT युग में मूल्यपोषण एवं संरक्षण

प्रो. रजनी जोशी चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर

आज का मानव सूचना संचार प्रौद्योगिकी (ICT) से इतना अधिक प्रभावित है कि वह क्षण भर हेतु भी अपने ऐसे यन्त्रों एवं उपकरणों से दूर नहीं होना चाहता जो उसे विश्व के नेटवर्क से जोड़कर रखते हैं। आज का मानव हर समय पूरे विश्व से जुड़े रहना चाहता है और प्रत्येक पल की घटना से अवगत रहने का प्रयास करता है। पिछले कुछ दशकों में सूचना संचार प्रौद्योगिकी ने मानव समाज को सम्प्रेषण के क्षेत्र में अनेकों नवीन आयाम प्रदान किये हैं। सूचना संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के इस परिवर्तन ने निश्चित ही हमारे समाज को विश्व की कोई भी सूचना को प्राप्त करने में सक्षम बनाया है। व्यक्ति को घर बैठे अपने ज्ञान एवं शिक्षक योग्यता को अपवर्ती एवं परिमार्जित करने योग्य बनाया है। घर बैठे विभिन्न कार्य जैसे ज्ञान एवं सूचना प्राप्त करना, खरीददारी करना, टिकट बुक करना, बैंकिंग इत्यादि को सम्भव किया है। आज औषधि, पर्यटन, व्यापार, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जो ICT पर निर्भर ना हो। विकास के इस कड़ी के साथ मानव समय के महत्व, पारदर्शिता, कर्त्तव्य परायणता, वैज्ञानिक उपलब्धता तथा वैश्विक-परिवार के सम्प्रत्यय को विकसित कर रहा है। सूचना संचार प्रौद्योगिकी (ICT) की यह लहर निश्चित ही मानव को गतिशील एवं तत्पर बनाने में सक्षम हुई है परन्तु हमारी संस्कृति में मानव का विकास तभी पूर्णता को प्राप्त कर सकता है जब उसका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक तथा गत्यात्मक विकास

संस्कार रूपी जल से सींचित किया गया हो। बच्चे में संस्कारों के रूप में अच्छे मूल्यों का बीजारोपण परिवार या घर से किया जाता है परन्तु इस बीच का अंकुरण एवं विकास विद्यालय के द्वारा किया जाता है। बच्चे का विद्यालय तथा समाज, मूल्यों का पोषण एवं संरक्षण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विद्यालय द्वारा प्राप्त वातावरण ही एक बच्चे को विवेकपूर्ण चिन्तन के अवसर प्रदान कर मूल्यों को विकसित करता है डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी के अन्तर्निहित मूल्यों को विकसित कर मानव मूल्य प्रेम, करूणा, दया, तदनुभूति को समझने की क्षमता का विकास कर एक ऐसे नागरिक का विकास करना होता है जो एक साथ एवं सुसंस्कृत समाज का निर्माण कर सके।

आज सूचना संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के प्रयोग से जहाँ एक ओर व्यक्ति वैश्विक स्तर पर कुछ ही क्षणों में सूचनाओं का आदान-प्रदान करने में सक्षम है वहीं दूसरी ओर आज का व्यक्ति बहुत से ऐसे सांवेगिक विकासों से वंचित होता जा रहा है जो उसे सामाजिक जीवन यापन करने में असमर्थ कर रहे हैं। आज का मानव एकाकीपन एवं आत्मकेन्द्रितता को विकसित कर रहा है। आंगुलिक गतिविधियों (Digital Activities) के कारण सामाजिक अन्तर्क्रिया की आवश्यकता को समाप्त करता जा रहा है। शारीरिक श्रम एवं सामाजिक अन्तर्क्रिया की आवश्यकता को अनुभव ही नहीं कर रहा है। ऑन लाइन (On-line) संस्कृति मानव को मानव से अपने मनोभावों को बांटने का अवसर समाप्त कर रही है। डिजिटल समाधान (Digital Solutions) की संस्कृति व्यक्ति में धैर्य, आत्मचिन्तन, आत्मविश्लेषण, सहानुभूति, तदनुभूति जैसे मानवीय मूल्यों एवं संवेदनाओं का क्रमिक ह्रास कर रही है।

आज के इस ICT युग में परिवार एवं विद्यालय दोनों की ही भूमिका महत्वपूर्ण हो रही है। विद्यालय एवं शिक्षकों का दायित्व विद्यार्थी में ज्ञानार्जन एवं मानसिक विकास के साथ मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों के

विकास एवं संरक्षण को निश्चित करना भी होता जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग "Treasure Within" के चार स्तम्भों में से एक स्तम्भ 'Learning to be Live together' तथा Learning to live with others की संस्तुति आज पूर्णतया सार्थक, प्रासंगिक तथा सत्य सिद्ध हो रही है। अतः आज के शिक्षक का दायित्व जहां एक ओर विद्यार्थी को ICT में दक्षता प्रदान करते हुए ज्ञानार्जन करवाना है वहीं दूसरी ओर उसका सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण विकास करना भी है। अतः आज के अध्यापक का प्रशिक्षण ऐसा होना चाहिए जो विद्यार्थी को उसके मानसिक विकास के साथ उसमें सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों को पोषित एवं संरक्षित कर सके।

आज सूचना संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग समय की मांग के अनुसार अत्यन्त आवश्यक हो गया है। इसके बिना मानव का जीवन यापन करना असम्भव है। अतः इसका प्रयोग एक माध्यम के रूप में सीमित कर विद्यार्थियों की सामाजिक एवं मानवीय अस्मिता को भी समाप्त न होने दिया जाना चाहिए। विद्यार्थी को एक 'यान्त्रिक मानव' न बनाकर एक चिन्तनशील, विवेकशील एवं संवेदनशील नागरिक बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य मात्र सूचना संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के रूप में शैक्षिक उपलब्धितता न होकर बच्चे का सर्वांगीण विकास होना चाहिए जिसमें मानवीय मूल्यों के विकास को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए। अतः आज की शिक्षा हेतु निम्न बिन्दूओं की ओर ध्यान देना आवश्यक होता जा रहा है जिससे विद्यार्थी के सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को संरक्षित रखा जा सके–

1. पाठ्यक्रम निर्धारण करते समय शैक्षणिक गतिविधियों के साथ सामुदायिक कार्यों को भी महत्व दिया जाए जिससे विद्यार्थी को विभिन्न समुदायों के साथ अन्तर्क्रिया का अवसर मिल सके और विद्यार्थी समुदाय की समस्याओं एवं आवश्यकताओं को समझ सके।

2. पाठ्यक्रम के अन्तर्गत ऐसी गतिविधियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। जो विद्यार्थियों में सामूहिक अन्तक्रिया की परिस्थितियों को उत्पन्न करे और सभी विद्यार्थियों को एक दूसरे के समीप आने का अवसर प्रदान करे और विद्यार्थी सहानुभूति तथा तदनुभूति जैसी संवेदनाओं को विकसित कर सके।

3. शिक्षण प्रक्रिया को ICT का प्रयोग कर अधिक उन्नत किया जाए परन्तु ICT को ही एकमात्र विकल्प न मानकर इसे एक सहायक सामग्री की तरह प्रयोग करें।

4. पाठ्यक्रम में इस प्रकार के शिक्षण युक्तियों को प्रयुक्त किया जाए जिसमें विद्यार्थी को पुस्तकालय, पुस्तक एवं विद्यालय के संसाधनों का प्रयोग करना पड़े जिससे विद्यार्थी को श्रम को प्राथमिकता देनी पड़े।

5. पाठ्यक्रम में शारीरिक गतिविधियों, खेलकूद इत्यादि को अवश्य महत्व दिया जाए जिससे विद्यार्थी अपने सहपाठियों के साथ मिलकर कार्य करे और आपसी सद्भावना का विकास कर सके।

6. विद्यालय में ऐसे कार्यक्रम भी अवश्य करवायें जाएं जिसमें भारतीय मूल्यों जैसे बड़ों का आदर सम्मान, ईमानदारी, अतिथि सम्मान, स्त्री सम्मान, सहयोग जैसे मूल्यों का विकास किया जा सके।

7. पाठ्यक्रम में ऐसे गतिविधियों को रखा जाए जिसमें विद्यार्थी भारत के महान व्यक्तित्व एवं उनके कृतित्व को जानकर भारत की संस्कृति को समझा जा सके।

8. विद्यालय गतिविधियों में अभिभावकों एवं अध्यापकों को अन्तर्क्रिया का अवसर मिले और दोनों मिलकर बच्चे में अच्छे मूल्यों को

स्कूल तथा घर दोनों जगह विकसित कर सकें।

इस प्रकार निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों में मूल्य संवर्धन एवं संरक्षण हेतु आज भारत के सभी शिक्षकों को एक ऐसी शिक्षण नीति को अपनाना होगा जो विद्यार्थी को आज के ICT युग में दक्षता प्रदान करते हुए उसके मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों का परिपोषण एवं संरक्षण कर सके और भारतीय संस्कृति की मौलिक अस्मिता को समृद्ध करते हुए भारत को विश्व गुरू बना सके। साथ ही हर व्यक्ति का इस प्रकार विकास हो कि प्रत्येक मानव दूसरे मानव के अन्दर ब्रह्म के अंश को पहचान सके और विश्व-शान्ति को स्थापित कर सके।

भारतीय संस्कृति में समाहित मानवीय मूल्य

डॉ. श्रीमती कुसुम यदुलाल
वरिष्ठ प्रवक्ता

विश्व की किसी भी जाति के उत्थान और पतन में उसकी सभ्यता संस्कृति और शिक्षा का विशेष महत्व होता है। भारतीय संस्कृति मूलतः एक मूल्य आश्रित धारणा है, जो अनिवार्य रूप से मानव जीवन को मूल्यों के विकास की ओर निर्देशित करती है। ऐसे मूल्यों की स्वीकृति समाज द्वारा दी जाती है। इसके पीछे कोई एकाधिकार नहीं होकर रूपान्तरण मात्र है। इसका उद्देश्य है मनुष्य का सर्वांगीण विकास कर जीवनोन्मुख बनाना। यदि हम भारतीय शिक्षा व्यवस्था में मानव मूल्य के बारे में अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होता है कि मानव मूल्यों की शिक्षा व्यवस्था आज नहीं बल्कि प्राचीन समय से है।

वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य, उसके सर्वांगीण विकास, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पर आधारित शिक्षा थी तथा उस काल में तथ्यों एवं घटनाओं, आंकड़ों को कण्ठस्थ कर लेना विद्वता का मान दण्ड नहीं था बल्कि मनुष्य के उच्च विचार, नैतिकता, सचरित्रता एवं पवित्र आचरण का महत्व सर्वोपरि था। ऐसा ही व्यक्ति समाज में सम्मान का पात्र था जो चरित्रवान हो उदाहरणार्थ आचार्य वशिष्ठ, संदीपनी आदि ऋषि मुनि। विश्वविख्यात दार्शनिक सुकरात मनुष्य में सदगुण को ही ज्ञान मानते है श्रीमद्भगवत गीता के अनुसार ज्ञान का अर्थ पण्डिताई या पुस्तक विद्या नहीं सद्गुण है अपितु ऐसी शिक्षा जो मनुष्य में सद्गुण का विकास कर

सके। बालक के आचार विचार में मूल्यों का समावेश किया जाता था इसी संदर्भ में तैतरीय उपनिषद में सलाह दी गई है कि हित तथा कल्याण की उपेक्षा मत करना इसके माध्यम से विद्यार्थियों में कल्याण एवं सहयोग की भावना का विकास किया गया है। तैतरीय उपनिषद में शिष्यों को आचार व्यवहार की शिक्षा के साथ-साथ उनसे निम्नलिखित अपेक्षाएँ भी की गई है। ''अध्ययन तथा संभाषण में सदाचारी बनाना, अध्ययन तथा वाणी में सत्याचरण करना, अध्ययन के साथ तप, दम (इन्द्रिय निग्रह) शम (मन का नियंत्रण) अतिथि नम्रता, आश्रितों की रक्षा, तथा सन्तति पालन का ध्यान रखना, सत्य बोलना, कर्तव्य पालन करना व्यक्ति कल्याण तथा समृद्धि की अपेक्षा न करना, अध्ययन में प्रमाद न करना इत्यादि दूसरों के प्रति सद्भावना रखना, गुरु में उपस्थित अनुकरणीय बातों की उपासना करना अन्य की नहीं (यानी यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि) जब जब आचार के संबंध में शंका उत्पन्न हो तो महान शिक्षकों के आचरण का अनुसरण करना।''

इन छात्रों के सर्वागीण विकास के लिए मानव मूल्यों की स्थापना की गई थी तथा उपनिषदों में गुरु के लिए कहा गया है कि ''गुरु साक्षात् पर ब्रह्मा तस्मै श्री गुरवे नमः।। गुरु शिष्य परम्परा के अंतर्गत मूल्यों के विकास को अत्यधिक महत्व दिया गया है। भारतीय संस्कृति में सदाचार एवं चरित्रता के अनेक उदाहरण है, जिनके कारण लोग राम राज्य की कल्पना करते है। अपनी सन्तानों के नाम आदर्श व्यक्तित्व के नाम पर रखते है। बड़ों का आदर सत्कार ही सदाचार एवं सच्चरित्रता शिक्षा का आधार होते थे। भारत में विभिन्न धर्मो का उद्देश्य मानव कल्याण है। भारतीय संस्कृति मानव मूल्यों से भरी हुई है। किसी धर्म या शिक्षा व्यवस्था को देखे तो सबका आधार मानव मूल्य की शिक्षा देना है। मानव मूल्यों की दृष्टि से जैन दर्शन में प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्यों की विवेचन करे तो हमें मानव मूल्यों का स्पष्ट विवरण मिल जायेगा। जैन दर्शन में जिन पांच महाव्रतों को उल्लेख है, वे नैतिकता पर आधारित मूल्य की शिक्षा प्रदान करते हैं। जैन दर्शन के साथ ही बौद्ध दर्शन में भी एक अच्छे

जीवन की कल्पना की गई है। सुजीवन का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास किया गया है। भगवान बुद्ध ने भी नैतिक जीवन को प्रमुख लक्ष्य माना और जीवन के हर पथ में चरित्र निर्माण पर जोर दिया। बौद्ध शिक्षा प्रणाली का आधार व्यक्तित्व विकास है और व्यक्तित्व का संबंध मानव मूल्यों से गहन रूप से जुड़ा है। वास्तव में मानव मूल्य ही तो व्यक्तित्व की परिभाषा में निहित है और ये मूल्य प्राचीन समय से शिक्षा व्यवस्था तथा साहित्य में निहित थे। इस प्रकार मोहनजोदड़ों और हड़प्पा की प्राचीन सभ्यता से लेकर आज तक मनुष्य में सद्‌गुण तथा सच्चरित्र की शिक्षा को ही सच्ची शिक्षा माना गया है। ज्ञान चाहे धार्मिक हो अथवा सांसारिक या व्यावसायिक, यदि वह व्यक्ति व समाज के लिए हितकारी है तो उसे शिक्षा का अंग माना जाएगा। इस प्रकार वे सभी ज्ञान शिक्षा हैं जो व्यक्ति को सच्चरित्रता की ओर प्रेरित करते है। ज्ञान के माध्यम से मूल्यों के विकास के संदर्भ में अध्ययन करे तो हमारे देश में ऋषि मुनियों के साथ-साथ विभिन्न विचारकों ने भी इन मूल्यों के विकास में अमूल्य अतुलनीय योगदान दिया है। ऐसी विभूतियों में मुख्य रूप से विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, ज्योतिबा फूले, लाला लाजपत राय, स्वामी सदानन्द, महात्मा गांधी, टैगोर, मौलाना आजाद, जाकिर हुसैन, राधा कृष्णनन, इकबाल तथा कृष्णमूर्ति। इन्होंने मूल्यों को नई सृजनात्मक अवस्थिति प्रदान की। इकबाल के अनुसार ''शिक्षा वह है जो मनुष्य को मन और चरित्र निर्माण सम्बंधी मूल गुण प्रदान करती है''। गांधी जी के अनुसार हम शिक्षा के माध्यम से बालक के व्यक्तित्व के विकास हेतु उच्च मूल्य प्रदान करते हैं। मौलाना आजाद और जाकिर हुसैन ने भी सर्वोच्च मानव मूल्य जैसे बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक धार्मिक भावनात्मक व सौन्दर्य बोधक के प्रति काफी संवेदनशीलता दिखाई है। इन मूल्यों को वे राष्ट्रीय अर्थात् भारतीय विकास के लिए आवश्यक मानते थे।

इस संदर्भ में टैगोर ने भी जीवन मूल्यों के विकास में योगदान दिया है तथा उनके अनुसार किसी भी वस्तु का अधिक्य जिनका संचय अनावश्यक और बिना सोचे समझे किया गया हो तो वह आत्मा को

प्रतिबन्धित कर देता है। वे इसके माध्यम से कहना चाहते थे कि बच्चों पर शिक्षा का अधिक बोझ मत डालो व बच्चों के बोझ के विरोधी थे इससे बच्चों का उसके पूर्ण परिवेश से सम्बन्ध विच्छेद होता है तथा यह उसे मार डालने के समान है। शिक्षा और मानव मूल्यों के संबंध के बारे में इन्होंने यहां तक भी कहा कि 'जब तक हम लोग शिक्षारूपी पिंजरे की सजावट में लगे रहेंगे। भीतर का छात्ररूपी पक्षी भूखा ही रहेगा। टैगोर के मतानुसार सत्य भौतिक जगत पर विजय पाने के साथ-साथ उसका उपभोग आध्यात्मिक उन्नति के लिए होना चाहिए। हमारी संस्कृति में इस प्रकार के विचारकों ने मानव मूल्यों के संर्वधन में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। हमारी भारतीय संस्कृति में नैतिकता के मूल्य कूट-कूट कर भरे हैं। भारतीय संस्कृति में विद्यमान धार्मिक ग्रन्थों में निहित मूल्यों का समावेश तो है साथ ही हम भारतीय संविधान को उठाकर भी देखें तो हम पाते हैं कि हमारे संविधान में भी इन मूल्यों का ध्यान रखा गया है। ये मूल्य अपने आप में एक अमूर्त संकल्पना है जिसमें किसी समाज की संस्कृति की श्रेष्ठता इन मूल्यों के स्वास्थ्य पर निर्भर करती है तथा दूसरी ओर ये किसी भी समाज के सदस्यों के व्यवहार की कसौटी माने जाते हैं। (मूल्य मीमांसा (Axiology) ऐसे सिद्धांत जिनका संबंध मूल्यों की प्रकृति कसौटी आदि की खोज से होता है) सामान्य तौर पर किसी भी समाज की शिक्षाप्रणाली का लक्ष्य इन मूल्यों को पाना होता है और इन्हें पाने के लिए वहां की शिक्षा व्यवस्था को उद्देश्य एवं लक्ष्यों के रूप में निर्धारित जीवन शैली में ढाला जा सके और वे समाज द्वारा स्वीकारे गये व्यवहार के मानदण्ड के अनुसार व्यवहार कर सके। सामाजिक संदर्भ में जीने या जीवन शैली के मानदण्ड ही मूल्य कहलाते हैं। साधारण शब्दों में इन्हें जीवन जीने की कसौटी कहा जा सकता है। भारतीय संविधान की उद्देशिका के अंतर्गत भी चार मानक तय किये है जिन्हें हम राष्ट्रीय मूल्यों कहते हैं।

- सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक–न्याय
- विचार अभिव्यक्ति दिखावा धर्म की उपासना–स्वतंत्रता

- प्रतिष्ठा और अवसर–समता
- व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करने वाली–बंधुता

संविधान का समूचे ढांचे का लक्ष्य उपरोक्त चार मानको को पाना है जिन्हें राष्ट्रीय मूल्य कहा गया है भारतीय राष्ट्रीय नीति में भी स्पष्टतया कहा गया है कि हमारी समान, सांस्कृतिक धरोहर लोकतंत्र धर्म निरपेक्षता, स्त्री-पुरुष के बीच समता पर्यावरण संरक्षण, वैज्ञानिक तरीके से अमल में लाने की परस्त है। यही भारतीय संविधान की आधारशिला है। आज वैश्वीकरण एवं वैज्ञानिक युंग में मूल्य का प्रश्न हमारे राष्ट्र निर्माण की नयी दिशा के संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रश्न चिन्ह बन गया है। यही नहीं विनाशकारी शस्त्रों और यंत्रो की तेज प्रतिस्पर्धा के साथ ही अनियंत्रित उपभोग या लालसा के उभार के युग में मूल्यों का प्रश्न मानव जाति और उसकी सभ्यता की रक्षा का प्रश्न बन गया है। काल के प्रभाव एवं विदेशीयों संस्कृति के अन्धानुकरण के कारण, भौतिक सुख सभ्यता की इस प्रौद्योगिकी में तेज प्राप्ति मशीनीकरण वैज्ञानिकरण उन्नति के कारण नैतिक एवं सांस्कृतिक मानको में कमी महसूस हो रही है। आज व्यक्ति यद्यपि काम, क्रोध, मोह, दम्भ, घमण्ड राग, द्वेष, अभिमान, क्रूरता, निर्दयता, अज्ञान, संशय, भय, बैर, कुटिलता नीचता नकारकता आदि दुर्गुण तथा छल कपट, छिद्र, झूठ, चोरी, डकैती, व्याभिचार, अनाचार, अत्याचार, मासभक्षण, मदिरापान, मादक वस्तुओं का सेवन, जुआ खेलना, हिंसा प्रमाद, उदण्डता आदि दुराचार में ग्रसित होगा तो भारतीय संस्कृति में इसे आसुरी सम्पदा कहा जाएगा। वे हमेशा त्यागनीय है तथा भारतीय संस्कृति में समाहित-क्षमा दया, शांति, संतोष, शम, दम, धैर्य, भक्ति ज्ञान, वैराग्य तेज विनयता, सरलता, धीरता, वीरता, गम्भीरता, निस्वार्थता, हृदय की पवित्रता, अस्तिकता, सहस्ता आदि सद्गुण तथा दान तीर्थकृत उपवास सेवा, पूज्या, आदर सत्कार, सत्य भाषण ब्रह्मचर्य पालन स्वाध्याय परोपकार माता-पिता गुरूवचनों तथा आचार्यों अतिथि की सेवा आदि जो भारतीय संस्कृति में दैवीय सम्पदा के लक्षण माने जाते हैं। ये भारतीय महापुरुषों

के व्यक्तित्व में स्वभाव सिद्ध चले आते है इसलिए हम महापुरुषों को अपना आदर्श मानते हैं और बताये मार्ग पर चलकर चरित्र निर्माण व व्यक्तित्व का विकास करते है।

वर्तमान में जीवन-आधारित स्थायी मूल्यों में विकृति आई है। धनोपार्जन बल एवं शक्ति प्रदर्शन पर आज अधिक जोर दिया जाने लगा है। इसके कारण मानव जीवन में अशान्ति, संघर्ष एवं थकान और अविश्वास की अधिकता, मानव में शांति सौहार्द भाईचारे का अभाव आधुनिक मूल्यहीन शिक्षा में विद्यमान है। इसके लिए हमें प्राचीन भारतीय संस्कृति में समाहित मूल्यों को पहचानना तथा शिक्षा के प्राचीन रूप व्यवस्था की स्थापना करना साथ में मिलकर रहना काम करना तथा साथ चलना है। वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को अपना कर परिवार देश के प्रति कर्तव्य को निभाना है। इन सब आधारों पर खड़ी शिक्षा ही सही एवं सच्ची शिक्षा है हमें प्राचीन शिक्षा व्यवस्था को नये रूप में अपनाना है ताकि प्रत्येक बच्चा अपनी संस्कृति व साहित्य का अध्ययन करके अपने मूल्यों की रसधारा आज भी विद्यमान है। वर्तमान में वैश्विकरण की प्रतियोगितात्मक प्रवृत्ति एवं विषम परिस्थितियों में रसधारा थोड़ी धूमिल हो गई या मैली हो गई है जिसे हमें साफ करना है। विश्व के विभिन्न देशों ने आर्थिक क्षेत्र में भले ही वर्चस्व स्थापित कर लिया हो लेकिन सांस्कृतिक नैतिकता एवं मूल्य शिक्षा के क्षेत्र में प्रेरणा का मूल स्रोत बनाने को स्नेह भारतीय संस्कृति को ही प्राप्त है। आज इसलिए विश्व हमारी सांस्कृतिक साहित्य समाज धरोहर तथा मूल्यों को जानने तथा अपनाने के लिए उत्सुक है ताकि विश्व में शांति की स्थापना की जा सके। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के साहित्य में मूल्यों की अमूल्य धरोहर का भण्डार है हमें अपनी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था, पद्धति में छुपे गुणों को पहचान नवीन युग में नए तरीके से अपनाकर मूल्यों की स्थापना करना है। जिससे भारत का प्रत्येक व्यक्ति का सर्वांगीण विकास अर्थात् सर्व गुण सम्पन्न एवं सर्व मंगल मूल्यों का विकास कर सके।

संदर्भ

1. चांद किरण, शिक्षा का दार्शनिक पक्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली वि.वि. दिल्ली

2. डॉ. वी एस डागर, शिक्षा तथा मानव मूल्य, हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़

3. ओड एल के, शिक्षा के समाज शास्त्रीय एवं दार्शनिक पीढीका–दी मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड

4. कबीर हुँमायू, भारतीय शिक्षादर्शन (अनुवाद श्री कृष्णचन्द) राजकमल प्रकाशन दिल्ली

5. किरण उषा, वैदिक साहित्य में संवाद नाग पब्लिकेशन दिल्ली

6. कुमार कृष्ण, राज समाज शिक्षा राजकमल प्रकाशन

7. सत्यपाल गौतम, अधिगम का मनोविज्ञान (अनुवाद, ओमप्रकाश शर्मा) आत्मा राम एण्ड संस दिल्ली

8. पाण्डेय जयनारायण, भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी इलाहाबाद

9. कृष्णदया, ज्ञान मीमांसा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर

10. कृष्णमूर्ति जे, शिक्षा एवं जीवन का महत्व (अनुवदिति, डॉ. जी. एस. वर्मा) कृष्णामूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया वाराणसी

11. गुप्त ईश्वर दयाल, आधुनिक भारतीय शिक्षाः समस्या, चिंतन, हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़

12. गुप्त नत्थूलाल, मूल्य परक शिक्षा और समाज, नमम प्रकाशन नई दिल्ली।

अध्यापक-शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य-मीमांसा

डॉ. विमलेश शर्मा
सहायक आचार्य

A Guru, Teacher is the one who stimulates the thought process of his/her disciple and directs him towards the path of righteousness,

अध्यापक प्रदत्त शिक्षा व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग है। शिक्षा, शिक्षण एवम प्रशिक्षण के सम्पूर्ण स्वरूप के अन्तर्गत-बालक/बालिका स्व अर्जित शिक्षा का चतुर्थ अंश अध्यापकों से, दूसरा चतुर्थ अंश पाठ्यपुस्तकों से, अन्य चतुर्थ अंश सहपाठियों से तथा शेष चतुर्थ अंश पाठ्यपुस्तकों से, अन्य चतुर्थ अंश सहपाठियों से तथा शेष चतुर्थ अंश अपने वातावरण से प्राप्त करता है। वेद के इस भाग का स्वरूप मुण्डकोपनिषद में इस प्रकार से कहा गया है-

आभायीत् पादमायाते: पादम् छिन्द्य स्वमेधया।

पादम् तु स ब्रह्मचारिभ्य: पादम् कालक्रमेण तु।।

अत: स्पष्ट है कि बालक/बालिकाओं की शिक्षा पर उनके परिवार, सामाजिक मूल्य, परम्पराओं और संस्कारों का प्रभाव पड़ता है। शिक्षा मनुष्य का निर्माण कर उसे व्यवहार कुशल बनाती है, नये-नये अनुभवों को प्रदान करती है जिससे बालक की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास हो सके इसी विकास के लिए विद्यालय जो कि समाज का लघु रूप है इस प्रकार का वातावरण प्रदान करता है जहां राष्ट्र के भविष्य का निर्माण

होता है इस निर्माण कार्य को सुस्थिर दिशा प्रदान करने का दायित्व अध्यापकों को जाता है। अध्यापकगण इस कार्य का निर्वाह अति सरल सहज रूप में करते हैं। इसीलिए शिक्षकों को ब्रह्मा, विष्णु, महेश के सदृश पूज्यनीय माना जाता है।

गुरूब्रह्मा, गुरूर्विष्णुः गुरूदेवो महेश्वरः।

गुरूः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरूवे नमः।।

अध्यापक शिक्षा के शक्तिशाली स्तम्भ है जो कि शिक्षा, शिक्षण, प्रशिक्षण के क्षेत्र में उत्तम भविष्य के निर्माता ही नहीं, अपितु ज्योति से ज्योति को प्रज्जवलित करने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। समस्त शैक्षाणिक व्यवस्था में–''अध्यापक-शिक्षा'' का एकीकृत कार्यक्रम इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है सुनिश्चित उत्तरदायी शिक्षक गतिशील समाज का निर्माण एवमं सरंचना कर शाश्वत मानवीय मूल्यों का पोषण, संरक्षण और संवर्धन करते हैं।

यद्यपि हम सभी जानते है कि समस्त विश्व में भारत मूल्य-व्यवस्था के लिए प्रशंसनीय है। भारत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर दृष्टिपात करें तो असंख्य दृष्टान्त एवम घटनाएं परिलक्षित होती है कि मूल्यों की शिक्षा नहीं दी जा सकती है अपितु विद्यार्थी द्वारा स्वयं ही मूल्यों को पोषित किया जाता है। जिसको निष्ठावान शिक्षक अपने सजीव/जीवन्त शिक्षण से विषयी दैनिक जीवन के अनुभवों को जोड़कर बालकों में विश्लेषणात्मक अर्न्तदृष्टि प्रदान करता है। अध्यापक बालकों से जैसा व्यवहार करता है उसका प्रत्यक्ष प्रभाव उन पर पड़ता है साक्षात् उदाहरण से बढ़कर कौन सी शिक्षा हो सकती है।

विभिन्न समितियों एवम आयोगों द्वारा भी मूल्य शिक्षा के महत्व पर बल दिया है। सन् 1938 में महात्मा गांधी द्वारा निर्मित समिति-''बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा'' के तहत शिक्षा प्रणाली में बदलाव की आवश्यकता पर महत्त्व दिया। सन् 1944 सार्जेण्ट समिति के सुझाव-नैतिक मूल्यों के बिना पाठ्यक्रम अधूरा होगा, सन् 1945 कब CABE द्वारा निर्मित

धार्मिक शिक्षा समिति की सिफारिश नैतिक एवम आध्यात्मिक मूल्य जो सभी धर्मों में समान है पाठ्यक्रम का एकीकृत हिस्सा होना चाहिए। सन् 1948-49 विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने समस्त शैक्षिक संस्थानों के पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक प्रशिक्षण पर बल दिया। सन् 1964-66 कोठारी शिक्षा आयोग का सुझाव-शिक्षा द्वारा बालकों में आत्मविश्वास, सृजनात्मकता, कार्य अनुभव एवम सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों को पोषित किया जाए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की सिफारिश-शिक्षा द्वारा बालकों में संवेदनशीलता, वैज्ञानिक चिन्तन, मन, आत्मा की स्वतंत्रता, मानवीय एवम कम्पोजिट संस्कृति के कार्य मूल्यों की अन्तः चेतना हेतु पोषित किये जाने चाहिए अर्थात् अध्यापक का स्तर समाज के सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों से परिलक्षित होना चाहिए।

इसके साथ ही मानव संसाधन विकास मंत्रालय की संसदीय समिति 1999 द्वारा दिया गया सुझाव-"विद्यालयी पाठ्यक्रम और अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में मूल्य आधारित शिक्षा को सम्मिलित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया"।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या कार्यक्रम 2000, 2005, 2007, 2009 द्वारा भी शिक्षा द्वारा बालकों में निर्धारित मूल्य-सत्य, उचित आचरण, शान्ति, समर्पण, आध्यात्मिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व आदि का पोषण किया जाना चाहिए।

मूल्य-मीमांसा पर समितियों और आयोगों द्वारा दिये गये सुझावों से प्रेरित होकर शैक्षिक संस्थानों द्वारा प्रयास भी किये है कि मूल्य मीमांसा वह पद्धति, तरीका है जो बालकों को स्वस्थ मानसिक आधार प्रदान कर, सद्गुणों का विकास कर उनके भावो व्यक्तित्व को समाजोन्मुख बनाने में सहायक होती है। इसका क्षेत्र बहुआयामी है। यह प्राचीन एवम नवीन, शाश्वत एवम सामयिक, परम्परागत एवम प्रगतिशील समस्त श्रेयस्कर मूल्यों की औपचारिक, अनौपचारिक शिक्षा है। इस शिक्षा का उद्देश्य-व्यक्ति में सही चिन्तन, सही अभिवृत्ति, जीवन कौशल रूपी आचरण तथा नैतिक

मूल्यों का समावेश ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के रूप में जाना जाता था तथा अध्ययन की उपयोगी विधियों तर्क, विश्लेषण, संश्लेषण में व्यक्ति को पारंगत बनाकर समयानुकूल व्यावहारिक जीवन में उपयोग से था।

वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था के तहत् वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण के कारण हुए आश्चर्यजनक परिवर्तनों ने भी शिक्षा जगत में दिन प्रतिदिन अधिक या कम भौतिकवादी संस्कृति को अपनाकर मूल्यमीमांसा के आयामों में संकट उत्पन्न कर दिया अर्थात् पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से व्यक्ति स्वयं केन्द्रित, दित्यता की अज्ञानता तथा स्वय की शरीर, मस्तिष्क, बुद्धि से रोटी, मक्खन के साथ शिक्षित होकर समाज के दृष्टिकोण को बदलने में सफल हो गया। यही परिवर्तित मूल्य युवा पीढ़ी के मस्तिष्क को झकझोर रहे है क्योंकि बदलते परिवेश की दार्शनिकता, सामाजिक सन्दर्भ, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, वैज्ञानिक एवम तकनीकी का जोरदार प्रसार, प्रचार द्वारा मूल्यों को प्रभावित किया गया है।

परम्परागत एवम आधुनिक मूल्यों के संघर्ष में शिक्षा ही शक्तिशाली यंत्र है जो कि युवा पीढ़ी में अपेक्षायोग्य मूल्यों का संचरण कर मध्यस्थता कर सकती है। तथा समस्त शैक्षिक व्यवस्था की धुरी शिक्षक और विद्यार्थी के चारो तरफ घूमती है। यदि अध्यापक स्वयं में मूल्य के प्रति प्रतिबद्धता रखता है तो निश्चित रूप में विद्यार्थी में मूल्यों का साक्षात् शिक्षक द्वारा पोषण होगा। शिक्षक बालकों के समक्ष आदर्शों, मूल्यों का प्रतिरूप होता है जो स्वयं के जीवन मूल्यों द्वारा नई पीढ़ी में मूल्य शिक्षा का संरक्षण/संचरण करता है। जैसा कि कहा जाता है कि मूल्य बालकों को सिखाये नहीं जाते अपितु विद्यालयी शिक्षा की प्रक्रिया के तहत् मूल्यों को बालकों द्वारा ग्रहण किया जाता हैं। क्योंकि प्राथमिक, माध्यामिक स्तर पर बालक अपने अभिभावकों से भी अधिक अध्यापकों से प्रभावित होते है। जो कि बालकों के विजन, विचारों, चरित्र एवम सदाचार आचरण को परिवर्तित करने में सहायक होते है। इसीलिए अध्यापकों से अपेक्षा की जाती है कि शिक्षक को स्वयं बालकों में व्याप्त मूल्य संकट से उबारने

हेतु तथा सही दिशा की ओर प्रेरित करने में आदर्श प्रतिमान के रूप में प्रस्तुत करना होगा।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य-मीमांसा–

किसी भी शैक्षिक व्यवस्था में अध्यापक प्रदत्त शिक्षा का व्यक्ति के जीवन में अत्यन्त महत्त्व होता है। क्योंकि अध्यापक इतिहास निर्माता है राष्ट्र का इतिहास विद्यालयों में लिखा जाता है और विद्यालय अध्यापक के गुणों, दक्षताओं, और मूल्य से भिन्न नहीं हो सकते है।

जहाँ तक अध्यापकों की शिक्षा का सम्बन्ध है वहां अध्यापक शिक्षा का उद्देश्य-शिक्षण क्रियाओं के संदर्भ में सैद्धान्तिक विषयी ज्ञान, अवबोध, सिद्धान्त, अधिनियम, तथ्यों की जानकारी प्राप्त कर व्यावहारिक अनुप्रयोग से है। इसीलिए अध्यापक शिक्षा स्वयं के स्वरूप में

सेवापूर्व अध्यापक–

सेवा पूर्व अध्यापकों से तात्पर्य : जो प्रशिक्षणार्थी छात्र अध्यापक किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय शिक्षाशास्त्री या बी.एड. की कक्षा में अध्ययन करके प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे है।

सेवारत अध्यापक-

सेवारत अध्यापकों से तात्पर्य : जो अध्यापक स्थायी/अस्थायी रूप में किसी विद्यालय में बालक / बालिकाओं के आवश्यकता आधारित शिक्षण-कार्यक्रम में कार्यरत है। तथा दिन प्रतिदन कक्षा-शिक्षण द्वारा स्वयं की दक्षताओं एवम व्यवासायिक विकास में प्रतिबद्धता के साथ सवर्धित करते है।

अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रम के तहत् सेवापूर्व छात्राध्यापकों को शिक्षण व्यवसाय सम्बन्धी विषयों के सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ विद्यालयी अनुभवों का व्यवहारिक ज्ञान वास्तविक परिस्थितियों में दिया जाता है। जिससे वे सेवारत अध्यापक के रूप में बालकों में अपेक्षित गुणों, संस्कारों और मूल्य के शिक्षा देने में समर्थ हो सके। लेकिन समाज में भौतिकवादी

संस्कृति का अनुकरण से ग्रसित अनियन्त्रित संवेग युक्त व्यक्ति के समग्र विकास-शरीर, मस्तिष्क, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिकता हेतु शिक्षा द्वारा इस प्रकार के अधिगम-अनुभव दिये जाने चाहिए जो उसकी सही दिशा प्रदान कर सकें इसीलिए अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के समक्ष महत्त्वपूर्ण चुनौती है कि इस पाठ्यक्रम द्वारा ऐसे शिक्षक तैयार किये जाये जो बालकों में संरचनात्मक एवम सृजनात्मक अभिवृत्ति का विकास कर सकें, बालकों में स्वस्थ विचार एवम सटीक तर्क देने के अवसर प्रदान कर सके, प्रकृति प्रेम एवम श्रम के प्रति आस्था का विकास करें, मौखिक एवम लिखित अभिव्यक्ति के लिए तैयार करें, पर्यावरण संरक्षण, संवर्द्धन हेतु रूचि विकसित करे तथा राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, संशोधित कार्य योजना 1992 ने भी विद्यालयी पाठ्यक्रम में कोर तत्वों को एकीकृत करने की संस्तुति की थी तथा उन तत्वों के क्रियान्वयन पर बल दिया अध्यापकों को सक्षम बनाने हेतु प्रो. डेलट कमीशन के प्रतिवेदन लर्निंग द ट्रेजर विदिन में जीवन कौशलों के अधिगम स्तम्भों की चर्चा की है।

Learning to know

Learning to Do

Learning to live together

Learning to be

लेकिन शिक्षा प्रणाली मात्र Knowledge जानना तक सीमित हो गई है जबकि आवश्यकता है कि कौशल, व्यवहार, मूल्यों का यथा योग्य उपयोग किया जाए। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में सेवापूर्व एवम सेवारत अध्यापकों इन जीवन कौशल का प्रशिक्षण दिया जाए जिससे इन जीवन मूल्यों का विकास बालकों में कर सके।

राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद द्वारा भी सेवापूर्व अध्यापक प्रशिक्षक पाठ्यक्रम के तहत मूल्य आधारित शिक्षा की सस्तुति की गई है। क्योंकि

शिक्षा की समग्र व्यवस्था में अध्यापक और विद्यार्थी धुरी है यदि शिक्षक व्यक्तिगत रूप में स्वयं के जीवन में मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता है जो निश्चय ही उसका प्रत्यक्ष प्रभाव बालकों पर पड़ता है। मूल्यों की शिक्षा तो प्रत्यक्ष उदाहरण से मिलती है। यही शिक्षक पर एक कठिन चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्व है कि परम्परागत एवम आधुनिक मूल्यों में से अपेक्षा योग्य मूल्यों का संचरण कर मध्यस्थता में स्वयं की शैक्षिक एवम सामाजिक भूमिका का निर्वाह करें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या कार्यक्रम 2000, 2003, 2005 द्वारा निर्धारित मूल्यों-साधुता, स्वानुशासन, मित्रभाव, मानवतावाद जनतांत्रिक भावना तथा अहिंसा को पाठ्यक्रमीय विषयों के तहत् शिक्षा देने पर बल दिया है कि प्राथमिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक मूल्यों को विकसित करने वाले पाठों को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में सूचना प्रौधोगिकी की आवश्यकता पर बल दिया कि सम्बन्धित संसाधित सामग्री का निर्माण किया जाए।

प्रश्न उठता है कि अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य शिक्षा की विषयवस्तु का निर्धारण करना भी आवश्यक है कि कौन-कौन से मूल्य विषयों के साथ सम्बन्ध कर सेवापूर्व अध्यापकों को प्रशिक्षण-अवधि में प्रदान किये जाए जो बालकों के लिए हितकारी और अनुकरणीय हो सके।

शाशवत मूल्य–

प्रातः कालीन सभा, शिक्षण में प्रतिबद्धता, निष्ठा, ईमानदारी, निष्पक्ष, भाषाओं द्वारा राष्ट्रीय एकता, विषयी प्रतियोगिता, सद्साहित्य पठन-पाठन, कर्त्तव्यनिष्ठा, पंचतंत्र, हितोपदेश में वर्णित कहानी-बोध, सृजनशीलता, वस्तुनिष्ठता, समानता, मूल्यांकन आदि।

नैतिक मूल्य–

सत्य, जीव-जन्तुओं, पशु-पक्षियों, बुजुर्ग एवम अक्षम बालकों के प्रति संवेदनशीलता, दयाभाव, क्षमा, सामाजिक उत्तरदायित्व, परोपकार, अनुशासन, श्रद्धा, सेवाभाव, अतिथि देवो भव, सहनशीलता, श्रम का

महत्त्व, संयम आदि।

वैज्ञानिक मूल्य–

अन्वेषण, जिज्ञासा, विवेक, सृजनात्मकता, प्रयोग तर्क, विश्लेषण, अविष्कार, नवाचार आदि।

सवैधानिक मूल्य–

सामाजिक न्याय, राजनैतिक समानता, जनतांत्रिक, स्वतन्त्रता, धर्मनिरपेक्षता, मातृत्व प्रेम, समान अवसर, आर्थिक समानता आदि।

सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य–

सामाजिक उत्तरदायित्व, सद्भावना, मानवाधिकार, मानवतावाद, समानता, नागरिकता, राष्ट्रीय अर्न्तराष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक एकता, सहभागिता आदि।

पर्यावरण मूल्य–

पर्यावरण–सुरक्षा, पर्यावरण–जागरूकता, वातावरण स्वच्छता, पर्यावरण सन्तुलन, प्रकृति प्रेम आदि।

वैश्विक मूल्य–

राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, सद्भाव समरसता, वसुधैव कुटुम्बकम्

जीवन-कौशल मूल्य–

दैनिक कौशल–समाज सेवा, योग, भक्ति राष्ट्र भक्ति संगीत, सामाजिक सांस्कृतिक कार्यों में सहभागिता, ध्यान, विनयशीलता, आध्यात्मिकता अन्तःव्यक्तिक सम्बन्ध, कार्य–अनुभव, संवेदनशीलता, जीवन रक्षक, इन्द्रिय निग्रह आदि।

शास्त्रीय मूल्य–

धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, सत्यं शिवं सुन्दरम, कर्म, सत, रज, तम प्रकृति (व्यवहार) आदि।

समस्त प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में अपेक्षिक मूल्यों की मीमांसा कर प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे छात्र अध्यापकों के लिए गृहणीय होने चाहिए, आत्मसात् करने हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए तथा पाठ्यसहगामी क्रियाओं द्वारा भी मूल्यों का संचरण किया जाना चाहिए। तथा समयानुकूल परिस्थितिवश विषयों के साथ अपेक्षित गुणों एवम मूल्यों का व्यवहारिक अनुपयोग किया जा सके।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्यों की व्यावहारिक व्यूह रचनाओं का अनुशीलन–

- शिक्षा के उद्देश्यों के अनुरूप मूल्य शिक्षा होनी चाहिए जिससे बालक में व्यक्तिगत एवम सामाजिक गुणों का विकास हो।
- मूल्य शिक्षा द्वारा बालकों में दूरदर्शिता का विकास होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं का आयोजन सामाजिक सहभागिता के साथ होना चाहिए।
- विषयी शिक्षण में उपयुक्त तरीकों-विचार-विमर्श, प्रश्नोत्तर, समस्या समाधान का प्रयोग होना चाहिए जिससे बालकों में नेतृत्व, सहयोग आपसी सम्मान तथा सामूहिक सद्विचार उत्पन्न हो।
- महापुरुषों के विचारों का समन्वित संकलन तथा उनेक आदर्शों को ग्रहण करने हेतु प्रेरित करना प्रमुख है।
- समाज-सेवा सम्बन्धी कार्यक्रमों का आयोजन करना समाज-सुधार की प्रेरणा देना आवश्यक है।
- स्वामी रामकृष्ण परमहंस-बालक की वास्तविक शिक्षा हेतु शिक्षण सूत्र बताये जीवन को कैसे व्यतीत किया जाए, प्रसन्नता/खुशी कैसे प्राप्त की जाए अन्य को कैसे खुश बनाया जाए सभी प्रकृति के व्यक्तियों के लिए खुशी का प्रबन्धन कैसे हो तथा उचित तरीकों से कैसे विकसित होकर सफलता प्राप्त

की जाए।

- प्रशिक्षण समय छात्र अध्यापकों में मूल्यों का संचरण तीन उद्देश्यों पर आधारित होना चाहिए।

  संज्ञानात्मक - सिर - विचार

  भावात्मक - दिल - शब्द

  क्रियात्मक - हाथ - कार्य

  छात्र अध्यापकों का मनोवैज्ञानिक परिमण्डल-संज्ञान, भावात्मक एवम क्रियात्मक प्रक्रियाओं में सिर, दिल और हाथों का अर्थात् मस्तिष्क रूपी विचार, दिल/हृदय से उद्‌गरित शब्द तथा हाथ रूपी कार्यों में सामंजस्य होना चाहिए।

- स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा था जागो : उठो चलते रहो: जब तक मंजिल ना मिल जाए।

- मूल्य शिक्षा हेतु महापुरुषों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते है उदाहरण–

माता-पिता की सेवा	–	श्रवण की भक्ति द्वारा
आदर्श मैत्री	–	कृष्ण और सुदामा
भातृ प्रेम	–	राम का भरत के प्रति
शिक्षक के प्रति श्रद्धा	–	एकलव्य की कथा द्वारा
सुकरात द्वारा	–	सहनशीलता
महात्मा गांधी का	–	समपर्ण भाव
आदर्शवाद	–	सत्यं शिवं सुन्दरम
प्रकृतिवाद	–	प्रकृति प्रेम, शिक्षा
व्यक्तित्व	–	सत रज तम गुणों का मिश्रण

- पाठ्य सहगामी क्रियाओं द्वारा समाज सेवा, योग राष्ट्रगीत एवम सांस्कृतिक सामाजिक कार्यों में छात्राध्यापकों की सहभागिता द्वारा मूल्यों को आत्मसात् करने का प्रशिक्षण अनिवार्य हों।
- पाठ्यक्रम क्रियाओं के अन्तर्गत भाषाओं के लिए छोटी-छोटी कविता, कहानियों, मौखिक एवम लिखित अभिव्यक्ति कौशल-विकास, विज्ञान विषयों में चिन्तन, तर्क, अवलोकन, सृजनात्मकता, प्रयोग, अन्वेषण, मानसिक सन्तुलन, सामान्यीकरण तथा सामाजिक विज्ञान विषयों में स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, दयानन्द सरस्वती समाज सुधारकों के मूल्यप्रधान विचार एवम अकबर, अशोक, शिवाजी, चाणक्य, विक्रमादित्य आदि के समय के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व्यवस्था युक्त शासन काल आदि का स्पष्टीकरण कर भारतीय ऐतिहासिक विचारों का ज्ञान देना आवश्यक है जिससे बालकों को इनके विचारों, आदर्शो से प्रेरणा मिले।
- अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में दस कोर तत्वों का अनुशीलन सैद्धान्तिक एवम व्यावहारिक रूप में किया जाना अपेक्षित होगा।
- प्रशिक्षण के दौरान छात्रों में सम्प्रेषणात्मक कौशलों का विकास जरूरी है, उनके आत्म विश्वास में वृद्धि की जाए जिससे बालकों में सीखने सिखाने की अभिवृत्ति विकसित हो।
- अध्यापक शिक्षा हेतु वातावरण निर्माण आवश्यक है कि प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा छात्र आदर्शवादिता के साथ सत्यं शिवं और सुन्दरम की शिक्षा प्रकृति के मुक्त वातावरण में अनौपचारिक रूप से प्राप्त करें यथार्थवाद के धरातल पर नैतिक निर्णय लेने की क्षमता जागृत हो अर्थात् मूल्य शिक्षा उपयोगिता के धरातल पर खरी उतरें।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम-सुझाव

- अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के प्रत्येक स्तर पर मूल्य शिक्षा से सम्बन्धित ''संवेदनशीलता युक्त माडयूल्स'' तैयार किया जाए जो सेवापूर्व अध्यापकों को प्रशिक्षण में विषयी ज्ञान के साथ मूल्यों की उपयोगिता के सम्बन्ध में संवेदनशील बना सके।
- सेवारत अध्यापकों के लिए समय-समय पर आयोजित अभिविन्यास एवम विषय आधारित पुनश्चर्या कार्यक्रम के पाठ्यक्रम में भी मूल्य शिक्षा को सम्बद्ध किया जाए अपेक्षित होगा।

निष्कर्ष रूप में शिक्षा किसी भी समय या युग की हो औपचारिक या अनौपचारिक हो किसी भी स्तर-प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च या व्यवसायिक हो, बालक/बालिकाओं की या प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे छात्र/छात्राओं की हो समाज पर मूल्य शिक्षा का प्रभाव अलग-अलग तरीकों, विधियों और परिस्थितियों के अनुरूप दृष्टिगोचर होता है। लेकिन विषयी आधारित श्रेष्ठ मूल्यों की शिक्षा मानव के समग्र विकास हेतु अपरिहार्य, सार्वभौमिक, सर्वव्यापी और शावत है और रहेगी।

सन्दर्भ

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, संशोधित प्रारूप 1992 मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली
2. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क 2000, 2002, 2005, 2006, एन. सी. ई. आर. टी. नई दिल्ली
3. आबुल राशीद 1971 अध्यापक एवम छात्रों के मूल्यों का प्रतिवेदन, वाल्यूम 39
4. तनेजा 1990, ''शैक्षिक विचार एवम मूल्यों का व्यावहारिक स्वरूप'', स्टलिंग प्रकाशन नई दिल्ली
5. मुखर्जी आर. 1969 ''मूल्यों का सामाजिक ढांचा'' चाँद प्रा. लिमिटेड कम्पनी नई दिल्ली

6. चतुर्वेदी आर. 1011 ''मूल्य शिक्षा'' यू.पी. एच प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली
7. अमर उजाला 2011 ''मूल्यों का मानचित्र'' लेख प्रकाशित मेरठ, उत्तर प्रदेश
8. मोहन्ती जे 2012 ''नैतिक मूल्य विकास का शिक्षण'' दीप एण्ड दीप प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली
9. शर्मा ए.पी. 1995 ''कैन टीचर्स इनकल्केट वैल्यूज'' विश्वविद्यालय न्यूज, मई 15 पेज 1-3

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम : मूल्यमीमांसा दृष्टि हेतु अपेक्षित उपाय कौशल

डॉ. अमिता पाण्डेय भारद्वाज

21वीं शदी के तेजी से बदलते शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों में पाठ्यक्रम रचना का आधार क्या हो? उसका आग्रह किस ओर हो तथा उसमें ज्ञान रचना की प्रक्रिया एवं ज्ञानमीमांसात्मक दृष्टि क्या हो? आदि से सम्बन्धित प्रतिमानों एवं सिद्धान्तों में भी परिवर्तन की अपेक्षाओं को स्वाभाविक रूप में देखा जा सकता है। सम्प्रति, शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर प्रवर्तित पाठ्यक्रमों विशेषकर प्राथमिक स्तर पर ज्ञानमीमांसात्मक प्रतिमान के परिप्रेक्ष्य में 'व्यवहारवाद' से 'संज्ञानवाद' तथा 'सांज्ञानवाद' से 'रचनावाद' की अवधारणाओं पर अधिक बल प्रदान किया जा रहा है। इस प्रतिमान परिवर्तन के साथ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आधारभूत प्रक्रिया को 'सीखने के लिए शिक्षण' (Teaching to Learn) से 'उसे जानने के लिए सहायक' (Helping to know) प्रभावी युक्ति बनाने की ओर उन्मुख किया जा रहा है। रचनावादी परिप्रेक्ष्य में एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा एन.सी.एफ. (2005) के रूप में संकल्पनापरक दस्तावेज की रचना की गई जिसके दिशा निर्देश में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तरों के पाठ्यक्रमों की प्रभावी क्रियान्विति हेतु योग्य एवं प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता होगी जिसकी सम्पूर्ति की जिम्मेदारी अध्यापक शिक्षा के अन्तर्गत संचालित कार्यक्रमों एवं गतिविधियों विशेषकर बी.एड. पाठ्यक्रम की बन जाती है।

इधर प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण एवं शिक्षा के अधिकार का अधिनियम (2009) के प्रति सरकारी प्रतिबद्धता ने विद्यालयीय अध्यापकों की माँग को कई गुना बढ़ा दिया है। इस माँग एवं पूर्ति में इष्टतम सन्तुलन बनाने के लिए अध्यापक शिक्षा के विविध पाठ्यक्रमों का पुनरीक्षण एक अपरिहार्य उपक्रम बन जाता है।

इसी अन्तर्क्रियात्मक धरातल पर विचारों के विश्लेषण एवं संश्लेषण की प्रक्रिया के फलस्वरूप राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) द्वारा अध्यापक शिक्षा परिप्रेक्ष्य (एन.सी.एफ.टी.ई. NCFTE-2009) प्रस्तुत किया गया जिसका मुख्य मन्तव्य रहा है–संवेदनपूर्ण मानवीय व्यावसायिकी तैयार करना। यह उद्देश्य जहाँ एक ओर व्यावसायिक दक्षता से परिपूर्ण अध्यापक निर्माण की अपेक्षा रखता है, वहीं यह दूसरी ओर उसे संवेदनाओं से आपूर्ण मानव बनाने पर विशेष बल देता है। इस बात में कोई संशय नहीं है कि किसी व्यावसायिक पाठ्यक्रम के द्वारा छात्र में व्यावसायिक कुशलता का विकास करना जितना सरल प्रतीत होता है उतना ही जटिल एवं दुष्कर है–उसमें मूल्यों का विकास एवं संवर्धन। इस समस्यात्मक चुनौती एवं दुस्साध्यता के आयाम में समाधान की परिकल्पना को जोड़ना मूल्यमीमांसीय दृष्टि से एक अहम भूमिका निभाती है।

मूल्यमीमांसीय दृष्टि के अन्तर्गत मूल्यों व आचरण सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्त क्या हो? आचार-व्यवहार की कसौटी क्या हो? मूल्यों की वांछनीयता एवं उपयुक्तता का मापदण्ड क्या हो? बदलते परिदृश्य में मूल्यों के संकट से कैसे निपटा जाये? व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की अवधारणाओं से जुड़े मूल्य क्या हों? आदि प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार की चिन्ताओं में समाविष्ट होते हैं। प्रस्तुत पत्रक द्वारा इस दृष्टि को अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रमों का अभिन्न अंग बनाने हेतु कुछ अपेक्षित उपाय कौशलों को रेखांकित किया गया है। ये हैं–भारतीय चिन्तन की आधारभूत संकल्पनाओं को प्रतिस्थापित करना, सुस्थिर जीवन शैली का विकास, वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना का अनुरक्षण, भावात्मक विकास, चरित्र निर्माण, शैक्षिक एवं

सामाजिक संदर्भों से जुड़े मूल्य का पोषण एवं व्यवहारपरक प्रभावी क्रियान्वयन विधियों का प्रयोग जिनका उल्लेख निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा सारांकित किया गया है।

(1) भारतीय चिन्तन की संकल्पनाओं के आत्मसात्करण पर बल : अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रमों में अध्यापित विभिन्न विषयों से सम्बन्धित सम्प्रत्ययों के विकास एवं अधिगम विस्तार हेतु भारतीय चिन्तन में उनसे जुड़ी अवधारणाओं को यथा स्थान महत्व प्रदान करना चाहिए। उदाहरणार्थ जहाँ वर्तमान शिक्षा प्रणाली का एकमात्र उद्देश्य है बालक का सर्वांगीण विकास करना, वहीं भाारतीय चिन्तन में आत्मानुभूति प्राप्त करना प्रमुख ध्येय रहा है। इस सन्दर्भ में शिक्षा को रूपान्तरण की प्रक्रिया कहा जा सकता है जिसमें व्यक्ति पशुत्व से मनुष्यत्व तथा मनुष्यत्व से देवत्व की ओर अग्रसर होता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा दर्शन में पाश्चात्य दर्शन के साथ-साथ भारतीय दर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान से सम्बन्धित सम्प्रत्यय जैसे बुद्धि, व्यक्तित्व आदि की भारतीय चिन्तन में मूल अवधारणा, शिक्षाशास्त्र का भारतीय शिक्षा पद्धति की पृष्ठभूमि में संश्लेषण, पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित भारतीय चिन्तन आदि की स्थापनाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जा सकता है। इस प्रकार के अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रमों द्वारा एक ऐसा अध्यापक एवं अध्यापक प्रशिक्षक तैयार करना सम्भव हो सकेगा जो बदलते शैक्षिक परिदृश्य की चुनौतियों से निपटने में सक्षम होंगे।

(2) सुस्थिर जीवन शैली के विकास पर बल : अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रमों में सुस्थिर जीवन शैली के विकास को जीवन मूल्यों के आवश्यक घटक के रूप में समाविष्ट किया जा सकता है। यह विकास जहाँ एक तरफ शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करेगा वहाँ दूसरी तरफ संवेदनाओं से परिपूर्ण अध्यापक तैयार करने में साधकत्व प्रदान करेगा। जीवन मूल्यों के रूप में पाँच यम यथा–सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह तथा पाँच नियम यथा–शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान का अभ्यास, योग के अल्पावधि गहन

कार्यक्रम, शारीरिक व्यायाम, गाईड-स्काउट कार्यक्रम, शैक्षिक भ्रमण, आदि गतिविधियों के माध्यम से सुकर बनाया जा सकता है। इस अभ्यासों की परिणति एक संतुलित एवं संयमी व्यक्तित्व वाले अध्यापक एवं अध्यापक-शिक्षक बनाने में होगी।

(3) वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के विकास पर बल : सर्वविदित है कि व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से देश और देश से विश्व बनता है। विश्व को परिवार मानना वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा को प्रतिपुष्ट करता है। अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के माध्यम से इस भावना के विकास का प्रयास, एक दूसरे के प्रति आदर, समभाव एवं मिल-जुल कर कार्य करने की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देकर सम्भव हो सकेगा। इसी भावना को डेलर्स रिपोर्ट **'लर्निंग द ट्रेजर विदिन'** में प्रतिपादित ज्ञान के चार स्तम्भों में से एक **'लर्निंग टू लिव टूगैदर'** भी इसी तरफ इशारा करता है। अन्तर्राष्ट्रीय एकता, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना एवं अन्तर्राष्ट्रीय अखण्डता की अवधारणाओं से प्रेरित गतिविधियों एवं क्रियाकलापों को पाठ्यक्रम में विशेष स्थान प्रदान करना होगा जिससे वैश्विक धरातल पर अपेक्षित भावयुक्त संस्कारों को विकसित एवं प्रबलित किया जा सके।

(4) भावात्मक विकास पर बल-भावों को प्राय: सकारात्मक एवं नकारात्मक श्रेणियों में उनकी प्रकृतियों के आधार पर रखा जाता है। उदहरणार्थ : सहिष्णुता, विनम्रता, स्नेह, करुणा, सहानुभूति, तदनुभूति आदि को सकारात्मक भाव तथा ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, तनाव, कुण्ठा, अवसाद आदि को नकारात्मक भाव के संवर्गों में रखा जाता है। पाठ्यक्रम के द्वारा सकारात्मक भावों को प्रोत्साहित करना तथा नकारात्मक भावों पर नियन्त्रण करने के तरीकों से सम्बन्धित क्रियाकलापों पर बल देना होगा जिसके परिणामस्वरूप भावात्मक विकास को सुनिश्चित एवं टिकाऊ अवलम्ब प्रदान किया जा सके। इसके लिए योग, सामूहिक क्रियायें, सामूहिक कार्य एवं खेल-कूद जैसी क्रियाओं का पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाना होगा। इसके अतिरिक्त अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के उद्देश्यों को संज्ञानात्मक

अनुक्षेत्र के साथ-साथ भावात्मक अनुक्षेत्रों से भी संयोजित करना होगा जो मूल्य मीमांसीय दृष्टि के विकास में सहायक होगा।

(5) चरित्र निर्माण पर बल–अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में भावात्मक विकास के साथ आध्यात्मिक विकास पर भी बल देना चाहिए। व्यक्ति का आत्मिक विकास उसके विचारों से जुड़ा होता है। विचार व्यक्ति के चिन्तन प्रक्रिया और चिन्तन प्रक्रिया उसके वचन एवं कर्म में परिलक्षित होते हैं। दिन-प्रतिदिन के वचन एवं कर्म व्यक्ति की आदतों में ढल जाते हैं जो धीरे-धीरे उसके चरित्र को एक निश्चित आकार एवं एवं स्वरूप प्रदान करने लगते हैं। अतः चरित्र के मलमूत्र बीज रूपी विचारों में पाठ्यक्रम के माध्यम से अपेक्षित स्तर की शुद्धता, सुन्दरता एवं निर्मलता लाने के तरीकों एवं अवसरों को बढ़ाने पर विशेष बल देना होगा। इन प्रयासों के क्रियान्वयन हेतु अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम की संरचना एवं उसके स्वरूप में कई ऐसे परिवर्तन करने होंगे जो छात्राध्यापकों के संज्ञानात्मक विकास के साथ-साथ उनका चारित्रिक विकास भी सुनिश्चित कर सके।

(6) शैक्षिक एवं सामाजिक संदर्भों से जुड़े मूल्यों का विकास : अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्यमीमांसीय दृष्टि को प्रभावी अभिव्यक्ति देने हेतु पाठ्यक्रम में शैक्षिक एवं सामाजिक संदर्भों से जुड़े मूल्यों के विकास पर विशेष ध्यान अपेक्षित है। शैक्षिक सन्दर्भों से जुड़े मूल्य विशेषकर कर्तव्यनिष्ठा, धैर्य, वस्तुनिष्ठता, विनम्रता, समयबद्धता, इमानदारी आदि के संस्कारों का आत्मीकरण उन पर आधारित अभ्यास एवं विकास जहाँ शैक्षिक परिस्थितियों को बेहतर बनाने में मददगार होगी, वहीं सामाजिक संदर्भों से जुड़े मूल्य विशेषकर सहयोग, सहानुभूति, स्नेह, आदर-सम्मान आदि का विकास सामाजिक परिस्थितियों में उत्कृष्टता लायेगी। इस प्रकार दोनों सन्दर्भों से जुड़े शैक्षिक एवं सामाजिक मूल्यों के विकास एक ऐसी आधार भूमि तैयार करेंगे जिसमें मूल्यमीमांसीय दृष्टि का सहजता से प्रस्फुटन एवं संवर्धन सम्भव हो सकेगा। अतः अध्यापक शिक्षा

पाठ्यक्रम में शैक्षिक एवं सामाजिक सन्दर्भों से जुड़े मूल्यों के विकास के प्रचुर अवसर उपलब्ध करने होंगे। जिसे विभिन्न गतिविधियों एवं मूल्यपरक शिक्षा के रूपों में पाठ्यक्रम में अंगीकृत करना होगा।

(7) व्यवहारपरक शिक्षण विधियों के प्रयोग पर बल–यह सुस्पष्ट हो जाता है कि अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्यमीमांसीय दृष्टि लाने हेतु पाठ्यक्रम क्रियान्वयन विधियों में परिवर्तन अपेक्षित है। यह परिवर्तन शिक्षक--केन्द्रित से छात्र केन्द्रित तथा सैद्धान्तिक से व्यवहारपरक क्रियान्वयन विधियों की ओर उन्मुखता का संकेत करता है। मूल्यों को व्यवहार में लाने हेतु उन पर अभ्यास एवं आचरण आवश्यक है क्योंकि मूल्य पढ़ाये नहीं अपितु ग्रहण किए जाते है। इसके लिए अनुकरण, आदर्शीकरण, दृष्टान्तीकरण, सन्दर्भीकरण, वैयक्तिकरण आदि व्यवहारपरक युक्तियों को पाठ्यक्रम क्रियान्वयन विधियों का अभिन्न अंग बनाना होगा। इसके साथ-साथ क्रिया-कलाप केन्द्रित एवं खेल विधियों में निहित मूल्यों को आत्मसात करने की प्रक्रिया को गतिमान करना होगा। इन युक्तियों एवं विधियों का पाठ्यक्रम क्रियान्वयन के समय प्रयोग करने से निश्चित ही छात्राध्यापक वांछनीय मूल्यों को सरलतापूर्वक अपने व्यवहार का अंग बना सकेंगे। इस परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम को मजबूत मूल्यमीमांसीय आधार प्रदान करने में व्यवहारपरक क्रियान्वयन विधियाँ एक नियामक युक्ति की भूमिका अदा कर पायेंगी।

प्रस्तुत पत्रक द्वारा प्रस्तावित उपाय-कौशल निश्चित ही अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम को मूल्यमीमांसात्मक आधार भूमि में प्रतिष्ठित करने में सहायक होगें। इसके लिए पाठ्यक्रम में संज्ञानात्मक एवं भावात्मक विकास से जुड़ी पाठ्यवस्तु एवं गतिविधियों में एक सन्तुलन बनाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम के माध्यम से जहाँ एक ओर प्रयोगात्मक एवं अनुभव आधारित उपक्रमों एवं गतिविधियों को बढ़ावा देना होगा, वहीं दूसरी ओर ज्ञानमीमांसात्मक एवं मूल्यमीमांसात्मक दृष्टि आधारित योजनाओं को भी समर्थन देना होगा जिसके परिणामस्वरूप एक ज्ञान

योगी, कर्म योगी एवं भाव योगी अध्यापक के गुणों से सम्पन्न अध्यापक तैयार करना सम्भव हो सकेगा। इस उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर अध्यापक, अध्यापक-शिक्षक, पाठ्यक्रम निर्माता एवं नीति निर्माताओं को सामूहिक रूप में पहल एवं प्रयास करने होंगे जिससे अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम, मूल्यमीमांसा सन्दर्भ की अपेक्षाओं की कसौटी पर खरा उतर पायेगा।

संदर्भ

1. नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फॉर टीचर एजुकेशन, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् प्रकाशन, नई दिल्ली (2009)
2. गुणात्मक अध्यापक शिक्षा का पाठ्यचर्या प्रारूप, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् प्रकाशन, नई दिल्ली (1999)
3. पाण्डेय के. पी., शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, (2005)
4. त्रिपाठी, ए. एन., ह्युमन वैलूज, न्यू एज इन्टरनेशनल पब्लिशर्स (2009)

मूल्य संकट एवं सम्भव समाधान अध्यापक शिक्षा के सन्दर्भ में

डॉ. मनोज कुमार मीणा
सहायक आचार्य

भारत विश्व का मार्गदर्शन करनेवाला देश है। तक्षशिला व नालन्दा जैसे विश्वविद्यालय श्रेष्ठ व उत्कृष्ट शिक्षा के माध्यम से भारत की गुरूता की पताका विश्व में फहराया करते थे। यह सब मूल्ययुक्त शिक्षकों के अथक परिश्रम से ही संभव हो पाया था। लेकिन वर्तमान में इस राष्ट्र व समाज का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि हम अपने गौरवशाली इतिहास का भूल गये। आज हमारा अधिकांश समाज पश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण में अपना गौरव समझ रहा है। यह बात अलग है कि भारतीय संस्कृति की जड़े इतनी मजबूत है कि जो वर्तमान में भी स्थापित है। परन्तु यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का सामना हमें अध्यापकों को अपने कर्तव्य का पालन न करने के कारण करना पड़ रहा है। अध्यापकों में कर्तव्यकर्म के प्रति अरूचि, मूल्यों में ह्रासता का मुख्य कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अध्यापक शिक्षा सुचारू रूप से न चलने के कारण भी है। अत: अध्यापक शिक्षा में ऐसे मूल्ययुक्त वातावरण का विकास करना अपेक्षित है जिससे अध्यापक शिक्षा के माध्यम से अध्यापक ज्ञान प्रदान जैसे महान कार्य के महत्ता को समझकर उसके उचित प्रयास करें तथा अपने ज्ञान एवं व्यवहार से छात्रों एवं नागरिकों के समाने एक उच्च आदर्श प्रस्तुत करें।

मूल्य सिद्धांत होते हैं वे संगत और सार्वभौमिक होते हैं तथा हमारे क्रियाकलापों को निर्देशित करते हैं। वे हमारे समाज में अन्तर्निहित होते हैं। दूसरे शब्दों में मूल्य किस व्यक्ति के गुण होते है यदि इन मूल्यों का ह्रास होता है तो इससे परिवार, समाज और राष्ट्र के पतन की गति तीव्र होती है। यह भी सत्य है कि शिक्षा में स्वयं ही मूल्य अन्तर्निहित होती है।

मूल्य शिक्षा की वांछनीय प्रकृति तथा आवश्यकता पर परिकल्पनायें मुख्य रूप से 1986-1992 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में उठाई गई। अध्यापक शिक्षा को मूल्ययुक्त करने हेतु भी अनेकाअनेक निर्देश दिये गये हैं। अध्यापक को छात्रों के अन्तर्गत राष्ट्रीय पहचान को सशक्त बनाने की आवश्क तथा राष्ट्रीय एकीकरण को प्रोत्साहित करना चाहिये।

मूल्ययुक्त अध्यापक शिक्षा हमारी संस्कृति एंव समाज के संरक्षण के लिये आवश्यक है। अतः अध्यापक को व्याव्यसायिक क्षेत्र में आने से पूर्व उसे ऐसे मूल्ययुक्त पाठ्यक्रम के माध्यम से तथा मूल्ययुक्त प्रशिक्षण से इतना दक्ष कर देना चाहिये जिससे वह परिवर्तनशील समय को मांग के अनुसार ज्ञान प्रदान करने में सक्षम हो सके। संस्कृति और मानव मूल्य दो अलग रूप नहीं हैं। संस्कृति के नाम पर अक्सर खेलकूद, मनोरंजन, सिनेमा, टेलीविजन और पारम्परिक उत्सव, समारोहों की चर्चा की जाती है। जबकि संस्कृति का सम्बन्ध मानव की मूल्यभूत आकांक्षाओं और आध्यात्मिक मूल्यों से है। वर्तमान सभ्यता और संस्कृति के मध्य मानव मूल्य पिसते जा रहे हैं।

मूल्य आधारित अध्यापक शिक्षा से तात्पर्य है उसे निकर्म व्यवसायिकता से अलग करना और स्वतन्त्रता, समता, बन्धुता जैसे मूल्यों से जोड़ना, क्योंकि इन्हीं मूल्यों से अन्य सकारात्मक मूल्यों का विकास होता है। शिक्षक-प्रशिक्षण में मूल्यों की इस संरक्षा में हमें भारतीय चिन्तन परम्परा के सत्य शिव सुन्दरम् की स्वीकारना होगा इन तीन शब्दों में ही सम्पूर्ण मानव मूल्य समाहित हैं। अध्यापक प्रशिक्षण के अन्तर्गत ऐसी प्रक्रिया

अपनी होगी ताकि हम सत्य की खोज और उस पर अडिग रहने का संकल्प भावी पीढ़ी में तैयार कर सके। क्योंकि मनुष्य हि सर्वोपरि सत्य है।

अध्यापक शिक्षा के मूल्य संबंधित समाधानों के अन्तर्गत शिक्षकों को राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समरता, भारत की विविधताओं को समझने की आवश्यकता है और उनमें निहित एकता के सूत्रों को पहचनना, भारत के सामाजिक तथा आर्थिक विकास को ऐतिहापि दृष्टि कोण से समझना, छात्रों में राष्ट्र के गौरवमय पक्ष को जाने की इच्छा उत्पन्न करना मुख्य है। शिक्षक-शिक्षा की गुणवत्ता सुधार और सतत परिवर्तन को भी स्वीकार कर पाठ्यक्रम शिक्षण विधियों, एवं प्रशासनिक कमियों को भी दूर करना अत्यावश्यक है मूल्य युक्त शिक्षा किसी भी शिक्षा प्रणाली और शिक्षा व्यवस्था का आवश्यक अंग होती है। सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृति परिवर्तनों के साथ मूल्यों का भी परिवर्तित स्वरूप सामने आने लगा है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर मूल्य आधारित अध्यापक शिक्षण-प्रशिक्षण प्रदान करने का प्रयास किया जाना चाहिये।

प्राचीन-अर्वाचीन मूल्य चिन्तन

डॉ. प्रतिष्ठा एवं प्रो. गोपीनाथ शर्मा
शिक्षाशास्त्र विभाग

शिक्षा का व्यापक अर्थ है ''मानव व्यक्तित्व का समग्र विकास''। समग्र विकास में शारीरिक, मानसिक व सामाजिक विकास सन्निहित है। मानसिक विकास के तीन पक्ष मानसिक, संकल्प एवं सांवेगिक पक्ष है। यदि इन पक्षों का उचितवांछनीय विकास किया जाए तो मानसिक विकास ज्ञान की ओर, संकल्प क्रियाशीलता की ओर तथा संवेग विश्वव्यापी प्रेम की ओर उन्मुख करते हैं। इसलिए एक समन्वित व्यक्ति के निर्माण हेतु तीनों ही पक्षों पर बल दिया जाना चाहिए।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि 'समग्र विकास' या 'सही विकास' या 'वांछनीय विकास' क्या है? इन तीनों सन्दर्भों का एक ही उत्तर हो सकता है ''मूल्य विकास''। किसी भी व्यक्ति के मूल्य उसके अपने ''जीवन के प्रति दृष्टिकोण'' पर निर्भर करते हैं। यदि हम अपने चिंतन (मान्यताएँ), कथन एवं कृत्यों मे अभिव्यक्त होने वाले विभिन्न पक्षों को अपने जीवन के प्रति दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में आँके तो हमें 'मूल्यों' के दर्शन होते हैं। चूंकि जीवन के प्रति दृष्टिकोण अर्जित भी है और हस्तांतरित भी, अतः यह व्यक्ति के प्रयास, पर्यावरण और संस्कार का परिणाम है। व्यक्ति के निजी प्रयास एवं उसका पर्यावरण संस्कारों को पूर्णतः नहीं तो बहुत सीमा तक बदल सकते हैं। इसलिए कहा जाना चाहिए कि शिक्षा की सार्थकता मूल्य निर्माण में है।

मूल्य एवं शिक्षा को पर्याय माना गया है। शिक्षा का ध्येय मानव में मूल्य विकास करना हैं। मूल्यों का सम्बन्ध नैतिक एवं सद्जीवन से है। सद्जीवन मूल्य मीमांसा का तथा नैतिक जीवन नीतिशास्त्र के विषय है। नैतिक के अन्तर्गत करने योग्य और न करने योग्य की व्याख्या की जाती है, जबकि मूल्य मीमांसा में अच्छा बुरा, सुन्दर-असुन्दर तथा शुभ-अशुभ पर विचार किया जाता है। शिक्षा में 'ज्ञान' को मूल्यों से जोड़ा जाता है। 'ज्ञान' जानकारी से वृहत है तथा सही अर्थ में व्यक्तित्व निर्माण का आधार बनता है। केवल जानकारी होने से व्यक्ति ज्ञानी नहीं बनता है। जानकारी का सही अर्थों में, सही प्रकार से, सही समय पर, सही मात्रा में मानव हित के लिए प्रयोग किया जाये या व्यवहार का अंग बना लिया जाए तो ही वह 'ज्ञान' कही जाएगा।

हम अपने व्यक्तित्व में किन मूल्यों को प्राप्त करने या अंगीकृत करने का प्रयास करें । स्पष्टतः इसका उत्तर-जीवन के प्रति हमारे अपने दृष्टिकोण में ही खोजना होगा। जीवन के प्रति दृष्टिकोण को तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। (1) आध्यात्मिक (2) सामाजिक एवं (3) स्वकेन्द्रित

(1) आध्यात्मिक उपागम - यह आत्मा जन्म उपागम है। दूसरे शब्दों कहें कि यह उपागम अन्तिम सत्ता का निरुपण एक दैवीय सत्ता में विश्वास के आधार पर करता है। यह परम सत्य अनन्त स्वस्फूर्त सुसंगत एवं स्वाधारित है व वही ब्रह्माण्ड में जड़ व चेतन के रुप मे व्याप्त है। इसमें विज्ञान ''कैसे '' वाले पक्ष अध्ययन कर इसे समझना चाहता है, जबकि आध्यात्मिक उपागम इसी की 'क्यों' वाले पक्ष पर अधिक बल देता है।

(2) समाज केन्द्रित उपागम- समाज केन्द्रित उपागम मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाता है। मानवतावाद व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं मानव की समानता में विश्वास रखता है। यह समस्त मानवता के कल्याण में मूल्यों की इतिश्री मान लेता है। इसलिए वर्तमान में आधुनिक धर्मनिरपेक्ष शिक्षा

को मानवतावाद की सीमाओं में बाँधना पड़ा है।

(3) स्वकेन्द्रित उपागम–स्वकेन्द्रित उपागम से अभिप्राय दिव्य आत्मा या मनुष्येतर 'स्व' से नहीं है। अर्थात् उसकी अविकसित अवस्था मात्र से अथवा 'ईगो' से है। यह सीमित अहं केन्द्रित 'स्व' हमारे समस्त दु:खों की जननी है।

मूल्यों को प्राय: तीन वर्गो में बाँटा जा सकता है। (1) बुनियादी मूल्य (2) सांस्कृतिक मूल्य (3) आधुनिक मूल्य।

प्राथमिक या बुनियादी मूल्य वे हैं जो मानव जीवन के चरम लक्ष्यों से, उनकी प्राप्ति के साधनों से सम्बद्ध हैं। यह परम लक्ष्य है 'सत्य' और इसकी प्राप्ति का साधन है 'अहिंसा'। इस प्रकार 'सत्य' और 'अहिंसा' बुनियादी मूल्य हैं।

संस्कृति के पाँच मूल्य माने गए हैं।

(1) समग्रता (Totality) (2) गहराई (Depth) (3) सहिष्णुता/उदारता (Tolerance/Generosity) (4) सीखने के प्रति ग्रहणशीलता (Receptivity) एवं (5) पराकाष्ठाओं की अवहेलना/संतुलन (Avoid Extremes/Maintaining)

दैनन्दिन व्यवहार में समग्रता क्षैतिजीय रुप में तथा ऊर्ध्वगामी दृष्टि से गहराई होनी चाहिए। यहाँ सोचना, कृत्य, भाषाई व्यवहार, सौम्यता तथा गाम्भीर्य को वांछित माना गया है। गहराई ऊर्ध्वगामी दृष्टि अर्थात् गहराई विनय, संयम, नियंत्रण तथा अनुशासित जीवन की ओर अग्रसर करते हैं। 'सहिष्णुता' में थोड़ा नकारात्मक रूप दीखता है, जबकि इसके अन्य अर्थ औदार्य में सकारात्मक रूप दीखता है। इस अर्थ में समतावादिता, आर्थिक न्याय, स्वतंत्रता तथा धर्म निरपेक्षता को माना जा सकता है। सीखने के ज्ञान के प्रति आग्रह, मानव अभिवृद्धि एवं विकास में सहायक बनकर उसे गतिशीलता प्रदान करती है। भारतीय संस्कृति की पाँचवी विशेषता पराकाष्ठाओं की अवहेलना भारतीय संस्कृति केवल आध्यात्मिक

उपागम पर अत्यधिक बल देती है का घोर विरोध करती है। वस्तु स्थिति तो यह है कि चार पुरूषार्थ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष, चार आश्रम–ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास की त्रिमूर्ति सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम् भारतीय संस्कृति की समाहरक प्रवृत्ति को अभिव्यक्त करते हैं।

आधुनिकता के पाँच मूल्यों में (1) वैज्ञानिक मनःस्थिति (2) समतावादिता (3) आर्थिक न्याय (4) सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक स्वतंत्रता तथा (5) धर्मनिरपेक्षता स्वयं में स्वतंत्र नहीं हैं बल्कि भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के विस्तार मात्र हैं।

आधुनिकता के इस प्रभाव ने तीन अवांछनीय धारणाओं को जन्म दिया है।

(1) विज्ञान व तकनीकी को मानव व सामाजिक कल्याण के बराबर महत्व देना।

(2) भीमकायता या दिखावे पर मुग्ध होना।

(3) केन्द्रीयकरण (आर्थिक व राजनैतिक)

बुनियादी या प्राथमिक मूल्यों की भी सूची बनायी जा सकती है। अर्थात् गलत होने पर **ह्री** अर्थात् लज्जा आना, **धृति** अर्थात् क्रोध, लालच, अनुराग ईर्ष्या, अनपेक्षित प्रशंसा, निन्दा एवं दुर्वचन का त्याग। **दया** अर्थात् सद्भावना, दान व सहानुभूति, **क्षमा** अर्थात् आत्मानुशासन, **तेज** अर्थात् दूसरों के प्रति आदर भाव, **आर्जव** अर्थात हृदय की पवित्रता, सीधा सच्चापन, सेवाभाव, **अभय** अर्थात् निष्पक्षता व निडरता तथा **त्याग** अर्थात् बिना फल कामना के दूसरों की भलाई करना।

आज समाज में ये मूल्य विदीर्ण हो रहे हैं। यदि आज मानवता को जीवित रखना है तो समाज का सहारा लेकर आने वाले खतरे के प्रति दृढ़ व ठोस कदम उठाने होंगे। **जब सामूहिकता अप्रभावी सिद्ध हो जाए, उस समय व्यक्ति को पूर्ण मनोयोग से अपने आप को आगे लाना चाहिए** (If totality fails individual sould come forward)

लॉर्ड मैकाले का शैक्षिक प्रतिवेदन : एक पूर्वाग्रह पूर्ण विचार

श्री राजेन्द्र कुमार पांडेय
केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली केंद्र

भूमिका

लॉर्ड मैकाले ने 1835 में शिक्षा पर अपना प्रतिवेदन ब्रिटिश सरकार को दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि यदि उनकी संस्तुतियाँ नहीं मानी गई, तो वे समिति की सदस्यता से इस्तीफा दे देंगे। बहरहाल उनका प्रतिवेदन बहुत लंबा है करीब 20 पृष्ठ हैं उसमें, किन्तु वे पक्षपात और पूर्वाग्रह से भरपूर हैं, यहाँ संक्षेप में मैं मैकाले महोदय का प्रतिवेदन प्रस्तुत कर रहा हूँ। उनके प्रतिवेदन का महत्व इसलिए भी है कि वे संस्कृत शिक्षा के परम विरोधी थे।

प्रबुद्ध नागरिक

मैकाले साहब ने लिखा है कि प्रबुद्ध नागरिक वह है जो मिल्टन की कविता का अर्थ जानता हो, लॉक की तत्व मीमांसा को समझता हो, वह नहीं जो मात्र हिंदुओं का पवित्र ग्रन्थ पढ़ा हो, जो कुश के सभी प्रयोगों को जानता हो, और सभी देवताओं से संबंधित रहस्यों को आत्मसात करता हो।

मैकाले के अनुसार फ्रेंच और अंग्रेजी भाषा सभी ज्ञान विज्ञान विषयों के चाभी रहे हैं। वे शासन-पत्र 1813 की धारा को ध्वस्त करना

चाहते हैं। वे कहते हैं कि अरबी, संस्कृत साहित्य को पढ़ने की अपेक्षा अस्पताल बनाए जाएँ। अपितु यह धन मैसूर में बाधों को बचाने में लगे और जनता का पैसा गिरिजाघरों के प्रार्थना में भी न लगे।

अंग्रेजी, संस्कृत और भारतीय भाषाएँ

लॉर्ड मैकाले कहते हैं कि वर्नाकुलर भाषाओं में साहित्यिक और वैज्ञानिक सूचना नहीं मिलती। उनके अनुसार समृद्ध भाषा अंग्रेजी है। अरबी और संस्कृत को मात्र आधे लोग ही समृद्ध भाषा मानते हैं। वे यह भी कहते हैं कि संस्कृत पद्य साहित्य अंग्रेजी के पद्य साहित्य के बराबर नहीं है। शायद उन्होंने संस्कृत के रामायण, महाभारत तथा पुराण ग्रन्थों को एवं वैदिक साहित्य को नहीं देखा होगा। यही नहीं वे यह भी कह देते हैं–

''सभी ऐतिहासिक सूचना जो संस्कृत भाषा की किताबों में एकत्रित है वह इंग्लैंड के प्राराम्भिक स्कूलों के रद्दी सामग्री से भी कम महत्वपूर्ण है। प्रत्येक विभाग में, चाहे नैतिक या भौतिक, दोनों राष्ट्रों की सापेक्ष स्थिति शायद ही एक जैसी हो।''

वे कहते हैं कि अंग्रेजी भाषा में ज्ञान तीन सौ साल से संचित है, इसे उनके पूर्वजों ने संचित किया है जबकि वे भूल गए थे कि जब अंग्रेजों को कपड़े पहनने भी नहीं आते थे, तब भी भारत ज्ञान–परंपरा में समृद्ध था।

वे यहीं नहीं रूकते, वे कहते हैं कि पश्चिमी यूरोप की भाषाओं ने रूस को समृद्ध किया। जबकि रूस के विद्यार्थी कहते हैं कि रूसी साहित्य की तुलना में अंग्रेजी साहित्य नगण्य है। वे एक जगह यह भी कह देते हैं कि वे यूरोप के लोगों की तुलना में हिंदुओं को कमतर मानते हैं।

शिक्षा का भुगतान

वे कहते हैं–''हम अरबी, संस्कृत पढ़ने वालों को भुगतान करते हैं, जो लोग अंग्रेजी सीखते हैं वे हमें भुगतान करते हैं। अक्षर ज्ञान तथा गणित ज्ञान के लिए अध्यापक को भुगतान किया जाता है जबकि हम संस्कृत

लॉर्ड मैकाले का शैक्षिक प्रतिवेदन : एक पूर्वाग्रह पूर्ण विचार

श्री राजेन्द्र कुमार पांडेय
केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली केंद्र

भूमिका

लॉर्ड मैकाले ने 1835 में शिक्षा पर अपना प्रतिवेदन ब्रिटिश सरकार को दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि यदि उनकी संस्तुतियाँ नहीं मानी गई, तो वे समिति की सदस्यता से इस्तीफा दे देंगे। बहरहाल उनका प्रतिवेदन बहुत लंबा है करीब 20 पृष्ठ हैं उसमें, किन्तु वे पक्षपात और पूर्वाग्रह से भरपूर हैं, यहाँ संक्षेप में मैं मैकाले महोदय का प्रतिवेदन प्रस्तुत कर रहा हूँ। उनके प्रतिवेदन का महत्व इसलिए भी है कि वे संस्कृत शिक्षा के परम विरोधी थे।

प्रबुद्ध नागरिक

मैकाले साहब ने लिखा है कि प्रबुद्ध नागरिक वह है जो मिल्टन की कविता का अर्थ जानता हो, लॉक की तत्व मीमांसा को समझता हो, वह नहीं जो मात्र हिंदुओं का पवित्र ग्रन्थ पढ़ा हो, जो कुश के सभी प्रयोगों को जानता हो, और सभी देवताओं से संबंधित रहस्यों को आत्मसात करता हो।

मैकाले के अनुसार फ्रेंच और अंग्रेजी भाषा सभी ज्ञान विज्ञान विषयों के चाभी रहे हैं। वे शासन-पत्र 1813 की धारा को ध्वस्त करना

चाहते हैं। वे कहते हैं कि अरबी, संस्कृत साहित्य को पढ़ने की अपेक्षा अस्पताल बनाए जाएँ। अपितु यह धन मैसूर में बाधों को बचाने में लगे और जनता का पैसा गिरिजाघरों के प्रार्थना में भी न लगे।

अंग्रेजी, संस्कृत और भारतीय भाषाएँ

लॉर्ड मैकाले कहते हैं कि वर्नाकुलर भाषाओं में साहित्यिक और वैज्ञानिक सूचना नहीं मिलती। उनके अनुसार समृद्ध भाषा अंग्रेजी है। अरबी और संस्कृत को मात्र आधे लोग ही समृद्ध भाषा मानते हैं। वे यह भी कहते हैं कि संस्कृत पद्य साहित्य अंग्रेजी के पद्य साहित्य के बराबर नहीं है। शायद उन्होंने संस्कृत के रामायण, महाभारत तथा पुराण ग्रन्थों को एवं वैदिक साहित्य को नहीं देखा होगा। यही नहीं वे यह भी कह देते हैं–

''सभी ऐतिहासिक सूचना जो संस्कृत भाषा की किताबों में एकत्रित है वह इंग्लैंड के प्राराम्भिक स्कूलों के रद्दी सामग्री से भी कम महत्वपूर्ण है। प्रत्येक विभाग में, चाहे नैतिक या भौतिक, दोनों राष्ट्रों की सापेक्ष स्थिति शायद ही एक जैसी हो।''

वे कहते हैं कि अंग्रेजी भाषा में ज्ञान तीन सौ साल से संचित है, इसे उनके पूर्वजों ने संचित किया है जबकि वे भूल गए थे कि जब अंग्रेजों को कपड़े पहनने भी नहीं आते थे, तब भी भारत ज्ञान–परंपरा में समृद्ध था।

वे यहीं नहीं रूकते, वे कहते हैं कि पश्चिमी यूरोप की भाषाओं ने रूस को समृद्ध किया। जबकि रूस के विद्यार्थी कहते हैं कि रूसी साहित्य की तुलना में अंग्रेजी साहित्य नगण्य है। वे एक जगह यह भी कह देते हैं कि वे यूरोप के लोगों की तुलना में हिंदुओं को कमतर मानते हैं।

शिक्षा का भुगतान

वे कहते हैं–''हम अरबी, संस्कृत पढ़ने वालों को भुगतान करते हैं, जो लोग अंग्रेजी सीखते हैं वे हमें भुगतान करते हैं। अक्षर ज्ञान तथा गणित ज्ञान के लिए अध्यापक को भुगतान किया जाता है जबकि हम संस्कृत

सीखने वालों को भुगतान करते है।'' उनका मानना यह प्रबल पूर्वक था कि–'यहाँ के लोगों को सम्पूर्ण रूप से अंग्रेजी भाषा का विद्‌वान बनाया जाए, और कि इस तरफ हमारा प्रयास निश्चित रूप से निदेशित होना चाहिए।

वे मानते थे कि–''हमें ऐसे लोगों का वर्ग तैयार करना चाहिए जो हमारे और करोड़ों लोगों के बीच दुभासिया का काम कर सकें। लोगों का ऐसा वर्ग जो खून और रंग से भारतीय हो, किंतु स्वाद में, विचारों में, नैतिकता और बौद्धिकता में अंग्रेज हो।'

उन्होंने यह भी कहा है–''मैं इस बुरे व्यवस्था के मूल पर प्रहार करूँगा जिसे हमारे द्वारा अभी तक पोषित किया गया है। मैं एक बार अरबी और संस्कृत की किताबों का प्रकाशन रूकवा दूँगा। मैं मदरसा और कोलकाता के संस्कृत कॉलेज को बंद करवा दूँगा। –किसी भी विद्यार्थी का वजीफ़ा नहीं दूँगा। यह राशि फोर्ट विलियम कॉलेज तथा आगरा प्रेसीडेंसी में अंग्रेजी स्कूलों को खोलने में खर्च किया जाएगा।''

संस्कृत और रोजगार

सन् 1835 के परतंत्र भारत के वे प्रशासनिक अधिकारी थे। उन्होंने लिखा है कि उनके समक्ष 12 साल तक संस्कृत शिक्षा ग्रहण किए हुए अध्येताओं के एक वर्ग का आवेदन आया था। जिसमें यह आग्रह किया गया था कि–माई लॉर्ड! हमें आपने अपने धन से बचपन से युवा वर्ग तक पोषित किया है। अब हम पाठशाला से निकल चुके हैं। हमारी शादी हो गई है। हमारे बच्चे भी हैं। किन्तु हमारे पास रोजगार नहीं है। हमारे भरण–पोषण के लिए कुछ करने का कष्ट करें।

निष्कर्ष

उपरोक्त बिदुंओं से यह तथ्य सिद्ध होता है कि मैकाले जी ने संस्कृत शिक्षा पर बहुत बड़ा कुठाराधात किया। उन्होंने कृषि शिक्षा तथा तकनीक पर बहुत अधिक जोर नहीं दिया। भारतीय ज्ञान–सम्पदा का मजाक उड़ाया

और अंग्रेजी शिक्षा को रूसी शिक्षा से भी बेहतर बताया। उन्होंने संस्कृत के व्याकरण-परम्परा तथा काव्य शास्त्र की परम्परा को थोड़ा भी नहीं देखा। लॉक के तत्व मीमांसा की तुलना भारतीय दर्शन ग्रन्थों मीमांसा, न्याय, वेदांत, सांख्य तथा वैशेषिक से की होती तो उन्हें अंग्रेजी ज्ञान-भंडार शून्य दिखाई देता।

मूल्यमीमांसा के संदर्भ में मूल्यों का विश्लेषण

डॉ. ऋषिराज
सहाचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग

मूल्यमीमांसा से तात्पर्य किसी वस्तु में निहित गुणों की मीमांसा से है। जो कि उसे किसी अन्य वस्तु से भिन्न बनाते हैं मूल्य वह गुणों का समुच्चय है, जो कि वस्तु विशेष में निहित होंगे तथा वह वस्तु उस विशिष्ट गुण समूह से पहचानी जायेगी। किसी भी वस्तु के कार्य एवं व्यवहार में उसका मूल्य प्रतिबिम्बित होता है। तथा वह वस्तु अपने यथार्थ स्वरूप का बोध मूल्यों के माध्यम से ही कराती है। मूल्य रूपी धर्म से च्युत लक्षणों में वह वस्तु मूल्य हीन मानी जायेगी।

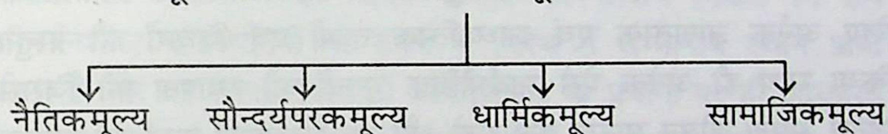
जैसे–अग्नि का मूल्य है-उष्णता एवं जल का गुण धर्म है-शीतलता।

अर्थात् अग्नि के कार्य एवं व्यवहार में उष्णता तथा जल के कार्य एवं व्यवहार में शीतलता परिलक्षित होनी चाहिए और यदि ये तत्व इन गुणों को या इनके प्रभाव को उत्पन्न नहीं करते हैं तो इन्हें क्रमशः अग्नि और जल नहीं कहा जा सकता। अर्थात् अग्नि और जल के रूप में ये वस्तुयें या तत्व मूल्यहीन माने जायेंगे।

मूल्यमीमांसा दर्शनशास्त्र का एक विचारणीय क्षेत्र है। यदि हम इसके विषय में सोचना बन्द कर दें तो इममें से अधिकांश लोग यह मानेंगे कि एक क्षेत्र सत्ता का है और दूसरा क्षेत्र मूल्य का है। हमारे अनुभव में आने वाली वस्तुओं का सत्ता सम्बन्धी पक्ष महत्वपूर्ण है किन्तु हमारा अधिकांश अनुभव इन वस्तुओं से संयुक्त मूल्य से बना हुआ होता है।

पश्चिमी दर्शन के परिवार में मूल्यमीमांसा अन्य शाखाओं की अपेक्षा एक शिशु स्वरूप है यद्यपि इसकी जड़ें प्लेटो, सेंट टामस एक्विनस और स्पिनोजा में विद्यमान है। नीतिशास्त्र या नैतिक शुभ का सिद्धान्त दर्शन के अत्यधिक प्राचीन क्षेत्रों में से एक है और सौन्दर्यशास्त्र रूपी विद्या ने दार्शनिकों का ध्यान आकृष्ट किया है। लेकिन आधुनिक समय पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि इन क्षेत्रों तथा हमारे जीवन के अन्य मूल्य सम्बन्धी क्षेत्रों में व्यापकता एक समान है। मूल्यमीमांसा को आंगल भाषा में एक्सियॉलॉजी कहा जाता है। जिसकी उत्पत्ति एक्सिया नामक लैटिन शब्द से मानी गई है जिसका तात्पर्य है ''समान मूल्य का'' शिक्षा दार्शनिकों ने मूल्यों के विभिन्न प्रकार बतलायें है जो मानव जीवन को परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। ये प्रकार निम्नवत हैं।

मूल्यमीमांसा के सन्दर्भ में मूल्यों के प्रकार



अध्यापक शिक्षा में मूल्यों की उपादेयता

डॉ. शिवदत्त आर्य
(अतिथि व्याख्याता) शिक्षाशास्त्र विभाग

आदिकाल से ही मानव अपने एवं वातावरण सम्बन्धी विकास के लिए सतत् प्रयत्नशील रहा है। मानव विकास में शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत में वैदिक काल से ही शिक्षा के विषय में गम्भीर चिन्तन की परम्परा रही है। ऋषि-मुनियों ने मानव जीवन के विकास के लिए अनेक ज्ञानात्मक एवं आध्यात्मिक तथ्यों एवं विचारों को प्रस्तुत किया साथ ही अनेक ऐसे सार्वभौमिक मूल्यों की स्थापना की जिससे मानव अपना जीवन सफल बना सके और इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने में शिक्षक को मुख्यता प्रदान की है। एक योग्य शिक्षक ही इस महान कार्य को पूर्ण कर सकता है अत: यह आवश्यक हो गया है कि अध्यापक शिक्षा भी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में मूल्यों से युक्त हो तथा समुचित प्रकार से संचालित हो। मूल्ययुक्त शिक्षक के प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष व्यवहार से ही, ज्ञान प्रदान करने से छात्र अनुकरण के माध्यम से मूल्ययुक्त व्यवहार का प्रत्यक्षीकरण करते है एवं शिक्षा ग्रहण करते हैं। इससे प्रेरित होकर छात्र स्वविकास में संलग्न होते हैं, अनेक क्षमताओं एवं योग्यताओं से युक्त होकर सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास में अपना सकारात्मक सहयोग प्रदान करते हैं।

मूल्यों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र एवं स्तर के संदर्भ के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है जिनका विस्तार शारीरिक से लेकर, धार्मिक, नैतिक,

आध्यात्मिक तथा सौन्दर्यात्मक तक होने लगा है। मुख्यतया मूल्य से तात्पर्य धर्म व चरित्र से है जिसकी अध्यापक शिक्षा में महती आवश्यकता है क्योंकि अध्यापक को राष्ट्र निर्माण का प्रमुख कार्य सौपा गया है। अध्यापक को गुरू पद पर भी आसीन किया गया है। 'गु' अक्षर अन्धकार तथा 'रु' अक्षर प्रकाश हेतु है। जो अपने शिष्य की बुद्धि का अन्धकार हरकर उसके अन्दर विद्या का प्रकाश भरे-वह गुरु कहलाता है। वह सच्चे मायने में निर्माता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश के तुल्य है। शास्त्र में उसकी स्तुति इन शब्दों में की गई है-

'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

शिक्षा समाज, राष्ट्र और विश्व की प्रगति का प्रतिबिम्ब होती है। शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है और शिक्षा, शिक्षार्थी और शिक्षक की परिधि में ही मानव समाज का उत्कर्ष निहित है। हमें परिवर्तनशील परिस्थितियों के संदर्भ में विश्व में सम्मानीय स्थान प्राप्त करना है और यह शिक्षा, शिक्षार्थी और शिक्षक के प्रयत्नों पर ही आधारित है। आज का युग संक्रमण काल है हमें सर्वत्र मूल्यों का ह्रास होते दिख रहा है। मूल्यों के प्रति सोच में बदलाव आया है शिक्षा ग्रहण एवं प्रयोग में धर्म व चरित्र उत्थान के प्रति अभिरुचि अभिलक्षित नहीं होती है। कुशल प्रशिक्षण से युक्त शिक्षक ही शिष्यों के अन्तर्गत विभिन्न मूल्यों का विकास करने में सक्षम हो सकता है। दु:ख का विषय यह है कि सेवापूर्व शिक्षकों तथा सेवारत शिक्षकों में विभिन्न मूल्यों के प्रति अभिरुचि एवं सकारात्मक दृष्टिकोण परिलक्षित नहीं होता है। जिसका दुष्प्रभाव हमारी भावी पीढ़ी पर पड़ रहा है तथा छात्र एवं राष्ट्र का विकास निरन्तर अधोगति की ओर जा रहा है।

अध्यापक शिक्षा में मूल्य विकास हेतु अपेक्षणीय कार्य-

➢ मूल्ययुक्त शिक्षक ही मूल्ययुक्त शिक्षा प्रदान करने में सक्षम हो सकता है तथा सामाजिक व्यवस्था तथा शिक्षण प्रणाली को

सुचारू रूप से चलाने में अहम भूमिका निभा सकता है।

- उचित प्रशिक्षण से युक्त शिक्षक विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं वैश्विक समस्याओं के समाधान हेतु आधारभूत संरचनाओं को स्पष्ट करने में सक्षम हो सकता है।
- स्वविषयगत मूल्यों एवं आदर्शों का सृजन कर शिक्षण कराना।
- उचित प्रशिक्षण से युक्त शिक्षक, छात्र को विवेकशील एवं आदर्श नागरिक बनाने में दक्ष हो सकता है।
- शिक्षक आदर्श होते हैं तथा छात्र अनुकरण के माध्यम से अधिक सीखते है अतः मूल्यों के सृजन के लिए सर्वप्रथम शिक्षकों को इन मूल्यों को सर्वप्रथम अपने जीवन में उतारना होगा।
- शिक्षक विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय में पाठ्यसहगामी क्रियायें जैसे–खेल–कूद, समाज–सेवा, राष्ट्रीय सेवा योजना, राष्ट्रीय कैडेट कोर, युवा उत्सव, राष्ट्रीय तथा सभी धर्मों के उत्सवों आदि कार्यक्रमों को उत्साह से आयोजित करे तथा छात्रों के विकास एवं संवर्धन में सतत सहायता करे।
- मूल्यपरक अध्यापक शिक्षण–प्रशिक्षण से शिक्षक के अन्तर्गत आत्मबल, आत्मसंयम, आत्मविश्वास, आत्मसन्तुष्टि, त्याग, आत्मसंतुलन, उदारता, सहिष्णुता, विनम्रता, सदाचार, सद्भाव, परिश्रमी प्रवृत्ति इत्यादि व्यक्तिगत गुणों का विकास होता है तथा वह इन गुणों से युक्त होकर समाज संरचना एवं संस्कृति की निर्बाध्य गति के विकास में सहायता प्रदान करता है।
- शिक्षा प्रणाली एवं समाज में विभिन्न प्रकार के मूल्यों जैसे शाश्वत मूल्य, व्यक्तिनिष्ठ मूल्य, नैमित्तिक मूल्य, तात्कालिक मूल्य, नैतिक मूल्यों की स्थापना में सहायता प्रदान में तत्पर हो।

- ➢ औपचारिक शिक्षण की अपेक्षा सर्वत्र सुसंस्कृत वातावरण का विकास करने की आवश्यकता।
- ➢ शिक्षा के उद्देश्य पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां सभी मूल्यों को ध्यान में रखकर विकसित हो।
- ➢ पाश्चात्य पद्धति का अन्धानुकरण भारतीय परिवेश में न हो।
- ➢ लोकतान्त्रिक तरीके से अपने अधिकारों का प्रयोग करना।
- ➢ भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक आस्थाओं, सहिष्णुता, समन्वयवाद, वसुधैव कुटुम्बकम्, नारी के प्रति सम्मान, अहिंसात्मक प्रवृत्ति, पर्यावरणीय संरक्षण के प्रति सदैव सजग रहना तथा दूसरों को प्रेरित करना।
- ➢ कम्प्यूटर युग होने के कारण कम्प्यूटर का प्रायोगिक ज्ञान तथा विभिन्न संचार माध्यमों का प्रयोग मूल्ययुक्त शिक्षा के अन्तर्गत समुचित रूप से उपयोग लाने में दक्ष बनाना।
- ➢ अनुसन्धानात्मक एवं दूर दृष्टिकोण से युक्त अभिवृत्ति का विकास करना।
- ➢ उपभोक्तावादी संस्कृति से सजग रहने हेतु प्रेरित करना।
- ➢ शिक्षकों को आदर्श शिक्षक (रोल मॉडल) बनने के लिए प्रेरित करना।
- ➢ व्यक्तिगत प्रयास अत्यावश्यक।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में इस बात की आवश्यकता है कि हम भारतीय सभी धर्मों, सम्प्रदायों की नैतिक शिक्षाओं तथा सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश अनिवार्यतः स्कूल, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में करें और उन पर शोध विषयक कार्य निष्पक्षता से करने का प्रोत्साहन की व्यवस्था सुनिश्चित की जाए जिसके माध्यम से हमारी नई पीढ़ी भारतीय चिन्तकों का अनुसरण कर संस्कारित

होती रहे। साथ ही नीर-क्षीर विवेक की सामर्थ्य से संकल्ति रहे जिससे सम्प्रदायवाद, अलगाववाद आदि के घेरे से बाहर आकर मूल्यों के तात्विक स्वरूप से अवगत हो सके। यहां यह ध्यातव्य है कि कोरे उपदेश उपदेश छात्रों पर प्रभाव डालने में समर्थ नहीं होंगे। इसके लिए परमावश्यक है कि शिक्षक स्वयं इन गुणों से संकल्पित हों, जिन्हें वे छात्रों में संचारित करना चाहते हैं।

संदर्भ

1. डागर, बी.एस., शिक्षा तथा मानव मूल्य, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़
2. दुबे, श्यामचरण, समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. मिश्र, प्रो. भास्कर, शिक्षा एवं संस्कृति; नये सन्दर्भ, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 1995
4. समाज में मूल्यों का परिवर्तमान परिदृश्य एवं उच्च शिक्षा, सम्पादक-डॉ. सुषमा श्रीवास्तव एवं डॉ. विनीता अग्रवाल, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्श, नई दिल्ली, 2008
5. सक्सेना, डॉ. सरोज, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा, 2007

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य शिक्षा

डॉ. नवल ठाकुर
अतिथि व्याख्याता

समाज विज्ञान या दर्शनशास्त्र में 'मूल्य' शब्द का अर्थ किसी भी तरह से स्पष्ट नहीं किया गया है। वास्तव में मूल्य मानव अस्तित्व में किसी महत्वपूर्ण चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं। मनुष्य जीवन पर्यन्त कुछ न कुछ सीखता ही रहता है जो उसके अनुभव में निरन्तर वृद्धि करता है। ये अनुभव ही व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करते हैं। ये निर्देशक जीवन को दिशा प्रदान करते हैं तथा इन्हें मूल्य कहा जा सकता है। मूल्य किसी वस्तु या स्थिति का वह गुण है जो समालोचना व वरीयता प्रकट करता है। यह एक आदर्श या इच्छा है जिसे पूरा करने के लिए व्यक्ति निरन्तर एवं आजीवन प्रयास करता है।

सी.वी. गुड के अनुसार–मूल्य वह चारित्रिक विशेषता है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सौन्दर्यबोध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। लगभग सभी विचार मूल्यों के अभीष्ट चरित्र को स्वीकार करते हैं।

ओक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोश में 'मूल्य' को महत्ता, उपयोगिता, वांछनीयता तथा उन गुणों जिन पर ये निर्भर है, के रूप में परिभाषित किया गया है।

मिल्टन का मानना है कि जीवन मूल्य ओंस की बूंदों के सदृश नहीं है जो मौसम के अनुसार दिखाई दें। इनकी जड़ें प्रत्येक प्राणी में बहुत

गहरी होती है तथा इनका वास्तविकता से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

आलपोर्ट के अनुसार–'मूल्य एक मानव विश्वास है जिसके आधार पर मनुष्य वरीयता प्रदान करते हुए कार्य करता है। जैक आर. फ्रैंकल का मत है कि मूल्य आचार, सौन्दर्य, कुशलता या महत्त्व के वे मानदण्ड हैं जिनका लोग समर्थन करते हैं जिनके साथ वे जीते हैं तथा जिन्हें वे कायम रखते हैं।

आर.के. मुखर्जी ने मूल्यों को सामाजिक दृष्टि से स्वीकार्य उन इच्छाओं तथा लक्ष्यों के रूप में परिभाषित किया है जिन्हें अनुबन्धन, अधिगम या सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा आभ्यन्तरीकृत किया जाता है तथा जो आत्मनिष्ठ प्राथमिकताओं, मानकों तथा आकांक्षाओं का रूप में ग्रहण कर लेती है।

1951 के अमेरीकी शैक्षिक नीति आयोग ने पब्लिक स्कूलों के लिए कुछ मूल्य निर्धारित किये थे, जैसे–मानव व्यक्तित्व के प्रति आदर, व्यक्ति की नैतिक जिम्मेदारी, संस्थाओं का व्यक्ति के अधीन होना, सामान्य सहमति, सत्यनिष्ठा, समानता, भ्रातृत्व, आनन्द की खोज, आध्यात्मिक संवर्धन, श्रेष्ठता के लिए आदर।

मो. माजिद अली खान (1986) के अनुसार–इस्लाम में भी मानव जाति के लिए शान्ति, विनम्रता, शालीनता, न्याय, दृढ़ता, साहस, वीरता आदि मूल्यों के शिक्षण पर बल दिया गया है।श्री सत्य साँईबाबा ने मूल्य शिक्षा के अपने कार्यक्रम में पाँच मूल्यों पर बल दिया है–सत्य, धर्म, शान्ति, प्रेम तथा अहिंसा। इनके अन्दर समाहित अन्य मूल्य ये हैं–मानव सेवा,सहयोग, स्वच्छता, प्रार्थना, सादा जीवन व उच्च विचार आदि।

रामकृष्ण मिशन संस्थाएं भी पूरे देश में मूल्यों की शिक्षा देने के कार्यक्रमों को चलाने में रुचि लेती हैं। इनमें समाज-सेवा, सार्वभौमिक भाईचारा, तार्किक नैतिक संहिता तथा मानव व्यक्तित्व के विकास पर बल देती है।

चिन्मयानन्द मिशन सत्य, सही आचरण, शान्ति तथा प्रेम के सार्वभौमिक मूल्यों पर बल देती है।

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा निदेशालय, बीकानेर (राजस्थान) ने भी पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रमों में 32 जीवन मूल्यों के प्रतिबिम्बित होने को जरूरी बताया है।

भारतीय संस्कृति के स्तम्भ वेदों में भी अनेक मूल्यों का वर्णन प्राप्त होता है, जैसे–आत्मानुशासन, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, शुचिता, तप, आध्यात्मिकता, क्षमा, करुणा, इन्द्रियों पर नियन्त्रण, स्वाध्याय इत्यादि।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली ने शिक्षा में सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की संख्या 83 मानी है, जिसको उन्होंने 5 शाश्वत् मूल्यों में समाहित किया है–

(1) सदाचरण सम्बन्धी

(2) सत्य सम्बन्धी मूल्य

(3) शान्ति सम्बन्धी मूल्य

(4) प्रेम सम्बन्धी मूल्य

(5) अहिंसा सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक मूल्य

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में उल्लिखित है कि हमारा समाज सांस्कृतिक दृष्टि से बहुलवादी है तथा शिक्षा द्वारा ऐसे सार्वभौमिक व शाश्वत मूल्यों का विकास किया जाना चाहिए जो हमारे लोगों की एकता व उनके समाकलन की ओर अभिमुख हों।

आज समाज में चारों तरफ नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों में गिरावट देखने को मिलती है। इस गिरावट के फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में भी गिरावट देखने को मिलता है जिससे शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासनहीनता, श्रम के प्रति अनास्था, स्वकर्तव्य के

प्रति उदासीनता, अनुत्तरदायित्व इत्यादि देखने को मिल रहा है।

शिक्षा आयोग (1964-66) ने भी अपने प्रतिवेदन में कहा था-"विद्यालय शिक्षा कार्यक्रम में एक गम्भीर दोष यह है कि उसमें सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा की व्यवस्था की कमी है। आयोग ने सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा प्रदान करने के लिए सचेष्ट तथा व्यवस्थित प्रयत्न करने की आवश्यकता पर भी बल दिया था। मूल्यपरक शिक्षा विद्यालय में तभी सफल हो सकता है, जब अध्यापकों में इस प्रकार की योग्यता एवं क्षमता होनी चाहिए जो छात्रों में विभिन्न मूल्यों का विकास कर सके, क्योंकि शिक्षक ही आने वाली पीढ़ियों में सरलता से मूल्यों का विकास कर सकता है। शिक्षक ही छात्रों में मूल्यों का विकास करके एक आदर्श व्यक्ति एवं नागरिक का निर्माण करके आदर्श समाज तथा राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है।

मूल्य शिक्षा सम्बन्धी प्रत्येक योजना का सफल क्रियान्वयन शिक्षकों के वैयक्तिक व्यवहार, शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं व कार्यनिष्ठा पर निर्भर करता है। अपने शिष्यों के कल्याण के लिए पूर्णतः कटिबद्ध, परिश्रमी व सृजनशील शिक्षकों ने शिक्षा प्रणाली में व्याप्त असन्तोष व नगण्य लाभों के बावजूद अपने दायित्वों को समर्पण भाव से निभाया है। किन्तु आधुनिक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम भावी शिक्षकों में शिक्षक प्रवीणता, उपयुक्त, अभिवृत्तियाँ, कार्यमूल्य व मानवीय मूल्य विकसित करने में असफल रहते हैं। वर्तमान अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम प्रायः नीरस, परम्परागत, जड़वत, निष्प्राण व सृजनात्मकता की क्षमता विकास करने में सक्षम नहीं है। प्रशिक्षकों के मशीन सदृश व्यवहार, अमनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, अध्ययन विमुखता, नवाचार अपनाने से बचने की प्रवृत्ति, निम्नस्तरीय अभिप्रेरणा व परम्परावादिता ने मानव-मूल्यों के विकास को बाधित किया है। शिक्षण-प्रशिक्षण की अवधि में मूल्यों से व अपनी संस्कृति से परिचित होना होगा, मूल्यों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता विकसित करनी होगी तथा मूल्यों के शिक्षण हेतु निश्चित शिक्षण संव्यूहन खोजने होंगे। सुयोग्य भावी

शिक्षक तैयार करने का दायित्व शिक्षक, शिक्षा संस्थानों/विभागों का है व भावी शिक्षकों की तैयारी के समय मूल्यपरक शिक्षा के सैद्धान्तिक, क्रियात्मक व शोध पक्ष पर विशेष ध्यान देना अपेक्षित है। नई राष्ट्रीय शिक्षा-नीति (1986) में चुनी हुई प्रशिक्षण-संस्थाओं को जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET), शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय (CTE) तथा शिक्षा में उच्च अध्ययन संस्थान (IASE) को विकसित करने की बात कही गई थी। किन्तु इस दिशा में धीमी गति से कार्य हो रहा है।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के माध्यम से छात्राध्यापक में विभिन्न मूल्यों एवं मूल्यपरक शिक्षा का विकास करने के लिए अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है–

1. **शिक्षा दर्शन व मूल्य**–इसके अन्तर्गत दार्शनिक विचार भारतीय एवं पाश्चात्य के सन्दर्भ में, मानव जीवन के उद्देश्य, यूनेस्को के आदर्श व संस्तुतियाँ, अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध, शान्ति तथा मानवाधिकारों के लिए शिक्षा, मूल्यों का दर्शन, मूल्यों की परिभाषा, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्य, सौन्दर्यपरक तथा सांवेगिक मूल्य, बौद्धिक तथा भौतिक संस्कृति के मूल्य, स्वतन्त्रता समानता, भ्रातृत्व के आदर्श, भारतीय मूल्यों का दर्शन इत्यादि।

2. **शिक्षा मनोविज्ञान तथा मूल्य**–व्यक्ति का व्यक्तित्व, व्यक्तित्व का विकास-अहं, स्मृति व स्व: भारतीय व पाश्चात्य विचार धाराएँ, अस्तित्व के तल व भाग-अचेतन, अवचेतन, भौतिक, तार्किक, अनिवार्य, सौन्दर्यपरक, नीतिपरक, मनो-आध्यात्मिक।

3. **अनुसंधान व मूल्य**–इसमें छात्राध्यापकों को अनुसंधान के माध्यम से तार्किकता, क्रमबद्धता, वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता आदि मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

4. **शैक्षिक प्रौद्योगिकी व मूल्य**–शैक्षिक प्रौद्योगिकी के माध्यम

से भी छात्राध्यापक में विभिन्न मूल्यों का विकास करके मूल्यपरक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है। विभिन्न व्यूह रचना के माध्यम से भी मूल्यों का विकास छात्रों एवं अध्यापकों में किया जा सकता है। जैसे–

(1) **न्यायिक शिक्षण प्रतिमान**–क्रमबद्ध ढंग से चिन्तन करने की प्रक्रिया इस प्रतिमान के माध्यम से शिक्षकों में विकसित किया जा सकता है। प्रभावी–वाद–विवाद, सामाजिक आवेष्ठन, सामाजिक नीति सम्बन्धी निर्णय लेते समय संवेग पर बुद्धि की विजय तथा मूल्यों के विकास में यह शिक्षण–प्रतिमान उल्लेखनीय भूमिका निभा सकता है।

(2) **भूमिका निर्वहन शिक्षण प्रतिमान**–इस प्रतिमान के माध्यम से शोषित, अल्पसंख्यक, आतंकवादी, प्रशासक, नेता, अध्यापक, चिकित्सक, समाजसेवक इत्यादि में भूमिका निर्वहन शिक्षण प्रतिमान का प्रयोग करके विभिन्न मूल्यों को विकसित किया जा सकता है।

(3) **अनुरूपीकरण शिक्षण प्रतिमान**–अनुरूपीकरण एक गतिशील व समस्या आधारित विधि है जो कक्षा में क्रियात्मकता का माध्यम है। इस प्रतिमान के द्वारा भी शिक्षकों में सामाजिक तथा शिक्षण कौशलों को विकसित करने के साथ–साथ कार्य मूल्यों तथा सामाजिक वैयक्तिक, सौन्दर्यबोधक, राजनीतिक, धार्मिक आदि विभिन्न मूल्यों को विकसित कर सकते हैं।

(4) **मूल्य स्पष्टीकरण प्रतिमान**–अनुक्रिया संव्यूहन शिक्षक के द्वारा विद्यार्थी के प्रति अनुक्रिया करने का एक ऐसा तरीका है जो उसे स्वयं चयनित, स्वयं महत्त्व कही गई बातों पर विचार करने का अवसर देता है। यह अपने चिन्तन तथा

व्यवहार को स्पष्ट करने हेतु व्यक्ति को उत्साहित करती है तथा ऐसा करते समय व्यक्ति अपने मूल्यों का स्पष्टीकरण करता है।

(5) **कहानी प्रस्तुतीकरण विधि**—भाषा शिक्षकों के लिए यह विधि बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि भाषा पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत पढ़ाई जाने वाली कहानियों के माध्यम से भी विद्यार्थियों के मूल्यों का विकास किया जा सकता है। अत: प्रशिक्षित अध्यापक को इस विधि का सम्यक् प्रशिक्षण देना चाहिए।

(6) **मूल्य-विश्लेषण शिक्षण-प्रतिमान**—विद्यार्थियों के नैतिक तर्क तथा किसी मूल्य स्थिति के विश्लेषण व चयनित निष्कर्षों तक पहुँचने में विद्यार्थी की सहायता करने के लिए एक प्रणाली प्रस्तावित की है। इसमें दुविधा, मूल्य द्वन्द्व का स्पष्टीकरण, तथ्यों के लिए पूछना, कल्पनीय विकल्पों के लिए पूछना, प्रत्येक विकल्प के सम्भव परिणाम पूछना, परिणामघटित होने की सम्भावना के समर्थन के प्रमाण-पूछना, परिणामों का मूल्यांकन, सर्वोत्तम विकल्प के निर्णय व उसके कारण के लिए पूछना।

(7) **योग**—मनुष्य को एक दिव्य प्राणी माना जा सकता है, जो अज्ञानता के कारण अपने वास्तविक दिव्य स्वभाव की अनुभूति नहीं कर पाता है। मूल्यपरक शिक्षा व्यक्ति को उसकी दिव्य गुण सम्पदा तथा दिव्य मूल्यों की अनुभूति करवाती है। महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग प्रतिपादित किया है। इसके आठ अंग ये हैं—यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान तथा समाधि।

मूल्यपरक शिक्षण हेतु आवश्यक शिक्षण कौशल

अध्यापक शिक्षा के प्रायोगिक कार्य को कराते समय निम्न शिक्षण

कौशल को विकसित करने का प्रयत्न भी करना चाहिए, जिससे मूल्ययुक्त शिक्षकों का निर्माण किया जा सके। यथा–

- सामाजिक–जीवन में उभरने वाली समस्याओं के तत्वों को समाकलित कर, नीतिपरक संरचना से संश्लेषित करके समाधान करना।
- विरोधी मूल्यों की पहचान करना।
- विविध परिस्थितियों में एक ही मूल्य के महत्व की जाँच करना।
- मूल्य स्थिति की आधारीय तथ्यात्मक अवधारणाओं की जाँच करना।
- तर्क करना, विचार सम्प्रेषण, मूल्य विश्लेषण, मूल्य स्पष्टीकरण।
- शिक्षण के दौरान विरोधी सुझाव प्रस्तुत करना एवं विद्यार्थियों की अनुक्रियाएँ प्राप्त करना।
- मूल्यों से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्र करना।
- मूर्त परिस्थितियों और अमूर्त विचारों में निहित मूल्य छाँटना।
- मूल्यों की जाँच हेतु परीक्षण–उपकरण तैयार करना।
- मूल्यों का मापन करना।
- मूल्य सूचना चार्ट व मूल्य विश्लेषण चार्ट का प्रयोग करना।
- मूल्य संकट प्रदर्शित करने वाले दृश्य–श्रव्य साधनों का चयन करना व उन्हें प्रदर्शित करने के लिए शैक्षिक प्रौद्योगिकी साधनों का प्रयोग करना।
- कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ मूल्यों का अनुसरण करने के लिए विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करना।

- मूल्य निर्णयों में वांछित परिवर्तनों के लिए विद्यार्थियों को मनाना।

इन विभिन्न अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के माध्यम से अध्यापकों में विभिन्न गुणों का विकास करके, कुशल व दक्ष अध्यापक का निर्माण किया जा सकता है।

संदर्भ

1. पाण्डेय, रामशकल-मूल्य शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, 1997-98
2. N.C.E.R.T. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005, 2009
3. Govt. of INDIA, Ministry of Education and Culture-Report of the working Group to Review Teachers Training Programme-1983
4. रोकेच, एम., मानव मूल्य की प्रकृति, न्यूयार्क-1973
5. चतुर्वेदी, रश्मि-मूल्य शिक्षा, ए.पी.एच., पब्लिशिंग, कारपोरेशन, नई दिल्ली-2011

वर्तमान परिप्रेक्ष्य : शिक्षा मूल्य निर्धारण

डॉ. रामचन्द्र शर्मा
सहायकाचार्य न्याय वैशेषिक

जीवन बहुमूल्य एवं अत्यल्प है। अत्यल्पकाल में समग्र जीवनविधेयो का निर्धारण करना है। पुरुषार्थ सिद्धि ही वस्तुतः जीवन विधेय है। स्वभाव प्राप्त ब्रह्मषार्थ "अर्थ" एवं "काम" ही हैं, अतः सहजतया मानव इनकी सिद्धि के साधनानुष्ठान में प्रवृत्त होता है। तदनुरूप ही ज्ञान प्राप्ति करने एवं कराने के लिए मूल्यों का निर्धारण करता है।

प्रश्न है कि मूल्य क्या है? क्या स्वाभाविक इन्द्रिय भोग योग्यता ही मूल्य है? अथवा इससे भिन्न किसी अवधारणा को "मूल्य" की संज्ञा दी जाए प्रथमतः प्रथमपक्ष ही ग्राह्यतया उपस्थित होता है। प्राणिमात्र स्वभाव प्राप्त भोग साधनों में प्रवृत्त है। इन्द्रिय विषय संयोग जन्य संवेदनाओं द्वारा अनुकूल वेदनीयता अनुभव एवं प्रतिकूल वेदनीयता का निराकरण चेतन के स्वभाव का धर्म है। अतः वस्तुमूल्य उसकी इच्छा विषयता पर निर्धारित होता है, जो वस्तु जिसे अच्छी लगती है, वह उसके लिए मूल्यवान् हो जाती है। बाह्य वृत्तियों द्वारा मनोरंजन एवं भोग प्राथमिक जीवन लक्ष्य प्रतीत होता है। यह चेतना का स्वाभाविक पशु–साधारण प्रवाह है। जैसा कि नीतिशास्त्र कहता है–

"आहारन्द्रिाभयमैथुनञ्य सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मों हितेषामाधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिः सामानाः।"[1]

(हितोपशदेशः)

---

1. हितोपदेशः

अत एवं 'अर्थ काम' के अतिरिक्त "धर्म नामक तत्व" भी अवश्य स्वीकरणीय है, जो मानवता आधान का हेतु है। उसके बिना वस्तुतः "मानवता" का कोई पृथक् "अस्तित्व" एवं निर्धारण नहीं हो सकता पशु प्रकृति में जीता है, प्रकृतिनियन्त्रित होता हुआ वह प्रकृति विरुद्ध कोई भी आचरण नहीं करता किन्तु मानव पशुधर्मों को धारण करता हुआ भी स्वभाव प्राप्त अतिरिक्त बुद्धि वैभव सम्पन्न होने के कारण "प्रकृति-नियन्त्रण" एवं "अतिक्रमण" की ओर प्रवृत्त होता हुआ प्रकृति विरुद्ध आचरण की ओर अभिमुख होता है तथा बाह्य भोगों की पृष्ठभूमि में ही मानवीय मूल्यों को निर्धारण करते हुए जीवन विधेयों का निर्धारण करता है एवं तदनुकूल ही "शिक्षा-नीति" का निर्धारण करता हुआ "समाज-व्यवस्था" का स्वरूप निश्चित करता है। इस प्रकार "अर्थ काम" की सम्पूर्त्ति हेतु वह प्रकृति-विरुद्ध इस प्रकार की संस्थाओं के निर्माण में जुट जाता है जो वर्तमानोपभोगानुकूल व्यापार व्यवस्था के रूप आपात रमणीय प्रतीत होती हुई समाज को आकर्षित करती है। फलतः एक ऐसी सामाजिक-व्यवस्था का निर्माण होता है जो तात्कालिक सुखाभास का हेतु होती है किन्तु प्रकृति विरुद्ध आचरण होने के कारण व्यष्टि एवं समष्टि दोनों प्रकार प्रकृतियों में विकृति उत्पन्न करती हुई दीर्घकालिक सामाजिक-पतन का होती हुई मानवता की विघातक होती है, जैसा कि वर्तमान-परिप्रेक्ष्य में सामाजिक चारित्रिक पतन के रूप में दृष्टि गोचर हो रहा है, अत एव आर्ष परम्परा ने "धर्म" को एक व्यावहारिक प्रक्रिया मात्र न कहकर पुरुषार्थ के रूप में सम्प्रतिष्ठित किया! जो मानवता के शाश्वत जीवनमूल्यों समाज में प्रतिष्ठा कराता हुआ मानतवा शाश्वत सौन्दर्य एवं उत्कर्ष का हेतु होता है।

धर्म क्या है? इस प्रश्न उत्तर में "महर्षि "कणाद" सूत्रित करते हैं–" यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः" (वैशेषिक दर्शन-1/1/2) अर्थात् जिस सार्वभौमिक क्रिया व्यापार के द्वारा 'व्यष्टि" एवं "समष्टि" दोनों का अभ्युदय एवं 'निःश्रेयस" सिद्धि हो वही "धर्म" है। महाभारत भी कहता है–

"धारणाद्धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।

यत्स्याद्धारण संयुक्तं स धर्म इति कीर्त्तितः।"[1]

धारणीय धर्मों का निर्देश करते हुए मनु कहते है–

"धृतिः क्षमा तपोऽस्त्येयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।[2]

धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।"

ये सभी वे सार्वभौतिक मानव मूल्य हैं, जो समग्र मानवता को धारण **करते** हुए समस्त लोक मङ्गल के हेतु है। प्राणीमात्र के कल्याण चिन्तन की **दृष्टि** का नाम ही धर्म हैं। अत एव कहा गया–

"श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत।।[3]

इस प्रकार "धर्म" ही एक ऐसा तत्त्व है जो मानवता की समस्त विकृतियों को दूर करता हुआ समग्र सृष्टि के "उत्कर्ष" एवं "सौख्य" का हेतु होता है।

"निःश्रेयस" अर्थात् "सर्वदुःखो की आत्मन्तिक" ही जीवन का परम पुरुषार्थ है। जैसा कि महर्षि कपिल कहते है–

"त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः"[4]

वह पदार्थतत्त्व ज्ञानाधीन है। अज्ञान के कारण "प्रकृतिबन्ध" है, अत एव त्रिविधदुःखों की प्रसक्ति है, "ज्ञान" के द्वारा "प्रकृतितत्त्वविज्ञान पूर्वक आत्मतत्त्व ज्ञान के द्वारा ही आत्यान्तिक दुःख निवृत्ति पूर्वक निश्रेयस या "मोक्ष" की प्राप्ति होती है, ऐसा अभी वैदिक दर्शन उद्घोष करते है। अत एव श्रुति प्राधान्येन "आत्मज्ञान" के लिए ही प्रेरित करती है–

1. वैशेषिक दर्शन
2. महाभारतम्
3. मनुस्मृतिः
4. बृहदारण्यकोपनिषद्

''आत्मा वा अरे वा द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यः निदिध्यास्तिव्यः।''
आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रुत्या मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।''1

आत्मज्ञान ही समग्र जीवन दर्शन का केन्द्र है, अतः ''भारतीय शिक्षा दर्शन'' उसी को आधार बना कर शिक्षा नीति का निर्धारण करता है जिससे जुड़कर समग्रसार्वभौमिक-मानवमूल्य शिक्षा स्वतः सन्निविष्ट हो जाते हैं। फलतः चेतन का विकास चारित्रिक पृष्ठभूमि में ही किया जाता है, चरित्र निर्माण शिक्षा का केन्द्र है जो परिपक्व होकर ''विद्या'' रूप में परिणत होता हुआ समग्र जीवन बोध एवं आनन्द के प्रति हेतु होता है। ''आनन्द-बोध'' ही वस्तुतः पुरुषार्थ सिद्धि है, वह कुत्सित कामोपभोग न होकर समग्र-प्रकृति में एक साथ उत्पन्न होने सहज आनन्द बोध है, जहाँ सभी एकात्मभाव प्राप्त होते हुए परस्पर भावना की प्रक्रिया में बँधकर लौकिक एवं पारलौकिक उभय आनन्द को प्राप्त करता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य विज्ञानाविष्कारों की चकाचौंध में जीवन एक अन्धी दौड़ के रूप में प्रतीयमान है, जहाँ व्यक्ति बाल्यकाल्य अर्थ को ही जीवन-सर्वस्व मानता हुआ अर्थार्जन सम्बन्धी शिक्षा को प्रधान लक्ष्य मानकर अध्ययन के लिए प्रस्तुत है, अतः मूल्यहीनता आना स्वाभाविक है। इसी दौड़ में अध्यापक वर्ग भी केवल व्यावसायिक स्तर ही अध्यापन को लक्ष्य बनाकर प्रवर्त्तमान है, जिससे कर्त्तव्य बोध से विमुख होकर वह तादात्म्य भाव से विद्या सङक्रान्ति के प्रति आग्रहवान नहीं है फलतः शिक्षणेतर गतिविधियों का तो बाहुल्य है, किन्तु शिक्षा का मूल उद्देश्य जो कि चरित्र निर्माण है पूर्ण नहीं हो पा रहा है।

अतः आज हमें पुनः आत्ममन्थन की आवश्यकता है, जिसके द्वारा समसामयिक परिप्रेक्ष्य में बाल्य-काल से समग्रमानवीय मूल्यों से युक्त नैतिक एव चारित्रिक शिक्षा पर बल देना चाहिए, जिससे समग्रमानवता का उत्थान हो सके।

इतिशम्!

अध्यापक शिक्षा में मूल्य मीमांसा

डॉ. राजीव सेठी
टी.जी.टी. संस्कृत

शिक्षा एक शुद्ध गंगा है जो जल के समान मनुष्य को पवित्र करती है। जब तक समाज में शुद्धता नहीं आती है तब तक शिक्षा का उद्देश्य पूरा नही होता है, तथा लक्ष्य प्राप्ति असम्भव होती है। उस शुद्धता का नायक अध्यापक होता है। नायक के विना फिल्म की कल्पना असम्भव है, उसी प्रकार शिक्षा में अध्यापक का अभाव शिक्षा की सर्वथा अपूर्णता है। वर्तमान में शिक्षा का विकास तथा अध्यापकों का निर्माण दोनों ही कार्यो में हमने महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है। प्रशिक्षित अध्यापक तथा व्यवस्थित शिक्षा को समाज के लिए उपलब्ध कराने में शिक्षाविद् तथा सरकार ने प्रगति की है। यह सब हमारे लिए हर्ष का विषय है। मगर समाज में शिक्षा का गिरता मूल्य भी हमारे लिए उतना ही चिन्तनीय बना हुआ है। हमने एक पक्ष में जितनी तेजी से उन्नति की है, उतनी ही शिक्षा में मूल्य मीमांसा का ह्रास भी देखा है। जबकि दोनों विषय एक ही सिक्के के पहलू है। मगर फिर भी एक की उन्नति, दूसरे की अवनति बड़ा ही आश्चर्य है।

वर्तमान में अध्यापक की भूमिका नूतन रूप में देखी जा रही है जिसमें अध्यापक का सम्मान घटा है। मगर अध्यापकों के संसाधन बढे हैं। अर्थात् वेतन वृद्धि, शिक्षा संसाधन, बड़े अवसर, अधिकार बढ गए है। मगर अध्यापक का अध्यापकत्व तो समाज में घट गया है। अर्थात् अध्यापयतीति इति अध्यापकः। पढाने के कारण, समाज में जो सम्मान पहले अध्यापक को मिलता था, वो तो निश्चित ही घट गया। इसके

लिए समाज जिम्मेदार है या स्वयं अध्यापक, अथवा शिक्षा नीति, अथवा सरकार। वस्तुतः इस जगत् में सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अध्यापक ही होता हैं। और अध्यापक का परतन्त्र होना, बड़ा ही चिन्तनीय है। इसलिए मैं तो अध्यापक को ही इसके लिए जिम्मेदार मानता हूँ। क्योंकि समझदार को ही समझाया जाता है। काम करने वाले को ही काम दिया ज़ाता है। इसलिए समाज की इस व्यवस्था के लिए अध्यापक ही जिम्मेदार है।

अध्यापक का मतलब 'समस्यानिदानक', छात्र का मतलब 'समस्योत्पादनक', अगर अध्यापक ही समस्या की चर्चा करेगा तो फिर समाधान कौन करेगा? कैसी भी परिस्थिति हो, अध्यापक का मुख्यकार्य ही समस्या का समाधान करना है। मगर वर्तमान में तो छात्रों की समस्या कम है, और अध्यापक की समस्या ज्यादा है। अध्यापक शिक्षा किसी निश्चित समय में किसी लक्ष्य को पूरा करने काम नहीं है। अपितु अध्यापक शिक्षा तो एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जिसको निरन्तर जारी रखना है। मगर वर्तमान में लोग एक वर्ष में ही अध्यापक बन जाते है। स्नातक करने के बाद B.Ed. करते ही अध्यापक बन जाना है, अध्यापक का लक्षण है मगर यह सत्य नही है, अध्यापक वो होता है जो अध्यापन में अपनी नैसर्गिकी रूचि रखता है। जो अध्यापन में अपना सर्वोच्च आनन्द और सम्मान प्राप्त करता है।

जब सर्वोच्च आनन्द और सम्मान अध्यापक को मिल जाता है, फिर उसके लिए क्या अवशिष्ट रह जाता है, शायद कुछ विशेष तो नहीं शेष रहता है अध्यापक में यदि अध्यापन रूपी धर्म के लिए रूचि ही नहीं है तो फिर वह अध्यापक न होकर 'गर्दभ' के समान ही है। 'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति' इति कहा गया है। इसलिए जिस प्रकार गर्दभ को काम कराने के लिए दण्ड की आवश्यकता होती है, क्या उस प्रकार की व्यवस्था अध्यापक के लिए होनी चाहिए। शायद नहीं, क्योंकि अध्यापक तो 'अश्व' के समान है, जो केवल संकेत मात्र से से सब कुछ समझ जाता है। और निरन्तर तीव्रगति से, धैर्य से, ज्ञान से परिश्रम से लक्ष्य प्राप्ति करता है।

इसलिए अध्यापक को अश्व के समान बनाओ। अध्यापन कार्य में अध्यापक की स्वाभाविकी रूचि किस प्रकार बढे, इसके लिए विचार किया जाना चाहिए। अध्यापक एक पारस पत्थर के समान होता है जो छात्र रूपी लोहे को स्वर्ण बनाता है। जब अध्यापक पारस है तो फिर कैसा अभाव? कैसी समस्या? मगर समस्या तो यह है कि अध्यापक को अपने में छिपे पारस का पता ही नहीं है। अध्यापकत्व रूपी पारस के बारे में कौन बताएगा? यही प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। तो इसे हम अध्यापक शिक्षा में बताएगें। अध्यापक तुम कितने महान हो? तुम अनेको गुणों का खजाना हो उस प्रशिक्षण में हम उसे बताए कि तुम देश के भाग्यविधाता हो, भविष्यनिर्माण में सबसे बड़ी भूमिका निभाने वाले हो। कक्षा में तुम्हारा काम केवल एक पुस्तक मात्र तक ही सीमित नहीं है अपितु असीम योग्यता से असीम नवपीढी का निर्माण करने वाले हो। देश के हित में सर्वदा तत्पर रहने वाले, ईमानदारी, कर्मठता की, मिसाल हो। छात्रों के लिए तो अध्यापक एक कल्पवृक्ष के समान है, जो छात्रों में छिपे हुए दोषों को, दुस्संगति, बुरी आदतों को दूर करने वाला है। स्वस्थ-स्वच्छ भारत का निर्माण करने वाला है, कक्षा में छात्रों के माता-पिता के समान, एक सच्चा मित्र, निष्पक्ष, द्वेषरहित, लोभ-लालच से दूर रहने वाला एक सेवक है। ज्ञान के महत्व को समझाने वाला, निरक्षता, चोरी, भ्रष्टाचार, देश की अवनतियाँ, सामाजिक भेदभाव, बुराईयों, को दूर करने वाला, और छात्रों के सर्वांगीण विकास को करने वाला सबसे बड़ा कर्त्ता है।

इस प्रकार से सिद्ध होने के बाद जब उसे यह अनुभव होगा कि मैं तो महान नायक हूँ। जब यह भाव उसमे आ जाएगा तो स्वतः उसकी रूचि और उसका आनन्द बढेगा, और व्यक्ति अपने आनन्द को बढाना चाहता है। इसलिए मैं तो महान बनूँगा और छात्रों में अपने को महान बनाऊँगा। मेरी कक्षा में पूरा देश है, और मैं उसका नायक हूँ। इतना बड़ा पद मिलने पर भी यदि मैं असन्तुष्ट हूँ तो निश्चित रूप से वहाँ एक सबसे बड़े मूल्य की कमी है वर्तमान में इस शिक्षा प्रणाली ने हमसे हमारी सबसे बड़ी धरोहर छीन ली है वो धरोहर है 'चिन्तन क्षमता'

वर्तमान में अध्यापक चिन्तन से दूर चला गया है। और चिन्ता में फंस गया है। मगर चिन्ता तो चिता के समान है। जब अध्यापक अपने में इस चिन्तन क्षमता को उदय कर लेगाा तो निश्चित रूप से उसकी हजारों समस्याओं का समाधान हो जाएगा और वह अपने को ' एक महान नायक' मानेगा। मैं जीवन में हजारों छात्रों के भविष्य का निर्माता हूँ। सूर्य प्रकाश देने के बदले में हमसे कुछ नही मांगता है, तो मैं भी सूर्य बनूँगा और सबको नया जीवन, प्रकाश ऊर्जा दूँगा। इस प्रकार से अध्यापक अपने चिन्तन को अपना कौशल बनाएगा तो निश्चित ही वह अध्यापक Problem Solver बन जाएगा।

अध्यापक शिक्षा में मूल्यमीमांसा का द्वितीय बिन्दु अध्यापन है। अध्यापक की सबसे बड़ी खुशी अध्यापन है जब हम अपना मूल कार्य ही नहीं कर रहे है तो हमारी खुशी कहाँ है? इस खुशी को हम कक्षा से बाहर ढूंढ रहे है। ज्ञान को परमात्मा के सदृश कहा गया है। ज्ञान के स्वरूप में परमात्मा को पूजा सकता है, पढना-पढाना ज्ञान के ही अंग है,जब हम इसे परमात्मा की सेवा मानेगें और नही करने से उसका अपमान मानेंगे तो निश्चित ही जो इसे करेगें वो तो आनन्द प्राप्त करेगें और जो नही करेगें वो इस आनन्द से वंचित हो जाएगें और जब आनन्द नही मिलेगा तो जीवन में निश्चित अशान्ति मिलेगी। क्योकि जीवन तो कठिनाई का समुद्र है इसमें सुख-शान्ति के लिए हम सर्वत्र भटकते है और जब वह आनन्द हमारे पास ही है लेकिन हम इसे जान नहीं पा रहे हैं तो ये भी तो एक बड़ा अज्ञान है। इसे तो हम प्राप्त कर सकते हैं तो सही है, इसे प्राप्त करो। और आनन्द, शांति को प्राप्त करो। जब आप इस शिक्षा को हजारों छात्रों में प्रेषित करेंगे तो इस ज्ञान का क्षेत्र भी हजारों गुणा बढ जाएगा और खुशियाँ उन बच्चों के बीच में आ जाएगी और जब बच्चा खुश होता है तो लगाता है भगवान खुश हो रहा है। इसलिए अध्यापक को चिन्तन क्षमता के साथ अपनी योग्यता और सार्म्थय को जानकर प्रयत्न करना चाहिए। विकास रूपी रथ में अपने अस्तित्व को स्पष्ट करना चाहिए।

मूल्यमीमांसीय आगम के मुद्दे एवं चुनौतियाँ

डॉ. सरिता

भारतवर्ष का शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन समय से ही अपना एक प्रमुख स्थान है। एक समय था जब संसार के अन्य देशों के लोग भारतवर्ष के ऋषियों और मुनियों से शिक्षा ग्रहण करने आते थे और अब भारत में शिक्षा के क्षेत्र में इतना नैतिक पतन हो गया है कि आज के शिक्षित लोगों से कभी-कभी अशिक्षित लोगों का व्यवहार अच्छा समझा जाता है।

प्रमुख मुद्दे-

शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का अभाव- प्राचीन भारत में ब्राह्मण तथा बौद्धकालीन शिक्षा का आधार धर्म ही था। उस समय शिक्षा का तात्पर्य धार्मिक ग्रन्थों के पठन-पाठन, धार्मिक कार्यों के करने तथा धार्मिक जीवन के व्यतीत करने में समझा जाता था। मध्यकाल में भारत पाठशाला तथा मन्दिरों और मस्जिदों से सम्बद्ध होते थे। इन्हीं के पुजारी तथा मौलवी बालकों को आवश्यक शिक्षा देते थे। शिक्षा प्राप्त करने के बाद धार्मिक तथा मौलिक बातों का ध्यान रखते हुए समाज में आचरण करना, शिक्षा का प्राय: प्रधान उद्देश्य माना जाता था। वर्तमान समय में पाठ्यक्रम में इस प्रकार की व्यवस्था न होने से छात्रों को उचित मार्गदर्शन ही नहीं मिलता जिसकी वजह से वे जानते ही नहीं कि समाज के प्रति उनका नैतिक कर्तव्य क्या है।[1]

पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव- आज की शिक्षा त्रुटिपूर्ण है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालकों का सर्वाङ्गीण विकास करना है लेकिन

1. साहित्य परिचय नैतिक शिक्षा विशेषांक 1982 वर्ष 17 अंक-2-4 संयुक्त परवरी-अप्रैल, पृष्ठ-211

इस उद्देश्य की पूर्ति करने में वर्तमान शिक्षा पूर्णतः असमर्थ है। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों से शिक्षा ग्रहण करने के बाद जब बालक समाज में पैर रखता है तो उन्हें केवल रोजगार की तलाश रहती है। जिसके न प्राप्त होने पर वह उसे प्राप्त करने का हर सम्भव प्रयास करता है व अनुचित मार्ग का अनुसरण भी करता है। ऐसे में वह पाश्चात्य सभ्यता एवं आचरण की नकल करने में ही अपने को महान और गौरवशाली समझने लगता है।

मातृदेवोभवापितृदेवोभवा आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।[2]

आज बालकों को ऐसी शिक्षा नहीं दी जाती है, इसलिए उनका दिनोदिन मूल्यों का मौलिक पतन होता जा रहा है।

* **विद्यालयों में अयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति**- कभी-कभी विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में राजनैतिक प्रभाव व दबाव के कारण ऐसे अध्यापकों की नियुक्ति हो जाती है जिसे स्वयं मौलिकता का ज्ञान नहीं वह विद्यार्थियों के आचरण, व्यवहार में वह कैसे मौलिकता को विकसित कर यह विद्यार्थी को पतन की ओर ले जाता है।

* **विद्यालय चलाना एक व्यायाम हो गया है**- भारत में विद्यालयों की स्थापना समाज कल्याण व छात्र विकास के लिये किया जाता था किन्तु आज विद्यालय की स्थापना का मुख्य उद्देश्य विद्यालय द्वारा पैसे पैदा करना हो गया है। अब विद्यालय खोलना एक व्यवसाय बन गया है। अधिकांश प्राईवेट विद्यालयों के व्यवस्थापक अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार में लिप्त है। इसका नतीजा यह हो रहा है कि उनके विद्यालयों में पढने वाले छात्रों पर भी अनेक आचरण की नकल करके भ्रष्टाचार में लिप्त होती जा रही है और शिक्षा में मूल्यों का पतन हो रहा है।

---

2. ईशावास्योपनिषद्

* **योग्यता के स्थान पर डिग्री को महत्त्व**- वर्तमान में विद्यालय की डिग्री का महत्त्व अधिक हो गया है। अब भारत में किसी भी उच्च नौकरी या पद पाने के लिए बड़ी-बड़ी डिग्रियों को ही महत्त्व दिया जाता है। इसका नतीजा यह है कि डिग्रियों को प्राप्त करने के लिए हर प्रकार की चोरी, बेईमानी, घूँसखोरी, चापलूसी। चारित्रिक भ्रष्टता के तरीके अपनाए जाते हैं। इस तरह शिक्षा में मूल्यों का पतन का बोलबाला दिनोदिन बढ़ता ही जा रहा है।

क) शिक्षा के क्षेत्र में नैतिक मूल्यों का अभाव- प्रायः प्रत्येक विद्यालय या विश्वविद्यालय में कुछ ऐसे अध्यापक और छात्र पाये जाते हैं, जो अपने विद्यालय व विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी से अधिक संख्या में पुस्तकों को ले लेते हैं परन्तु लौटाते नहीं है। इससे न जाने कितने छात्रों व अध्यापकों का नुकसान होता है।

ख) प्रायः देखा जाता है कि शिक्षक- अपने कार्य को पूरी निष्ठा के साथ नहीं करते है। कक्षा में समय की पाबंदी नहीं करते और कभी भी अपना कोर्स समाप्त नहीं करते है। इससे विद्यार्थियों में अध्यापकों के प्रति रोष एवं घृणा की भावना उत्पन्न होती है।

ग) **शिक्षा द्वारा सर्वाङ्गीण विकास का अभाव**- आज की शिक्षा विद्यार्थियों का सर्वाङ्गीण विकास करने में पूर्णतः असफल है। किसी देश की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिसके द्वारा समाज की सभी आवश्यकताएँ पूरी हो सके। नागरिकों में सच्चरित्रता, योग्यता, प्रेम, सहयोग, सहानुभूति और अन्तरराष्ट्रिय सद्भावना का विकास होता रहे। आज के विद्यार्थियों को उचित व अच्छी शिक्षा न मिलने के कारण जब ये समाज में आते हैं तो अपने को समाज के अनुरूप न पाकर पूर्णतः असफल पाते हैं। और ये नैतिक पतन व मौलिक पतन का रास्ता अपनाते हैं।

एन.सी.ई.आर.टी. ने कक्षा 5 से 12 तक सभी हिन्दी पुस्तकों का मानव मूल्यों की दृष्टि से 4 शोध प्रबन्धों में मूल्यांकन किया है।

मूल्य परायण शब्दावली (दया, कृपा, सत्य, अहिंसा, संतोष, सहनशीलता, विवेक आदि) का यू.जी.सी. की एक योजना ''भारतीय जीवन मूल्य'' पर सम्पन्न की गई और ''मानव मूल्यों'' पर पूरी की गयी।[3]

मानवीय जीवन मूल्य जो जीवन को अस्तित्व प्रदान व गति प्रदान करें वहीं मूल्य हैं।[4] इन्सारक्लेपीडिया 22 पृ. विनसिका खण्ड विशज्योति सि. 2014 63, 6 के अनुसार)

जिन स्तम्भों पर मानव ने सभ्य और सुसंस्कृत जीवन का प्रसाद खड़ा किया है, उनका नाम ही मानवमूल्य है। अतः मानवियमूल्यों को इस प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं कि मानव के लिए क्या करणीय है? और क्या अकरणीय है? उन्हें मानवीय मूल्य कहते हैं, जो समाज के संगठित और अनुशासित कर लोकमंगल और आत्मोपलब्धि में सहायक होते है। मानवीय नैतिकमूल्य को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

प्रथम- मन, वचन, कर्म, विवेकज्ञान, सत्याचरण आदि व्यक्तिपरक मूल्य है।

द्वितीय- समत्त्वभावना, मैत्री, सत्संगति, दान, धर्म, परोपकार अतिति-सत्कार आदि समाजपरक मूल्य है।

सी.बी.एस.ई. ने भी छोटी कक्षा स्तर पर कहानियों के माध्यम से मूल्य शिक्षा के विकास को महत्त्व दिया है इसके लिए प्रमुख शिर्षक इस रूप में दिये है जो कहानियों के माध्यम के माध्यम से बताये गये हैं।[5]

क) अपना कार्य सदैव उचित प्रकार से करें योग्यतानुसार।

ख) उत्तरदायित्व : अधिकार व कर्त्तव्य।

---

3. मानव मूल्यपरक्तशब्दावली विश्वकोश, प्रथम खण्ड-सम्पादक साहित्य शिरोमणि डॉ. धर्मपाल (भारतीय संस्कृत संस्थान चण्डिगढ़ (रीत) एक परिचय)

4. www.nic.in cbse

ग) आत्मसुरक्षा- नियबद्धता के साथ।

घ) चुने अपना आदर्श नेता।

अर्थात् परवाह करना, परिवार दोस्त, समाज पड़ोसी रिश्तेदार आदि इन विषयों को आधार बनाकर कहानी के द्वारा मूल्यों को विकसित करा जाये।

इसी प्रकार कक्षा 5 से 8 में भी बताया गया है, परन्तु यहा पर क्रियाविधि प्रमुख है। अब कहानी का क्रियाओं, नाटक करके प्रस्तु है। नई दिल्ली 1 नवम्बर 2012 "मानव संसाधन विकास मंत्रालय" के केन्द्रीय मंत्री श्री एम.एम.. पालमराजू के मार्गनिर्देशन मं सी.बी.एस.ई. बोर्ड में लागू करवाया। सी.बी.एस.ई. बोर्ड ने नई मूल्य शिक्षा किट उपलब्ध कराये इसमें मूल्य शिक्षा अध्यापक हैण्डबुक और सी.डी 8 गानों में उपलब्ध है, नर्सरी से कक्षा 12वीं तक के लिये कुछ एक्टीविटी कार्ड[6] है "इसी के साथ तीन साल का मूल्य शिक्षा कार्यक्रम विद्यालयों के लिए है। इसके लिए एक सेमिनार हुआ व विषय था "मूल्य शिक्षा: क्यो, क्या, कैसे" ये रामकिशन मिशन- दिल्ली में 7 दिसम्बर 2013 में 6 विद्यालयों में अध्यापकों के प्रयोग के लिए किया गया।[7]

सी.बी.एस.ई. मूल्य शिक्षा के विषयों के आधार पर उनके कक्षास्तरानुसार विषयों को उपलब्ध करा रहा है। जो है- कक्षा-3 से 5 तक व माध्यमिक स्तर पर क्रियात्मक प्रयास बताए गए हैं, जो इस प्रकार है।

ईमानदारी, सच्चाई, दूसरों का आदर करना, लक्ष्य को निर्धारित करना, अपना श्रेष्ठ देना, हर कार्य को समूह में काम करना, अच्छा व्यक्तित्व, संस्कृति का सम्मान करना अपनी व दूसरों की पहले उत्तरदायित्व निभाना फिर स्वतन्त्रता।

ये कुछ प्रमुख मूल्य है जो सी.बी.एस.ई. बोर्ड ने मूल्य शिक्षा

5. www.nic.in cbse
6. c.b.s.e. website PRESS RELEASE, C.B.S.E ncourages value Education amongst studentis.

विकास के संदर्भ में वर्णित करे हैं, अपने पाठ्यक्रम में।

प्रमुख सुझावः-

1. मौलिक शिक्षा, शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर अनिवार्य की जाये।

2. विद्यालयों के समय विभाग-चक्र में इसे उपयुक्त स्थान मिले।

3. केन्द्रिय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड व राष्ट्रिय शैक्षिक अनुसंधान एव तैयार की जाए।

4. इन पाठ्यपुस्तकों में इस प्रकार की सामग्री चयनित की जाए, जो छात्रों में सत्य-पालन, सदाचार, सहायोग, आज्ञाकारिता, विनम्रता, स्वतत्रता, सुशीलता, चैतन्यता, त्याग, अहिंसा, सेवा, श्रमशीलता, परोपकार, उदारता, स्वावलम्बन, स्नेह, क्षमा, इन्द्रिया निग्रह, अनुशासन, निर्भयता आदि गुणों का विकास करने में समर्थ हों सके।

5. धार्मिक महापुरुषों की जीवनगाथा व उनके संदेशों को शिक्षा के क्रियाकलायों में शामिल किया जाए।

6. भाषा के माध्यम से परी कथायें, लोक कथायें, सामाजिक कथाएं, पौराणिक तथा धार्मिक कथाएं, वीरता की कथाएं, कविताएं, गीत व आत्मकथाएं, इस प्रकार से प्रस्तुत की जायें, जो मौलिकता के गुणों को उजागर करे इन्हें नाटक के रूप में प्रस्तुत करने का अवसर की प्रदान करा जाए छात्रों को।

7. समय-समय पर कविसम्मेलन, वाद-विवाद, एकांकी, भाषण आदि की प्रतियोगितायें इस प्रकार की जाए जिनमें नैतिकता के विषयों पर चर्चा की।

8. मौलिक शिक्षा, शिक्षण प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम का एक अनिवार्य अङ्ग होनी चाहिए।

9. छात्रों को आध्यात्मिक, सामाजिक नैतिक मूल्य का ज्ञान

कराना।

10. शिक्षक शिक्षण कार्य के समय जीवन के मूल्यों पर प्रकाश डालें, इस कार्य में पाठ्य-सहगामी क्रियाएं और सांस्कृतिक कार्यक्रम महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

11. विभिन्न धर्मो के विद्वानों के भाषण कराये जायें।

12. अवकाश के दिनों में सामूहिक श्रमदान तथा समाजसेवा के कार्य हो 'राष्ट्रिय सेवा योजना' को चलाया जाय।

13. तकनीकी, औद्योगिक और वैज्ञानिक प्रगति को मौलिक शिक्षा से जोड़ा जाए।

14. राष्ट्रीय सम्पत्ति को नष्ट करना मौलिक, नैतिक अपराध स्वीकार किया जाए।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य मीमांसा

नवीन आर्य
शोध छात्र

आज मनुष्य के आचरण में तेजी से आती हुई मूल्यों की गिरावट को देखकर प्राय: सभी प्रबुद्ध विचारक चिंतित हैं। मूल्यों की आवश्यकता आज जितनी अनुभव की जा रही है, उतनी पहले कभी नहीं की गई, क्योंकि आज हम एक गहन संक्रान्ति काल (Transitional-Period) से गुजर रहे हैं। हमारे परम्परागत मूल्य (Traditional-Values) कुछ तो पूर्णत: विघटित हो चुके हैं और कुछ बड़ी तीव्र गति से विघटित हो रहे हैं। आज सदाचरण, सत्य, अहिंसा, प्रेम, शान्ति जैसे शाश्वत (Eternal) परम्परागत मूल्यों की पुन: प्रतिष्ठित करने की महति आवश्यकता है ये मूल्य न केवल व्यक्तिगत उत्थान के लिए अपितु सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रगति एवं शान्ति के लिए भी परम आवश्यक हैं। मूल्य एक ऐसी आचरण-संहिता या सद्‌गुण समूह है, जिसे अपने संस्कारों एवं पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर मनुष्य अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवनपद्धति का निर्माण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। एक राष्ट्र की गुणवत्ता उसके नागरिकों पर निर्भर करती है और नागरिकों की गुणवत्ता उनकी शिक्षा पर निर्भर करती है तथा शिक्षा की गुणवत्ता उसके शिक्षक समाज पर निर्भर करती है। शिक्षक एक ऐसा आदर्श एवं पथ प्रदर्शक है जो आज के विद्यार्थी को भावी नागरिक के रूप में तैयार करता है इसलिए अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य मीमांसा का होना अत्यन्त आवश्यक है।

शिक्षक को 'राष्ट्रनिर्माता' भी कहा जाता है। शिक्षक एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्पराओं एवं तकनीकी कौशल पहुंचाने का केन्द्र होता है। अध्यापक अपने दायित्व एवं कर्तव्यों का सही ढंग से पालन कर सके इसके लिए अध्यापक प्रशिक्षण के माध्यम से उसे विभिन्न अनुभव एवं संस्कार प्रदान किये जाते हैं भावी अध्यापक (शिक्षक) ऐसा होना चाहिए जो विद्यार्थियों का बौद्धिक, मानसिक, तथा आध्यात्मिक विकास करवा सके, वह अपने विद्यार्थियों में मानव मूल्यों एवं अन्य क्षमताओं का विकास कर सके, इसके लिए अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य मीमांसा का होना अत्यावश्यक है। भारत श्रेष्ठ गुरुओं का देश रहा है। तक्षशिक्षा व नालन्दा जैसे विश्वविद्यालय श्रेष्ठ व उत्कृष्ट शिक्षा के माध्यम से भारत की गुरुता की पताका विश्व में फहराया करते थे हम आज भी अपने अतीत के गौरव को प्राप्त कर सकते हैं यदि अध्यापक शिक्षा अपने पूर्ण व्यवस्थित एवं मूल्यों से संवर्धित हो। अध्यापक शिक्षा वह शैक्षिक आयोजन है जिसमें विभिन्न स्तरीय और वर्गीय अध्यापकों को इस प्रकार से शिक्षित करने के लिए प्रयास किया जाता है कि आने वाली संतति को ज्ञान और मूल्यों के हस्तान्तरण के साथ ही उनके समस्त शैक्षिक एवं विकासात्मक दायित्वों को ग्रहण एवं वहन करने में सक्षम हो सकें और उनमें तकनीकी कुशलता, वैज्ञानिक चेतना, संसाधन सम्पन्नता और नवचारिता के साथ सांस्कृतिक उद्‌दीपन तथा मानवता बोध का समन्वयात्मक विकास करना संभव हो सके। शिक्षक बनने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले शिक्षकों को शिक्षक प्रशिक्षक कहते हैं। अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के अन्तर्गत शिक्षक प्रशिक्षक जिन मूल्यों को जो पढ़ाते हैं उन्हें मानते हैं अथवा वे जिन मूल्यों का आचरण करते हैं उन्हीं मूल्यों को अपने शिष्यों में भी लाने का प्रयास करें, ये अपेक्षा रहती है। उन्हें चाहिए कि वे एक शिक्षक के आदर्श मूल्यों को अपने शिष्यों के समक्ष प्रस्तुत करें और उन्हें इस ढंग से प्रेरित करें कि शिक्षार्थी उन मूल्यों को स्वीकार कर लें। सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया की श्रृंखला में अध्यापक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है शिक्षा की कोई भी योजना हो, उसके

क्रियान्वयन का सूत्रधार अध्यापक ही होता है अत: सबसे पहले अध्यापकों में विविध नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का आभ्यन्तरीकरण अत्यन्त आवश्यक है। दीप से दीप जलता है, वैसे ही नैतिकता नैतिकता को जन्म देती है। अध्यापक छात्रों के समक्ष नैतिक आदर्श प्रस्तुत करें जिन्हें देखकर तथा अनुभव करके विद्यार्थी भी नैतिक आचरण का अनुसरण करेंगे।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य मीमांसा के सन्दर्भ में कतिपय सुझाव प्रस्तुत कर रहे हैं जो इस प्रकार हैं–

- पाठ्यक्रम में इस प्रकार की सामग्री समाविष्ट हो जिससे प्रशिक्षु शिक्षकों में सत्यपालन, सदाचार, प्रेम, शान्ति, अहिंसा आदि मानव-मूल्यों का आभ्यन्तरीकरण सरलतापूर्वक हो सके।

- मूल्यपरक शिक्षण से सम्बद्ध मानक पुस्तकें, पुस्तिकाएँ तथा अन्य सहायक सामग्री प्रत्येक शिक्षा महाविद्यालय में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराई जायें।

- महापुरुषों के जन्म-दिवसों को सुनियोजित ढंग से मनाया जाए ताकि प्रशिक्षु शिक्षक उनके जीवन और कार्यों से परिचित हो सकें और उनसे विविध नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात् करने हेतु प्रेरित हो सकें।

- भाषण, सम्भाषण, वाद-विवाद, एकांकी, कवि-सम्मेलन आदि समय-समय पर आयोजित किए जाएँ, जिनके विषय विविध जीवन-मूल्यों से प्रभावित हों, जिनका सुप्रभाव पड़ सके।

- 'मूल्यपरक शिक्षा' अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग होना चाहिए, जिसमें एक-दो प्रश्न-पत्र मूल्यपरक शिक्षा, भारत की सामासिक संस्कृति, भारतीय जीवन दर्शन, भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं आदि पर रखे जाने चाहिए। समय-समय पर प्रशिक्षु शिक्षकों के व्यवहार एवं कार्यों की अनौपचारिक

समीक्षा की जावे जिसमें वस्तुनिष्ठता का ध्यान रखा जाए। श्रेष्ठ व्यवहार एवं उदाहरणीय कार्य के द्वारा आदर्श स्थापित करने वाले प्रशिक्षु शिक्षकों का महाविद्यालय में सम्मान एवं प्रोत्साहन प्रदान किया जाए ताकि अन्य प्रशिक्षु शिक्षक भी उनका अनुसरण करें।

- विविध नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आदि मूल्यों को आत्मसात् करने में शिक्षा महाविद्यालय की प्रार्थना-सभा के अवदान को नकारा नहीं जा सकता। अतः इस दैनिक कार्यक्रम को अधिक सुनियोजित एवं सजीव तथा मूल्यपरक (Value Oriented) बनाया जाना चाहिए।

- प्रायः यह देखने में आता है कि पुस्तकालय मात्र पुस्तकों का रख-रखाव एवं आदान-प्रदान करके अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। मूल्योन्मुख शिक्षा के सफल कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है कि शिक्षा महाविद्यालय के विविध कार्य-कलापों में पुस्तकालयों को भी सहभागी बनाया जाए।

- प्रशिक्षु शिक्षक जब शिक्षण अभ्यास के लिए विद्यालयों में जा रहे हों, तो उन्हें आवश्यक मूल्यों की सूची दे दें। यह निर्देश भी दे दें कि उन्हें इन्हीं नियमों के अनुसार कक्षा कार्य और छात्रों के साथ व्यवहार करना है। शिक्षक के मूल्यों की रक्षा करना उनका कर्तव्य है।

- प्रशिक्षु शिक्षकों को मूल्यों के अनुरूप ही कार्य करना है। इन नियमों का पालन उनके लिए अनिवार्य है। एक पत्रक पर छात्राध्यापकों से हस्ताक्षर करा लें कि वे अवश्य ही एक शिक्षक के मूल्यों का पालन करेंगे। जब एक हस्ताक्षर करके वे अपनी सहमति न दे दें। उन्हें शिक्षण कार्य न करने दिया जाए।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य मीमांसा का होना अनिवार्य है

क्योंकि यहीं से एक व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त करके शिक्षक बनता है और विद्यालय में जाकर राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करता है तथा ये अपेक्षा रहती है कि वह विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास कर सके।

संदर्भ

1. गुप्त, डॉ. नत्थूलाल : मूल्यपरक शिक्षा और समाज, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
2. पाण्डेय, डॉ. कामता प्रसाद : शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, विश्वविद्यालय-प्रकाशन, वाराणसी, 2005
3. पाण्डेय, रामशकल : शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
4. माथुर, डॉ. एस. एस. : शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन-आगरा, 2009
5. सिन्हा, अतुल कुमार : प्राचीन भारतीय वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्यबोध, उमा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1981-82
6. श्रीवास्तव, डॉ. सुषमा, अग्रवाल, डॉ. विनीता : समाज में मूल्यों का परिवर्तमान परिदृश्य एवं उच्च शिक्षा, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2008

मूल्य संकट एवं संभावित समाधान

विकास
शोधछात्र

समाचार पत्रों में भरे मूल्यों का ह्रास प्रकट करते दैनिक समाचार, मूल्यों में आयी न्यूनता पर प्रतिदिन शास्त्रार्थ करते सम्पादकीय लेख, टेलीविजन के विभिन्न कार्यक्रमों में मूल्य ह्रास पर होती तीखी बहस और ज्ञानी मनोविज्ञानियों द्वारा दिए गए सार्थक परामर्श आदि से भी समाज में मूल्यों की स्थापना नहीं हो पा रही है। बल्कि स्थापित मूल्यों के मानदण्ड नित-रोज टूटते जा रहे हैं। हर आने वाला कल बीते समय को भला बता देता है। प्रतिदिन यह सुनने को मिलता है कि पहले के लोग अच्छे थे, वह ज़माना और था, अब पहले वाली दोस्ती कहाँ, कहाँ विश्वास करने योग्य लोग। न पहले जैसे गुरु न शिष्य, यहाँ तक कहा जाता है कि अब पहले जैसे भक्त नहीं रहे और भगवान भी नहीं। यह विषय और चिंतनीय हो जाता है जब गाँव-मुहल्लों की चौपालों में बैठे लोग इस विषय पर पाण्डित्यपूर्ण भाषण देते हैं। चाय-कॉफी की चुस्कियाँ लेते लोग इस पर गहन चर्चा करते हैं, सलीम के सैलून (नाई की दुकान) पर बाल कटवाने के लिए अपनी बारी का इंतज़ार करते लोग गली-मुहल्ले से लेकर सत्ता तक के गलियारों की नैतिक-अनैतिक सभी घटनाओं पर विस्तृत चर्चा करते हैं। यानी समाज का प्रत्येक प्राणी इस विषय से प्रभावित है, अपनी सोच रखता है और बेबाकी से प्रकट भी करता है। फिर भी यह समस्या लगातार बनी हुई है। मूल्यों की यह स्थिति अनेक पक्षों में परिलक्षित होती दिखाई देती है।

आर्थिक क्षेत्र में दूसरों के धन को येन-केन प्रकारेण अपना बनाने, धन का अतिसंग्रह करने, गलत तरीकों से धन कमाने, दूसरों का अधिकार मारकर स्वयं धन हड़पने, श्रमिक वर्ग को उचित पारिश्रमिक न देकर निजी संपत्ति को बढ़ाने, धन का लोभ दिखाकर दूसरों से अनावश्यक श्रम करवाने, विवश करने आदि प्रवृत्ति में इज़ाफ़ा हुआ है। एक कहावत है कि धर्म से कमाया हुआ धन धर्म कार्यों में लगता है जबकि गलत तरीकों से की गई कमाई दुष्कार्यों में प्रवृत्त करती है। यदि समाज के सब लोग धनार्जन करने में शुचिता, संयम रखें तो मूल्यों का ह्रास भी कम हो सकता है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मानव समाज में मूल्यों का अवमूल्यन क्या कीट-कृमि करते हैं। नहीं, इसके लिए हम स्वयं उत्तरदायी हैं। हमारे अन्तस् का चोर अवसर मिलते ही मूल्यों को तार-तार कर देता है। इसके लिए हम एक-दूसरे को दोषी नहीं ठहरा सकते। यदि सच्चे अर्थों में हम अपने अन्तस्तल में दृष्टिपात् करें तो दोषकालुष्य हममें ही दिखेगा।

आज हम भाई-भतीजावाद, पक्षपात, अन्याय, दुराचार आदि अनेक दुर्गुणों के शिकार हो गए हैं। ऐसा नहीं कि हम केवल शिकार हैं बल्कि हम सभी इसमें संलिप्त हैं। कोई बड़ा पद या अधिकार मिलते ही स्वार्थों की पूर्ति हेतु, अपने या सगे-संबंधियों को लाभ पहुँचाने हेतु सदा ऐसे तत्पर रहते हैं जैसे यह हमारे अधिकार की परिसीमाओं में समाता है और हमारी नैतिकता में चार चाँद लगते हैं। इसके विपरीत परिस्थितियों में किसी बड़े ओहदेदार व्यक्ति को देखकर उससे सम्बन्ध बनाने या नजदीकियाँ बढ़ाने का प्रयास करते हैं ताकि अयोग्य होते हुए भी हम कोई लाभ प्राप्त कर सकें।

परिवहन तंत्र की लालबत्ती हो, किसी संस्था में प्रवेश लेना हो या नौकरी प्राप्त करनी हो पंक्ति में खड़े होकर अपनी बारी का इंतज़ार करना हम अपनी तौहीन समझते हैं और अवसर पाते ही कानून को ताक पर रखने में देर नहीं लगाते। छोटे काम से लेकर बड़े-बड़े कामों के लिए

जान-पहचान, संगे-संबंधियों और सिफारिशों को टटोलने का दौर शुरू हो जाता है।

समाज में अनाचार, दुराचार, यौनाचार, विवशता, बर्बरता का बोलबाला दिखाई दे रहा है। समाज में ऐसे मूल्य संकट का समाधान आवश्यक है। आज मानव में मानवीय गुणों के स्थान पर यंत्रीकरण हो गया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्य संकट उत्पन्न हो गया है। मानवता त्राहि-त्राहि कर रही है।

एक ओर तो हमारे समाज में साक्षरता दर बढ़ गई है, दिन-प्रतिदिन विद्यालयों में बालक-बालिकाओं की प्रवेश दर में वृद्धि हो रही है, उनकी शैक्षणिक उपलब्धि आश्चर्यजनरूप से 100% तक पहुँच रही है दूसरी ओर हमारे समाज में उतनी ही तेज़ी से अपराधों के नए रिकार्ड स्थापित हो रहे हैं। अपराधों के नए-नए आयाम विकसित हो रहे हैं। मूल्यों का अवमूल्यन प्रतिदिन नए रूप में देखने-सुनने को मिलता है। इतना विचार करने पर मन-मस्तिष्क में स्वतः एक प्रश्न कौंधता है कि क्या साक्षरता दर एवं शैक्षणिक उपलब्धि की दर में वृद्धि मूल्यों के अवमूल्यन का कारण है और अपराधों को नए रूप में विकसित करने तथा तद्वृद्धि दर में सापेक्ष संबंध है। इस प्रश्न का समुचित उत्तर समाज के विचारशील लोगों द्वारा अन्वेषणीय है।

सृष्टि के प्रारम्भ काल से ही तीनों गुण विद्यमान हैं सत्व, रजस्, तमस्। ये तीनों गुण सृष्टि को गतिशील रखने के लिए आवश्यक भी हैं। गुण-दोष, अच्छाई-बुराई, ग्राह्य एवं त्याज्य व्यवहार व वस्तुएँ पहले भी होती थीं अब भी होती हैं परन्तु तामसिक प्रवृत्ति का हावी होना इस भूलोक को नरक बनाना है। समाज में मूल्यों की स्थापना के लिए विचारशील लोगों को ही अगुआ बनना होगा।

मूल्य क्या हैं? इनका स्वरूप क्या है? इस संबंध में कुछ विचारकों ने विचार किया है। फ्लिक महोदय कहते हैं कि हम वास्तव में जिसे

सम्मान देते हैं, चाहते हैं या महत्वपूर्ण समझते हैं वही मूल्य हैं। ये मानवीय संरचना की अभिप्रेरणात्मक विमा हैं। ये व्यवहार के लिए अभिप्रेरणा स्रोत हैं। ये वे मानक रूपी मानदण्ड हैं जिनसे मानव प्रत्यक्षीकृत क्रिया विकल्पों में से चयन करते समय प्रभावित होता है।

जैक आर. फ्रैंकल महोदय के अनुसार आचार सौन्दर्य कुशलता महत्व के वे मानदण्ड मूल्य कहलाते हैं जिनके साथ वे जीते हैं तथा जिन्हें वे कायम रखते हैं।

इससे स्पष्ट है कि मूल्य मानव समाज द्वारा स्थापित वे मानदण्ड या अदृश्य शक्ति हैं जिनसे वे अपने व्यवहार को उद्देश्याभिमुखी सर्वोपयोगी सौंदर्यात्मक रूप देने के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है। अर्थात् मूल्य वे मानक सत्य हैं जिनसे मानव शिव और सौंदर्य को साधने हेतु अभिप्रेत होता है।

आजकल हमारे देश में आध्यात्मिक मूल्यों को समझा ही नहीं जा रहा है। जबकि पूरे विश्व में इसी धरती के लोगों ने धर्म का स्वरूप बताया है और यहाँ के लोग पश्चिमी देशों के रिलीजन (संप्रदाय) को ही धर्म समझने लगे हैं। हमारे यहाँ प्रत्येक कार्य धर्म से ओत-प्रोत होता है। धर्म रहित मनुष्य तो पशुवत् माना जाता है। धर्म से तात्पर्य उस विवेकशीलता से है जिससे व्यक्ति अच्छे व बुरे, वांछनीय-अवांछनीय या हित-अहित में अन्तर कर पाता है। अध्यात्म को सर्वहित का साधन तथा जीवन में खुशहाली लाने का रास्ता बनाना चाहिए।

इस संकट से उबरने के लिए हमें एकजुट होकर प्रयास करने होंगे। इसके लिए ज़रूरी है कि हम परिवार, समुदाय व समाज के नियमों का अनुपालन करें। मन कर्म और वचन में साम्यता हो[1], दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा जानें तथा परोपकार की भावना से प्रेरित होकर कार्य करें[2]। वाणी में नमता हो[3]। बड़े लोगों का सम्मान करें। बड़े लोगों के प्रति श्रद्धा और ज्ञान के प्रति उत्सुकता हो तो मनुष्य अपनी लालची प्रवृत्ति पर संयम रख सकेगा। विद्यालय के छात्र-छात्राओं में सहयोग की भावना विकसित

की जाए।

समाज के युवा वर्ग के कंधों पर उत्तरदायित्व है कि वे बड़ों का सम्मान करें। उनकी सेवा शूश्रुषा में संलग्न रहते हुए भावी पीढ़ी के सामने उदाहरण प्रस्तुत करें। कोई कार्य करते हुए उसके उद्देश्य व विधि को आदर्शों की कसौटी पर अवश्य कसें। ऐसा करने से उस व्यवहार का मूल्य ताम्र से स्वर्ण में बदल जाता है। हमारे दादा-दादी, नाना-नानी द्वारा कही गई अनेक सूक्तियाँ-मुहावरे जीवन को सरल वह सहज बना देते हैं।

यदि लोग मूल्यों को जीने लगें तो समस्याएँ निर्मूल साबित होंगी। मूलमंत्र तो एक ही है-''जीवन को सरल जानें, सरल समझें व सरल जिएँ''। समस्याओं की जटिलता व कठोरता स्वत: नष्ट हो जाएगी, मूल्य संकट उत्पन्न ही नहीं होगा। इससे जीवन आनंदमयी धारावत् बहता जाएगा।

संदर्भ

1. मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मानाम्। मनस्यन्यद्वचस्यन्यद् कर्मण्यन्यद् दुरात्मानाम्।। हितोपदेश

2. अष्टादश पुराणेषु वचनद्वयं कथितम्। परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम्।। हितोपदेश

3. ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोए। औरन को सीतल करै आपहुँ सीतल होए।। कबीर

4. पाण्डेय, के पी: शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2005

5. सक्सेना, एन आर स्वरूप : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, 2006 केलेकर,

6. रवीन्द्र : गिन्नी का सोना (संचयन भाग-2), एन सी ई आर टी,

शांति मूल्य : शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में

प्रभाकर पाण्डेय
शोधछात्र

शांति संभवतः मानव जीवन की सर्वाधिक अपेक्षित वस्तु है। मनुष्य अन्दर और बाहर दोनों की शांति के लिए सबसे अधिक इच्छुक होता है, किन्तु वर्तमान हालात इसके ठीक विपरीत है। आज हम स्थानीय, राष्ट्रीय और भूमंडलीय स्तर पर अभूतपूर्व हिंसा के युग में जी रहे हैं। मानव इतिहास में युद्ध और आतंकवाद इतना भयावह और विध्वंसकारी कभी नहीं रहा, जितना आज हो गया है। जैव-रासायनिक व आण्विक शस्त्र क्षण भर में मनुष्य और मानव सभ्यता को नष्ट कर सकते है। ऐसे में यह प्रश्न स्वाभाविक है, कि मानवता को पुनः किस तरह सुरक्षित, निर्भय व तनाव रहित बनाया जाए। इस समस्या का समाधान केवल 'शांति' में ही निहित है। आज समय आ गया है, जबकि विश्व से लेकर व्यक्तिगत स्तर तक 'शांति' स्थापित करने के उपाय व साधन खोजे जाए।

शांति मूल्य : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई जिससे कि भविष्य में पुनः युद्ध की आवृत्ति से बचा जा सके। संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में गहन विचार विमर्श के फलस्वरूप एक निष्कर्ष उभर कर आया कि शांति की स्थापना और विकास में शिक्षा की भूमिका और आवश्यकता सबसे महत्वपूर्ण है। यह विचार यूनेस्को के संविधान की भूमिका के प्रथम वाक्य से ही परिलक्षित होता है "चूंकि

युद्ध मनुष्य के मस्तिष्क में प्रारम्भ होता है, अतः शांति की सुरक्षा के लिए उपाय भी मनुष्य के मस्तिष्क में ही निर्मित करने चाहिए।'' शांति के निर्माण और विकास की दिशा में यूनेस्को सदैव ही प्रयासरत रहा है। निःशस्त्रीकरण पर आयोजित संयुक्त राष्ट्र महासभा (1978) ने बलपूर्वक कहा कि समस्या के मूल तक पहुंचना आवश्यक है, और इसका समाधान मनुष्यों के मस्तिष्क को प्रभावित करने से ही होगा। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने शिक्षा, विज्ञान, शोध, जनसंचार माध्यम, गरीबी उन्मूलन आदि के क्षेत्र में दीर्घकालीन कार्यक्रम चलाने का आवाह्न किया। महासभा ने इस बात पर बल दिया कि लक्ष्य की प्राप्ति के लिए केवल स्कूल तथा विश्वविद्यालयी स्तर पर ही नहीं बल्कि शान्ति शिक्षा को उन सभी स्तरों पर सम्मिलित करने की आवश्यकता है जहां से ज्ञान और कौशल प्राप्त होता है।

शान्ति के महत्व को समझाते हुए यूनेस्को ने डेलर्स आयोग का गठन किया जिसने अपनी रिपोर्ट लर्निंग; दि ट्रेजर विदिन (Learning; The Treasure Within) में मिलजुल कर रहना (Learning to live together) को शिक्षा के चार स्तम्भों में से एक घोषित किया। यूनेस्को पीस प्रोजेक्ट (1999) इस दिशा में ऐ गम्भीर कदम माना जा सकता है। यू.एन. जनरल एसेम्बली रिसाल्यूशन ने वर्ष 2000 से 2010 तक के दशक को शांति की संस्कृति (Culture of peace) तथा अहिंसा (Non-Violence) का दशक घोषित किया और कहा कि शैक्षिक कार्यक्रमों के माध्यम से शांति से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों को चिन्हित कर युवकों को सचेत व जागरूक बनाया जाए। यूनेस्को के डायरेक्टर जनरल फेड्रिक मेयर का विचार था कि ''जो देश शांति कायम करने के लिए अपनी शस्त्र, सेना और शस्त्र बनाने वाली फैक्ट्रियों पर निर्भर करते हैं, उन्हें अपना ध्यान दीर्घकालीन सुरक्षात्मक कार्य अर्थात् शिक्षा के माध्यम से शांति स्थापित करने की ओर लगाना चाहिए।

शांति मूल्य के संदर्भ में भारत प्राचीन वैदिक युग से ही शांति के लिए प्रयासरत रहा है। वैदिक मंत्रों के द्रष्टा महान ऋषियों ने सर्वत्र शांति

की कामना के लिए प्रार्थना किया है–

'ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी......... (यजुर्वेद:36/17)

वैदिक काल से चली आ रही इस चिरंतन परम्परा को बुद्ध और महावीर ने और अधिक पल्लिवित एवं पुष्पित किया। आधुनिक भारत राष्ट्र के निर्माता महात्मा गांधी के विचारों और कतव्यों में सर्वत्र शांति के प्रति आग्रह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। भारतीय संविधान की शान्ति मूल्यों के सशक्त प्रहरी के रूप में सामाजिक ताने-बाने को स्थिर रखे हुए है। इसी क्रम में विभिन्न शिक्षा आयोगों व समितियों द्वारा मूल्य शिक्षा को महत्व देना स्पष्ट है। एन.सी.ई.आर.टी. ने समय-समय पर राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना के निर्माण का आधार ही मूल्यों का निरूपण बनाया है। भारत में पिछले कुछ दशकों में धार्मिक व नैतिक शिक्षा के बजाय मूल्य शिक्षा का मार्ग अपनाते हुए अन्त में शांति शिक्षा और शांति के लिए शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF, 2005) ने अपने उपागम में महत्वपूर्ण परिवर्तन करते हुए शांति शिक्षा के स्थान पर शांति के लिए शिक्षा (Education for peace) को एक आदर्श रणनीति मानते हुए यह कहा है कि 'शांति के लिए शिक्षा' ही शांति मूल्यों के संदर्भीकरण तथा क्रियान्वयन में सहायक हो सकती है।

शांति का प्रत्यय एवं अर्थ

शांति का प्रत्यय अत्यंत व्यापक है। सामान्यत: शांति का संघर्ष या युद्ध की अनुपस्थिति के रूप में समझा जाता है। अनन्तकाल से समाज में शांति को मन की शांति या आंतरिक शांति के रूप में ग्रहण किया जाता रहा है।

वैज्ञानिक समाजवाद के उदय के साथ मार्क्सवादी विचारकों ने शांति के प्रत्यय को सामाजिक संरचना के संदर्भ में स्पष्ट करने का प्रयास किया। इनका विचार था कि सम्पत्ति का असमान वितरण तथा निजी सम्पत्ति का संचय ही सभी सामाजिक बुराइयों और हिंसा का मूल कारण

है। अतः 'शांति' संरचनात्मक हिंसा ही अनुपस्थिति है।

गांधीजी शोषण को हिंसा का सबसे जाना-पहचाना और व्यावहारिक रूप मानते थे। शोषण चाहे राज्य, समूह, व्यक्ति या मशीन के द्वारा व्यक्ति का अथवा आदमी के द्वारा औरत का अथवा राष्ट्र के द्वारा राष्ट्र का हो। प्यार, सत्य, न्याय, समानता, सहनशीलता, सौहार्द्र, विनम्रता, एकजुटता और आत्मसंयम-शांति इन सारे मूल्यों को व्यवहार में लाने पर बल देती है। दूसरों पर हिंसा करने की बजाय स्वयं कष्ट सहने को प्राथमिकता देनी चाहिए। निष्कर्षतः शांति के प्रत्यय के अंतर्गत निम्न तत्व आते है।–

- तनाव, संघर्ष और युद्ध की अनुपस्थिति।
- अहिंसात्मक सामाजिक व्यवस्था।
- शोषण और अन्याय के सभी रूपों की अनुपस्थिति।
- अंतर्राष्ट्रीय सहकारिता और सहयोग।
- परिस्थितिकीय संतुलन और संरक्षण।
- मन की शांति, या शांति को मनो-आध्यात्मिक आयाम।

इस प्रकार शांति जीवन जीने का तरीका, एक दृष्टिकोण, एक संतुलन की स्थिति है। यह एक आंतरिक शांति और दूसरों के प्रति शुभेच्छाओं की अनुभूति है।

यूनेस्को कान्फ्रेन्स ऑन टीचर एजुकेशन फॉर पीस एण्ड इण्टरनेशल अंडरस्टैडिंग (Unesco conference on teacher education for peace and international understanding, 1999) ने दस प्रमुख मूल्यों को चिन्हित कर शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रों में सम्मिलित करने पर बल दिया जो शांति के प्रत्यय में स्वनिहित है। इन प्रमुख मूल्यों में हैं–परस्पर सद्भाव, सहयोग, सहिष्णुता, न्यायपरक जीवन, मानव अधिकार व दायित्व बोध प्रमुख घटक रहे हैं। इन मूल्यों के निर्माण व आरोपण में शिक्षा की

भूमिका पहले से अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक है। शांति अंतिम व स्थायी मूल्य है जिसकी प्राप्ति के लिए अनेक मूल्यों को धारण करने की आवश्यकता है। शांति के लिए शिक्षा द्वारा व्यक्ति में उन्हीं मूल्यों की स्थापना व सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करना है, जिससे एक शांतिप्रिय व समन्वयात्मक समाज की कल्पना साकार हो सके।

शांति के लिए शिक्षा

शांति के लिए शिक्षा 'शांति शिक्षा' से भिन्न है। शांति-शिक्षा में शांति की स्थिति पाठ्यचर्या में शामिल एक विषय की तरह है। दूसरी ओर शांति के लिए शिक्षा जीवन के लिए शिक्षा है, शांति के लिए शिक्षा पढ़ाई के भार में खासी कमी लाने की बात करती है। शांति जीने के आनंद को मूर्त रूप प्रदान करती है। शांति के दृष्टिकोण से देखें तो सीखना एक आनंददायक अनुभव होना चाहिए।

शांति के लिए शिक्षा में मूल्य-शिक्षा भी समाहित है, लेकिन दोनों एक ही नहीं है। शांति मूल्यों की संगति के लिए प्रासंगिक तौर पर उपयुक्त और लाभदायक शिक्षाशास्त्रीय बिंदु है। शांति मूल्यों के उद्देश्यों को ठोस रूप देती है और उनके आंतरीकरण को प्रेरित करती है। इस तरह के ढाँचे के अभाव में अधिगम प्रक्रिया में मूल्यों का समावेश हो ही नहीं पाता। इस तरह शांति के लिए शिक्षित करना मूल्य-शिक्षा को संदर्भ प्रदान करने और संचालित करने की आदर्श रणनीति है। मूल्यों का आंतरीकरण अनुभव के जरिए होता है, जिसका कक्षा-केंद्रित शिक्षण और शिक्षण के पूर्णतया संज्ञानात्मक उपागम में अभाव पाया जाता है। शांति के लिए शिक्षा सीखने की प्रक्रिया को क्लासरूम की सीमा से मुक्त करने और इसे खोज के आनन्द से अनुप्राणित जागरूकता के उत्सव में बदलने की माँग करती है।

निष्कर्ष–

आज उभरते वैश्विक समाज में आवश्यकता है संकुचित राष्ट्रीयता के स्थान पर सार्वभौमीकरण या 'वसुधैव कुटुम्बकम' की प्रजातीय व

सांस्कृतिक रूढियों के स्थान पर अन्य संस्कृतियों व प्रजातियों के प्रति सहिष्णुता व सद्भाव की, अनेकता और विविधता के बोध की। आज की सबसे गम्भीर आवश्यकता है, अहिंसा और सहिष्णुता की संस्कृति स्थापना की। आज आवश्यकता है एक शांत व समन्वित समाज के निर्माण की। अत: उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में शिक्षा को शांति के लिए शिक्षा के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है, जिसके द्वारा समाज में शांति की संस्कृति (Culture of peace), सहिष्णुता, प्रजातांत्रिक मूल्य, मानव-अधिकार व कर्त्तव्य-बोध स्थापित किया जा सके। साथ ही लोगों को ऐसे मूल्यों, कौशलों और अभिवृत्तियों से युक्त किया जा सके, जिनसे उन्हें दूसरों के साथ सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार रखने वाले पूर्ण व्यक्ति और उत्तरदायी नागरिक बनाने में मदद मिले।

संदर्भ

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा; एन.सी.ई.आर.टी. (2001)
2. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा; एन.सी.ई.आर.टी. (2005)
3. आधार पत्र, शांति के लिए शिक्षा; एन.सी.ई.आर.टी. (2005)
4. लर्निंग द वे आफ पीस, ए टीचर्स गाइड टू एजुकेशन फार पीस, नयी दिल्ली; यूनेस्को (2001)
5. मूल्य विमर्श; मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र, वाराणसी, (जून-2011)

मूल्य संकट एवं संभव समाधान

डॉ. प्रशांत कुमार नन्दा

If the mind is weak, the situation becomes a problem,

if the mind is balanced, the situation becomes a challenge,

and if the mind is strong, te situation becomes an opportunity

दार्शनिक सन्दर्भ में 'मूल्य' शब्द वस्तुतः नीतिशास्त्रीय "वैल्यू" का पर्यायवाची है। अर्थशास्त्र में वह बाजार दर के अर्थ विनिमय के एक आवश्यक प्रतिमान के अर्थ में प्रयुक्त होता है। मानवीय कार्यकलापो मे शिवतत्व का क्या स्थान है। इस पर नीतिशास्त्रीय दृष्टिकोण से पर्याप्त विचार मन्थन हुआ है। कतिपय आचार्यो के अनुसार इस परिवर्तमान संसार में ऐसा सर्वव्यापक सर्वसम्मत मूल्यनिर्धारण कठिन है। फिर भी सत्य, अहिंसा, प्रेम, त्याग, करूणा दयाभाव आदि अनेक नैतिक मूल्य है जो देश काल की सीमा से परे है। इन्हें नैसर्गिक अथवा सनातन मूल्य कहना अंसगत नही होगा। विभिन्न देश और सभ्यताएँ अनेक नैतिक मूल्यों की बात करते है। किन्तु मैं श्री सत्यसाई बाबा के कथन को उद्धृत करूगाँ।

That the world is affected with 7 kinds of diseases. Business without principles. Politics without values, education without character, sustenance without sacrifice, harvest without labour, humanness without virtual and devotion without faith.

आज युग परिवर्तन हो गया है। अर्थशास्त्र ने सारी बात बदल दी है। पहले Necessity is the mother of invention था। आज Invention is

the mother of necessity हो गया है। You invent something and create a demand in the market.

मानव मूल्य में संकट के कारण

आज एक सामान्य आदमी की धारणा है कि ईमानदारी से मेहनत करके श्रमजीवी पिस रहे है और झूठ तथा फरेब का रोजगार करने वाले फल फूल रहे है। ईमानदार को मूर्ख एवं सच्चे को भीरू या विवश समझा जाता है। ऐसे माहौल में जीवन के नौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति लोगो की आस्था डिगने लगी है। जीवन के महान मूल्यों में गिरावट आई है, इसमें सन्देह नहीं। इस गिरावट के अनेक कारण गिनाये जा सकते हैं। तथाकथित आधुनिकता, पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण, अनीश्वरवाद, अनेक वैज्ञानिक उपकरणों की खोज, तर्कप्रधान चिन्तन, पार्थिव मूल्यों के प्रति अप्रत्याशित मोह आदि। मानव मूल्यों में संकट के कतिपय अन्य कारण इस प्रकार गिनाये जा सकते हैं।

(1) डार्विन के विकासवाद के प्रभाव के कारण आध्यात्मिक एवं आस्था की भावना का क्रमशः क्षीण होना।

(2) मानव जीवन में आस्था और श्रद्धा की अपेक्षा तर्क एवं बोद्धिकता का आधिक्य।

(3) आधुनिक दर्शन एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में मार्क्सवाद, फ्रायडवाद, व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद इत्यादि का अधिक प्रचार प्रसार।

(4) विज्ञान एवं तकनीकी के विकास के साथ अधिक जटिल एवं घातक अस्त्रों का निर्माण।

(5) शस्त्रों की होड के कारण, तथा बहुविध आतंकवाद के कारण असुरक्षा की बढती हुई भावना।

(6) विगत दशकों में हुई औद्योगिक प्रगति के कारण भौतिक दृष्टि का विकास।

(7) कृत्रिम यौनाचार को बढावा देने वालो वैज्ञानिक उपकरणों एव पद्धतियों का आविष्कार

मानव मूल्यों में संकट का समाधान

मिल जोन्स जैसे नीतिशास्त्रियों ने उपयोगितावादी दृष्टिकोण से अधिकों का हित को सद्सत् की कसौटी माना है तो काण्ट जैसे दार्शनिक ने मानव को ईश्वरकी सर्वश्रेष्ठ कृति मानते हुए मानव को अपने आप में साक्ष्य माना है – कि मानव से बढकर इस संसार में दूसरी कोई श्रेष्ठ वस्तु है ही नही (''नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्'' – महाभारत) महावीर, कबीर, नानक, गान्धी आदि आदर्शवादी महापुरूष मानव कल्याण को ही सद्सत् की कसौटी मानते है। श्रीमद् भगवत् गीता हमें कर्मो में अनासक्ति का अनुठा उपदेश देती है। हमारे उपनिषदों में श्रेय और प्रेय का विशद् विवेचन मिलता है। वेदों के ऋषियों से लेकर बिनोभा तक, ईसामसीह से लेकर मार्टिन लुथर किंग तक, सुकरात से लेकर पोप तक जितने भी विचारक हुए। उन्होंने अपने दृष्टिकोण से नैतिक जीवन के प्रमापों का निर्धारण किया।

शैक्षिक क्षेत्र में मूल्य संकट एवं संभव समाधान

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने बहुआयामी होने के कारण मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। हमारी शिक्षा पद्धति भी इससे अछूती नहीं है। वर्तमान में शिक्षा जो हमारे विचार जीवन शैली, मानसिकता और चरित्र के निर्माण के लिए आवश्यक है, अपने उद्देश्यों से भटक गई है। शिक्षा का उद्देश्य केवल विद्वान बनाना नहीं बल्कि ऐसा होना चाहिए कि व्यक्ति वर्तमान संघर्षपूर्ण वातावरण में अपने अस्तित्व को पहचानने में समर्थ हो सके। वास्तव में मूल्यपरक शिक्षा ही व्यक्ति को सामाजिक परिवर्तन के साथ विविध रूपों को समझने मे सक्षम बना

सकती है। तथा नैतिकता, निर्णय क्षमता व मूल्यों के प्रति उनकी आस्था को मूल्यपरक बनाकर ही विद्यार्थी के भविष्य को सुरक्षित किया जा सकता है।

संभव समाधान

विद्यालयों में मूल्य का विकास शिक्षक तीन तरह से निभा सकता है। प्रथम तो यह कि जो विषय वह पढाता है उसी के साथ वह मूल्य और आदर्शो का सृजन कर सकता है। प्रत्येक विषय के अपने अलग-अलग मानक और मूल्य होते हैं। शिक्षक उस विषय से संबन्धित मूल्य विकसित करें और छात्रों में जागरूकता एवं नैतिकता विकसित करें। द्वितीय, शिक्षक छात्र को विवेकशील आदर्श नागरिक बनाने में सहायता कर सकता हैं। तृतीय और सबसे महत्वपूर्ण यह है कि शिक्षक का व्यक्तिगत आचरण, व्यवहार और आदतें ऐसी हो जो छात्रों में मूल्य विकसित करनें में सहायक हो।

इसके अतिरिक्त अध्यापक शिक्षा में मूल्यशिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए निम्न विषय प्रति विशेष ध्यान देना चाहिए।

(1) छात्रों में मूल्य- विमुखता को नियन्त्रित करने के लिए उच्च शिक्षा संस्थाओं को रूचि लेनी चाहिए। शिक्षक अपने परंपरागत कार्य को पूरा करके ही अपने दायित्वों की इतिश्री न समझ ले क्योंकि शिक्षक को ही सोचना है कि वर्तमान भारतीय समाज की आवश्यकताओं और विशेषताओं के सन्दर्भ में वह किस प्रकार अपने शिक्षण कार्य को मूल्य शिक्षण की दृष्टि से उपयोगी और बना सकते है।

(2) शिक्षा तन्त्र का संपूर्ण ताना बाना शिक्षक और शिक्षार्थी के संबन्धों पर आधारित होता है। शिक्षक का प्रयास होना चाहिए कि इन संबन्धों की सहायता से छात्रों को ऐसी दिशा दिखाऐं जिससे कि विरोधी मूल्यों की पहचान कर सके तथा

वे मूल्य विश्लेषण, स्पष्टीकरण, चिन्तन व चर्चा में सक्रिय भाग लेकर अपने मूल्यों को स्वरूप प्रदान कर सकें।

(3) शिक्षक को आधुनिकीकरण तथा सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में मूल्यों की पर्याप्त जानकारी और उनके प्रति पूर्ण आस्था होनी चाहिए। साथ ही शिक्षक को पूर्ण स्वाधीनता होनी चाहिए। शिक्षक की स्वाधीनता का अर्थ है कि उसे अपनी कक्षा में विषय वस्तु और शिक्षणपद्धति दोनों से संबन्धित परीक्षण करने, शिक्षण-व्यवसाय में व्यवसायिक चुनाव करने तथा सोचने और अपने विचारों कों व्यक्त करने की पूर्ण स्वाधीनता हो।

(4) शिक्षक को मूल्य शिक्षण के उत्तरदायी बनाने के साथ साथ उन्हें पाठ्यक्रम तैयार करने के संबन्ध में अधिक स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए। शिक्षक को उनके द्वारा तैयार किए गए पाठ्यक्रमों को निर्माण से संबंन्धित अकादमिक स्वायत्तता (Academic autonomy) प्रदान कर उनको मूल्य शिक्षण के परिप्रेक्ष्य में शक्ति संपन्न बनाया जा सकता है।

(5) शिक्षकों को चाहिए कि छात्रों में मूल्य अन्तर्द्वन्दों को रोकने के लिए अभिभावकों की भी सहायता लें।

(6) पाठ्य सहगामी क्रियाओं के माध्यम से मूल्यसंकट दर्शाने वाले क्षेत्रों की समस्याओं उनके समाधान और समाधानों के प्रत्येक परिणामों पर छात्रों के मध्य विचार विमार्श का वातावरण बनाया जाना आवश्यक है। मूल्यसंकट या मूल्य दुविधा की परिस्थितियों से संबन्धित विषयों पर वाद-विवाद व निबन्ध लेखन प्रतियोगिताएँ आयोजित की जानी चाहिए। छात्रों को मूल्य चर्चा हेतु विशेषज्ञ वक्ता उपलब्ध कराया जाना चाहिए। विभिन्न सामाजिक व राजनैतिक समस्याओं

पर खुला मंच का आयोजन मूल्यों के विकास में उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(7) मूल्य शिक्षा देते समय सामाजिक उतरदायित्व पर बल देना चाहिए तथा यथर्थापरक स्थितियों में दी जानी चाहिए।

(8) वैश्वीकरण के युग में हमारे समाज की सीमाएँ अन्तर्राष्ट्रीय हो गई है। अत: मूल्यशिक्षण का दायित्व और भी बढ गया है। छात्रों की मूल्यपरक शिक्षा उनके विशिष्ट सामाजिक तथा सांस्कृतिक सन्दर्भो से जुडी होनी चाहिए और विश्वजनीन व शाश्वत मूल्यों से भी उसका संबन्ध होना चाहिए। वैज्ञानिक अभिवृत्ति, समानता, पर्यावरण संरक्षण, प्रजातंत्र, विश्व बन्धुत्व और धर्मनिरपेक्ष आदि मूल्यों की नितान्त आवश्यकता है।

(9) शिक्षकों के सामाजिक व व्यवसायिक उत्तरदाायित्वों को ध्यान में रखते हुए उनकी कार्यदशाओं में सुधार किया जाए। जवाबदेही के मानकों का निर्धारण किया जाए व अच्छे निष्पादन के लिए प्रोत्साहन दिया जाए।

(10) नोट्स लिखाने से मूल्य-शिक्षा कभी सार्थक नहीं हो सकती। विकास के उच्चतम स्तर पर शिक्षक को दैनिक बातचीत तथा दैनिक पुस्तक पठन विधियों को प्रयोग में लानी चाहिए।

(11) यह अनुभव किया है कि उच्च- शिक्षा स्तर पर मूल्य शिक्षण हेतु विशेषज्ञ कौशलों और शिक्षण संव्यूहन की आवश्यकता है। इसलिए समय-समय पर orientation course के माध्यम से शिक्षक को अवसर देने चाहिए।

(12) पाठ्यचर्या में मूल्यों की अदृश्य पाठ्यचर्या होती है। शिक्षा का संबन्ध मात्रा विशुद्ध सूचना व ज्ञान से ही नहीं बल्कि

ऐसे मूल्यों के विकास से भी है, जो समाज के लिए अर्थपूर्ण हो, जिनका लोगों के जीवन और कार्य से सरोकार हो, अर्थपूर्ण और उपयोगी हो। एक शिक्षक के लिए आवश्यक है कि मूल्यों की संकल्पना, मूल्यों की प्रकृति, मूल्यों के प्रकार, मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया, मूल्यों के लक्षण, मूल्यों के सापेक्षिक महत्व मूल्य तन्त्र तथा मूल्य द्वन्द से भली-भाँति परिचित हों।

इस प्रकार समाज को अगर आगे बढना है तो मूल्यों (values) के प्रश्न पर शिक्षक के माध्यम से ही विद्यार्थी के मस्तिष्क को प्रभावित किया जा सकता है। व्यवसायिक उत्तरदाायित्व की दृष्टि से शिक्षक की समाज में एक विशेष स्थिति है। एक निष्ठावान अध्यापक ही समाज का निष्पक्ष समालोचक हो सकता है। हम शिक्षकों को अपना आत्मनिरीक्षण कर, अपने मूल्यों में कमी का अवलोकन कर उच्चतम स्तर का निर्धारण करना चाहिए। नौतिकमूल्यों से ऐसा शिक्षक ही अपने आचार और व्यवहार सं समाज के लिए एक आदर्श स्थापित कर सकेगा। शिक्षकों को अपने स्वयं के लिए एक आदर्श आचार संहिता (code of ethics) का निर्माण करना चाहिए, जिससे वे पूरी तरह से जुड सकें और शिक्षक संगठनों को भी हर स्तर पर इसका पालन करना चाहिए। अन्त में रवीन्द्र नाथ टैगोर के इस कथन के साथ में अपना पत्र समाप्त करना चाहूँगा।

" A lamp can never light another lamp,

unless it continues to burn its own flame,

A teacher can never truly teach,

unless he is still learning in himself."

सन्दर्भ

1. ड़ाँ रामशकल पांडेय, डाँ करूणा मिश्र, मूल्य शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

2. ए. शर्मा, सोशियोमेट्री: ए हैंडबुक फार टीचर्स एंड काउंसलर्स, नई दिल्ली, एनसीईआरटी, 1995.
3. टी.बी. माथुर, मूल्यपरक शिक्षा, रीजनल कॉलेज ऑफ एजुकेशन, विस्तार सेवा विभाग, अजमेर, 1998.
4. शिक्षा की चुनौतियाँ: नीतिगत परिप्रेक्ष्य, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1986.

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्यमीमांसा

डॉ. लोकेश
शोधछात्र

शिक्षा शब्द अंग्रेजी भाषा के एजुकेशन Education नामक शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। एजुकेशन Education शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के एडुकेटम Educatum शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है शिक्षित करना। इ E का अर्थ है अन्दर से, एवं डूको Duco का अर्थ है आगे बढ़ाना। ।अतः शिक्षा अथवा एजुकेशन का अर्थ है अर्न्तनिहित शक्तियों का बाहर की ओर सर्वांगीण विकास करना है। सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'अमरकोष' से स्पष्ट होता है कि शिक्षा वेदांगों में से एक का नाम है। उसमें लिखा है–

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरूक्तं ज्योतिषांगति;

छन्दो विर्चित्तिरत्वेष षडंगो उच्यते।।

शिक्षा शब्द की उत्पत्ति शिक्ष धातु से हुई है, जिसका अर्थ है, विद्या ग्रहण करना ज्ञानार्जन करना परन्तु व्यापक अर्थ में शिक्षा जन्म पर्यन्त चलने वाली स्वाभाविक प्रक्रिया है। वास्तव में यह कहना सत्य है कि कहने से करना अधिक प्रभावशाली है। घर-परिवार में माता-पिता क्या कहते है, और क्या करते है। उनका कर्ता पक्ष बालको को अधिक प्रभावित करता है। इसी प्रकार एक शिक्षक कक्षा में जो उपदेश देता है उसकी अपेक्षा जो आचरण करता है उसका बालकों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। जिससे स्पष्ट होता है कि मूल्यों के विकास के लिए शिक्षा में अध्यापक की एक

अहम भूमिका है तथा एक शिक्षक का यह परम कर्तव्य है कि वह उच्च आदर्शों का आचरण करें। मनु ने शिक्षक को ब्रह्म की छाया बताया है। शिक्षक को ब्रह्मा सृजनकर्ता, विष्णु तथा महेश्वर कहा गया है और शिक्षक को संसार में सर्वपूज्य माना गया है।

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरूः साक्षात्परब्रह्म तस्मैः श्री गुरूवे नमः।।

रविन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षक को एक जलते हुए दीपक की उपमा दी है और कहा है कि–एक शिक्षक जलते हुए दीपक के समान है जो अन्य दीपको को प्रज्वलित कर सकता है। हुमायुँ कबीर ने कहा है कि–शिक्षक एक राष्ट्र का निर्माता है। कोठारी आयोग ने अपने प्रथम वाक्य में ही कहा है कि–भारत के भाग्य का निर्माण कक्षाओं में हो रहा है। एडम ने शिक्षक को एक मनुष्य निर्माता कहा है तथा एच जी वेल्स ने शिक्षक को मानव इतिहास का निर्माता कहा है।

मूल्य के विचार का अध्ययन करने के लिए दर्शनशास्त्र की एक अलग शाखा है जिसको मूल्यमीमांसा Axiology कहते है। Axiology शब्द दो शब्दों के मेल से बना है Axios जिसका यूनानी भाषा में अर्थ है मान्य Worthy तथा Logy जिसका अर्थ विज्ञान होता है। Axiology उसका अध्ययन करता है। जो लोगों द्वारा मान्य हो या जिसकी कीमत हो। वह मूल्य के प्रत्यय का अध्ययन करता है। मूल्य मीमांसा के क्षेत्र में मूल्य के विचार के बारे में सभी समस्याओं का समाधान ढूंढा जाता है। तर्कशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र तथा नीतिशास्त्र मूल्य मीमांसा के अधीन है, क्योंकि ये तीनों विज्ञान मूल रूप में एक न एक मूल्य का अध्ययन अवश्य करते है। तर्कशास्त्र सत्य की खोज करता है तथा उसके मापदंड तैयार करता है। सौन्दर्यशास्त्र सुन्दरता के मूल्य का अध्ययन करता है। नीतिशास्त्र भलाई के मूल्य का स्वरूप जानने का यत्न करता है। सत्यं, सुन्दरं तथा शुभं Truth, Beauty, Goodness को जीवन के परम मूल्य कहा गया है।

प्लेटो Plato इनको सबसे उच्च मूल्य सिद्ध करता है तथा सभी वस्तुओं व मूल्यों को इनके अधीन मानता है।

रथ, हर्मिन व साइमन के अनुसार–जब तक कोई बात निम्न सात मापदण्डों पर खरी नहीं उतरती तब तक हम उसे मूल्य की संज्ञा नहीं दे सकते।

जब व्यक्ति मूल्यों को स्वयं चुनता है तब वह उन्हें महत्वपूर्ण मानने के लिए अधिक प्रयत्नशील रहता है तथा वह शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों की अनुपस्थिति में भी मूल्य आधारित आचरण करता रहता है। अर्थात् व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करने वाले मूल्य व्यक्ति के स्वतंत्र चयन के परिणाम स्वरूप स्थापित होने चाहिए।

व्यक्ति मूल्य स्वयं चुनता है। यदि चुनने के लिए व्यक्ति के सम्मुख विकल्प न हों तो कुछ भी सार्थक चयन संभव नहीं है। जब व्यक्ति के सामने एक से अधिक विकल्प होते है तथा वह उनमें से किसी एक को चुनने के लिए स्वतंत्र होता है।

अनेक बार हम क्षणिक आवेग में आकर या चिंतन-मनन किये बिना मूल्य चुन लेते है। इस चयन को विवेकपूर्ण नहीं माना जा सकता। अत: चयन से पूर्व व्यक्ति को प्रत्येक विकल्प के परिणामों को स्पष्ट रूप से समझने की कोशिश करनी चाहिए।

जब हम किसी वस्तु, विचार आदि को महत्व देते है तब हमें प्रसन्नता होती है तथा सुखद भाव उत्पन्न होते है। हमें उससे अत्यधिक लगाव महसूस होने लगता है तथा उसका आदर व सम्मान करते है। हम मूल्यों की कदर करते हैं तथा मूल्य आधारित व्यवहार करने में हमें खुशी होती हैं।

जब हम अनेक विकल्पों पर पर्याप्त विचार करने के बाद स्वतंत्रतापूर्वक चयन करते हैं तथा अपने आदर्श के चयन पर हमें गर्व होता है, तब आवश्यकता पडने पर हम दृढ़तापूर्वक अपने चयन की पुष्टि कर सकते

हैं। अर्थात् हम अपने मूल्यों को दृढतापूर्वक सार्वजनिक रूप से स्वीकार करें।

मूल्य जीवन को प्रभावित करते है, वे हमारे विभिन्न दैनिक व्यवहारों में मूल्य परिलक्षित होते है। हम प्रतिकूल परिस्थिति में भी स्वयं के द्वारा महत्वपूर्ण मानी गई बातों के बारे में अध्ययन करते है तथा उन पर समय, धन व शक्ति खर्च करते है। हमें उन समूहों व संगठनों का सदस्य बनना अच्छा लगता है जिनमें हमारे मूल्य पोषित होते हों।

मूल्यों में स्थायित्व होता है। इनसे एक जीवन प्रतिमान बनता है। जब मूल्य चयनित व निर्धारित हो जाते है, तब जीवन में अनेक विविध परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न समय पर उनकी अभिव्यक्ति ही होती है।

प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उस समय सैद्धान्तिक विषयों की अपेक्षा, शिक्षा में प्रयोग पक्ष पर विशेष बल दिया जाता था। तत्कालीन आश्रमों में छात्र संख्या न्यून होने के कारण अध्यापक व्यक्तिगत रूप से सभी छात्रों पर ध्यान दिया करते थे। अध्ययन-अध्यापन के लिए कृत प्रतिज्ञ उच्च कक्षाओं के अग्रिम छात्रों या नायकों द्वारा निम्न कक्षाओं के छात्रों को शिक्षा देने की यह प्रणाली, ''कक्षा नायकीय पद्धति'' कहलाती थी।

मुस्लिम काल में सम्राट अकबर के अतिरिक्त अन्य किसी भी शासक ने शिक्षा में रुचि की अभिव्यक्ति नहीं की, केवल दो ही उद्देश्यों को लेकर इस काल की शासन प्रणाली में ले कर चला गया–इस्लाम धर्म का प्रचार, एवं हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए अपने धर्म व संस्कृति से सम्बन्धित शिक्षा देना। अतः मुस्लिम काल में शिक्षक प्रशिक्षण नाम की कोई योजना नहीं थी।

ब्रिटिश काल में ईसाई मिशनरियों द्वारा भारत में सन् 1716 में ट्रान्क्यूबर में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए सर्वप्रथम प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय स्थापित किया गया। इसके पश्चात् 1793 में शेरामपुर

में एक और प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना की। इसके उपरान्त सन् 1815 में बम्बई और 1819 में बंगाल में, 1826 में मद्रास में शिक्षकों के प्रशिक्षण का कार्य प्रारम्भ हुआ।

1854 में 'वुड के आदेश पत्र' ने भी इस बात पर बल दिया कि प्रत्येक प्रान्त में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय का शीघ्र ही शिलान्यास किया जाये। जिसके फलस्वरूप 1882 तक सम्पूर्ण देश में 106 शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना हुई। हन्टर कमीशन, राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर आयोग, कोठारी कमीशन एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के परिणाम स्वरूप देश के विभिन्न राज्यों के प्रत्येक जिले में शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की गई।

डॉ. एस एन मुखर्जी के अनुसार इस समय भारत वर्ष में निम्नलिखित आठ प्रकार की शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ है–

1. पूर्व प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ।
2. प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय।
3. उपस्नातकों के लिए शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय।
4. स्नातकों के लिए शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय।
5. शिक्षक प्रशिक्षण के प्रादेशिक कालेज।
6. शिक्षक प्रशिक्षण के राज्य संस्थान।
7. शिक्षक प्रशिक्षण के पत्राचार पाठ्यक्रम केन्द्र।
8. विशेषज्ञ शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र।

शिक्षक शिक्षा के कार्यक्रमों का सारतत्व उसका गुण या श्रेष्ठता है। यदि श्रेष्ठता का अभाव है तो वह न केवल आर्थिक अपव्यय ही नहीं अपितु विद्यालय के समस्त स्तरों के पतन का कारण बन जाती है। राष्ट्रीय

शिक्षा नीति 1986 के अथक प्रयास से पिछले कुछ वर्षो में शिक्षक शिक्षा का तीव्र विकास हुआ है। एन सी टी ई द्वारा प्रस्तावित उपरोक्त आठ विभिन्न स्तरीय शिक्षा पाठ्यक्रम में से प्राथमिक शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम की रूपरेखा निम्न चार बिन्दुओं के माध्यम से प्रस्तुत की जा रही है।

इस स्तर के शिक्षण प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की बाह्य रूपरेखा को प्रस्तुत किया है। यह पाठ्यक्रम प्रदर्शन भी भिन्न-भिन्न क्षेत्रों एवं स्थानों में थोड़ी बहुत भिन्नता को प्रदर्शित करते हुए भी एन सी टी ई को अंगीकार करके ही बने है। इसलिए प्रस्तुत पाठ्यक्रम के विभिन्न क्षेत्रों पर निर्धारित पाठ्य विषयों की व्याख्या में निम्नलिखित मूल्य स्पष्ट होते हैं।

1. अध्ययन का आधार—इसके अन्तर्गत भी दोप्रकार के पाठ्य विषयों को स्थान दिया गया है—प्रथम प्रकरण भारतीय प्राचीन शिक्षा का अध्ययन है। जिसके शिक्षण से दया, ईमानदारी, सहानुभूति, नम्रता आदि भावनाओं का विकास सम्भव हो सकता है। इन मूल्य परक भावनाओं को वर्गीकृत भाग सामाजिक मूल्यों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

द्वितीय प्रकरण छात्र विकास एवं सामंजस्य के अध्ययन द्वारा साहस, आत्मविश्वास, प्रेम, समर्पण आदि मूल्य परक भावनाओं का विकास सम्भव हो सकता है। इन मूल्यों को वर्गीकृत भाग सांवेगिक मूल्यों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। अत: हमारे विचार से आधार अध्ययन क्षेत्र के पाठ्य विषयों के माध्यम से सामाजिक मूल्य एवं सांवेगिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

2. स्तर के अनुरूप विशिष्टीकरण—इस क्षेत्र के पाठ्यक्रम के माध्यम से प्राथमिक स्तर के छात्रों के विकास एवं उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्य सामग्री को स्थान प्रदान किया गया है। जो निम्नवत है—

1. प्रारम्भिक शिक्षा और शिक्षक द्वारा आत्मशक्ति, आत्मविश्वास, प्रशासकीय आदि मूल्य परक भावनाओं का विकास सम्भव हो सकता है।

जिन्हें बौद्धिक मूल्यों में स्थान दिया जा सकता है।

2. दूसरे अन्य विषयों जैसे 'भाषा शिक्षण' संख्या शिक्षण एवं वातावरणीय शिक्षण के अध्ययन से प्रशिक्षणार्थियों का विकास हो सकता है। जिन्हें बौद्धिक एवं सांवेगिक मूल्यों की संज्ञा प्रदान की जा सकती है।

3. इस क्षेत्र में स्वास्थ्य, कला, शिक्षा एवं कार्य अनुभव विषय के शिक्षण द्वारा स्वास्थ्य, शक्ति, सहनशक्ति, अनुशासन आदि भावनाओं का विकास हो सकता है। जिन्हें शारीरिक मूल्यों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस प्रकार मेरे विचार से स्तर के अनुरूप विशिष्टीकरण क्षेत्र की पाठ्यसामग्री के माध्यम से बौद्धिक, सांस्कृतिक एवं शारीरिक मूल्यों का विकास सम्भव हो सकता है।

3. विशेष विशिष्टीकरण–प्रस्तुत पाठ्यक्रम से इस क्षेत्र में विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान शिक्षक तथा प्रौढ शिक्षा, औपचारिक शिक्षा, शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा, शिक्षा प्रकरणों के माध्यम से सम्भवतः दया, नम्रता, समर्पण, प्रेम, विश्वास आदि मूल्यपरक भावनाओं का विकास सम्भव हो सकता है। इन मूल्यों को सामाजिक व नैतिक मूल्यों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

4. व्यावहारिक एवं क्षेत्रीय कार्य–इस क्षेत्र के व्यावहारिक कार्य और क्षेत्रीय कार्य के माध्यम से शुद्धता, संयमितता, उदासीनता, विचारशक्ति आदि मूल्यपरक भावनाओं का विकास सम्भव हो सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यावहारिक एवं क्षेत्रीय कार्य के माध्यम से प्रशिक्षणार्थियों में बौद्धिक क्षमताओं का विकास किया जा सकता है।

संदर्भ

1. शर्मा आर.ए. शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार, प्रकाशक–विनय रखेजा, आर लाल बुक डिपो मेरठ
2. पाण्डे के पी एवं सक्सेना, शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजशास्त्रीय

आधार प्रकाशक, लाल बुक डिपो मेरठ

3. शर्मा स्नेह लता, शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम एवं मूल्यपरक शिक्षा, लघु शोध प्रबन्ध, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ

4. मल्होत्रा एल पी, एजूकेशन ऑफ सोशल वेल्यू एण्ड सोशल वर्क, एन सी ई आर टी, अरविन्द मार्ग नई दिल्ली

5. रूहेला एस पी, ह्यूमन वेल्यू एण्ड एजूकेशन, सटेरलिंग पब्लिशिंग प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली

समाज में मूल्यों का परिवर्तमान परिदृश्य

मायाराम उनियाल
शोधछात्र

शिक्षा की प्रक्रिया अनादि काल से सर्वाङ्गीण विकास हेतु उद्‌विकसित होती रही है। शिक्षा का मानव जीवन में विशिष्ट स्थान है। शिक्षा मानव में निहित असीम ज्ञान के भण्डार के आवरण को हटाकर उसके प्रकटीकरण द्वारा आत्मा की शक्ति को प्रकाशित करती है। शिक्षा मनुष्य के चारित्रिक बल, मानसिक बल एवं बुद्धि के विकास द्वारा उसे सही अर्थों में मानव बनाकर उसे समाज में रहने लायक बनाती है। यह शिक्षा ही है जो मानव को संस्कारवान बनाकर उसके वाञ्छित चरित्र एवं व्यक्तित्व के निर्माण द्वारा उन्नति सुनिश्चित करती है। भर्तृहरि ने भी 'विद्याविहीनः पशुः' कहकर शिक्षा के महत्त्व को रेखाङि्कत किया है कि किस प्रकार शिक्षा से रहित मानव, मानव होते हुए भी पशुवत् होकर धरती का बोझ ही बनता है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जो सामाजिक संस्कृति के हस्तांतरण एवं सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं को पुष्पित एवं पल्लवित करती है।

भारतीय समाज तीव्र संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। आधुनिकीकरण की अनिवार्यता और परम्परा के आग्रह से सम्पूर्ण सामाजिक परिदृश्य परिवर्तित हो रहा है। सभ्यता के विकास के साथ ही मनुष्य की आवश्यकतायें, लक्ष्य, महत्त्वाकांक्षाएं और प्राथमिकताएं परिवर्तित होती हैं जिससे सामाजिक संरचना, सामाजिक मूल्य, सामाजिक गतिविधियां, सामाजिक बन्धन और सामाजिक अन्तःक्रिया परिवर्तित होती है। समाज का यह

परिवर्तन यदि मन्द गति से होती है तो सामाजिक मूल्यों में निरन्तरता बनी रहती है, लेकिन जब जनसंख्या, प्रौद्योगिकी, आर्थिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक और राजनैतिक कारकों से उत्पन्न यह परिवर्तन तीव्र होती है तो समाज में बहुधर्मीय और बहुजातीय परम्परायें नए आग्रहों से टकराती है जिससे प्राचीन मूल्य खंडित होते हैं और नए मूल्यों को ग्रहण करने का आग्रह तीव्र होता जाता है।

इन परिस्थितियों के फलस्वरूप वस्तुतः हम उन धागों को तोड़ चुके है जो हमें अपनी जड़ों से जोड़े रखते थे, जो हमारी संस्कृति की पहचान थे। भारतीय संस्कृति ही 'आत्मवत् सर्वभूतेषू', 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे सिद्धान्त वाक्यों का जयघोष करती रही। इसी ने मनुष्य को पृथ्वी, पेड़, पौधों और प्राणिमात्र से प्रेम करना ही नहीं, उनकी पूजा भी करना सिखाया है।

किसी भी नवीन विकास के साथ सामान्यतः नवीन प्रश्नों का जन्म होता है, नई गुत्थियाँ उपस्थित होती हैं, नये आयाम खुलते हैं। शिक्षा-शास्त्र के अन्तर्गत उपरोक्त प्रयोगों ने अध्यापन परिस्थिति के एक दूसरे महत्त्वपूर्ण आयाम विद्यार्थी-समूह पर भी एक नया प्रकाश डाला। एक तो देखा गया कि अध्यापन के आयाम में एकरूपता होने पर भी एक विद्यार्थी के सीखने के स्वरूप में समानता नहीं, उसके सीखने की प्रकृति, गति-मात्रा, सीखने के प्रति उपागम, सीखने के स्वरूप परिणाम में अनोखी भिन्नता पाई गई, फलस्वरूप सीखने के प्रक्रम की ओर शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित हुआ। अभी तक अध्यापक-शिक्षा में केवल अध्यापन शास्त्र पर ही शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों का ध्यान केन्द्रित था। अध्यापन के मनोविज्ञान से आगे बढ़कर अब वे सीखने के मनोविज्ञान की ओर उन्मुख हुए।

लेकिन आज समाज में इस प्रकार की सहिष्णुता और उदारता के मूल्यों का क्षरण हो रहा है और समाज में असहिष्णुता, हिंसा, कुठा और आकुलता पनप रही है। प्राचीन शिक्षण परम्परा को प्रदूषण से दूर रखा जाता था चाहे वह किसी भी प्रकार का प्रदूषण हो। आज के समय में

दिन-प्रतिदिन इन विद्या केन्द्रों पर राजनीति और राजनेताओं का प्रभुत्व बढता जा रहा है। राजनीति के दूषित दलदल से पवित्र ज्ञानगंगा मैली होती जा रही है। शासन सत्ता पर बोझ तन्त्र बिना किसी कारण के ऐसे नियमों को लागू कर देता है जो शिक्षा के मूल स्वरूप पर ही कुठाराघात करते हैं। इस प्रकार की दुर्व्यवस्था के कारण शिक्षा संस्थाओं में अध्ययन-अध्यापन गौण होता जा रहा है।

मूल्यों का पोषण और संवर्धन वास्तव में इस बात पर निर्भर करता है कि हम किसी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में रह रहे हैं। महाभारत काल में एक झूठ बोलने पर युधिष्ठिर जी को अनेक आत्म-द्वन्द्व से गुजरना पड़ा था।

इन सब बातों के बाद भी हम आज भी अपनी अस्मिता के लिए विश्व में पहचाने जाते हैं। मूल्यों के परिवर्तन में सब कुछ निषेधात्मक नहीं है बहुत से सकारात्मक तत्त्व भी मूल्यों के परिवर्तन से समाज में शामिल हुए हैं—व्यक्ति को अपनी अस्मिता का एहसास, सम्बन्धों में पारदर्शिता, एक-दूसरे की स्वतन्त्रता और स्वायत्तता की स्वीकृति आदि ऐसे जीवन मूल्य हैं जिन्होंने रूढिगत मानसिकता को त्यागकर मानवता के धरातल पर रखकर अन्त:सम्बन्धों को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया। बढती हुई सामाजिक गतिशीलता ने संवाद को सहज बनाया, जिससे परस्पर सौहार्द की भावना उद्‌भावित हुई। आज की यह सभी परिस्थितियां बौद्धिक संकट के कारण पैदा हुई हैं। बिना मानसिक पुनर्जागरण या वैचारिक क्रान्ति के नई अवधारणा, नये मूल्यों और आदर्शों की प्रतिस्थापना नहीं कर सकते।

सहायक ग्रन्थ

1. आहूजा, राम, भारतीय सामाजिक व्यवस्था (2004), रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, राज.

2. दुबे, श्यामाचरण, भारतीय ग्राम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

3. डागर, बी, एस., शिक्षा तथा मानव मूल्य, हरियाणा साहित्य

अकादमी, चंडीगढ़ दुबे, श्यामाचरण, समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

4. पाण्डेय, डॉ. रामशकल, मूल्य शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

शिक्षा और मानवमूल्य

दीपा रानी
शोधार्थी

मूल्य सृष्टि के अभिन्न अंग हैं। मूल्यविहीन प्राणी अर्थ तथा काम का चलता-फिरता पुतला है। शिक्षा जब तक शाश्वत मूल्यों का वितरण करती रही तब तक ज्ञान, उदारता, प्रेम, साहस, शक्ति और विनय भारतवासियों के चरित्र के लक्षण रहे। जब से जीवन मूल्यों का शिक्षा से बिछोह हुआ है तब से देशवासी धर्मभ्रष्ट तथा लक्ष्यभ्रष्ट हो चुके हैं। वह अध्यापक जो प्राचीनकाल में अपने अन्तस् में विद्यमान ज्ञान को शिष्य में तिरोहित करना अपना परमपुनीत कर्तव्य समझता था। उसके समक्ष इस प्रकार की समस्याओं की उपस्थिति वास्तव में चिन्तनीय है। जिसका यथाशीघ्र निदान करना अत्यंत आवश्यक है। क्योंकि उत्तम अध्यापक के बिना मानव, समाज, राष्ट्र या विश्व के कल्याण की कल्पना नहीं की जा सकती है। व्यक्ति के मूल्य इस बात का दर्पण होते हैं कि वे अपनी सीमित शक्ति एवं समय में क्या करना चाहते हैं। जीवन के पथ प्रदर्शक के रूप में मूल्य अनुभवों के साथ-साथ अधिक परिपक्व होते जाते हैं। किसी भी व्यक्ति का व्यवहार उसके मूल्यों का प्रतिबिम्ब होता है। मूल्यविहीन जीवन निरर्थक होता है। मूल्य ऐसे सद्गुणों का समावेश है जिसे अपनाकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर समाज में प्रभावशाली तथा विश्वसनीय बनकर उभरता है। इस मूल्य में मानव की धारणायें, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति एवं आस्था आदि निहीत होते हैं। सामान्य रूप से मूल्य व्यक्ति की रुचियों, प्रेरणाओं एवं अभिवृत्तियों की

ओर इंगित करते हैं। मूल्यों की दार्शनिक परिभाषा इसे भावना, संवेग, रूचियों एवं अरूचियों के सन्दर्भ में स्वीकार करती है।

जीवन में नैतिक मूल्यों का ह्रास से आज सारा देश चिन्तित है। देश के कई महापुरुषों ने मूल्य शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है। मूल्यों की शिक्षा प्रदान करने के लिए व्यावहारिक दृष्टि से मूल्यों को वैयक्तिक तथा सामाजिक दो भागों में बांटा गया है।

स्वच्छता, श्रमनिष्ठा, अध्यवसाय, समयपालन, नियमितता, प्रामाणिकता, सौन्दर्यबोध, विजयाकांक्षा, साहस, आत्मनिर्भरता, विवेकशीलता, आशावादिता, सत्यान्वेषण, दृढ़संकल्प, धृति, व्यवस्था, प्रियता एवं आत्मबोध आदि वैयक्तिक मूल्य हैं। इनके विकास के लिए सतत प्रयास किये जाने चाहिए।

धार्मिक भावनाओं की अभिवृद्धि के लिए धर्माचार्यों ने संस्कारों का प्रतिपादन किया है। संस्कारसम्पन्न प्राणी में ही परार्थहित की सामाजिक भावना विकसित हो सकती है जिसके लिए प्रारम्भिक पाठशाला पारिवारिक परिप्रेक्ष्य है। जहां बालक अपने माता-पिता और ईष्ट जनों से आचार-विचार और सद्व्यवहार का प्रशिक्षण प्राप्त कर समर्पण की भावना से सत्कर्म में प्रवृत्त होता है। उसके बाद व्यक्ति न केवल अपने हितों को ध्यान में रखकर लौकिक-पारलौकिक संसाधनों को जुटाने का प्रयत्न करता है अपितु अन्य पारिवारिक जनों की सुख-सुविधा को ध्यान में रखते हुए उन्हें उनकी आवश्यकता के अनुरूप स्वच्छ वातावरण प्रदान करने का प्रयत्न करता है। इन्हीं कारणों से पारिवारिक परिप्रेक्ष्य बालक का प्रथम विद्यालय तथा अक्षरबोध कराने के कारण माता-पिता बालक के प्रथम गुरु कहे जाते हैं। कहा भी गया है–

'पितामाताऽऽग्निरात्मा गुरुश्च द्विजसत्तम'।।

हमारे महर्षियों ने राष्ट्र की कल्पना करने से पूर्व व्यक्ति के पारस्परिक सहयोग पर आधारित घर, समुदाय और समाज का मार्ग प्रशस्त किया है इसलिए महर्षियों ने विश्व राष्ट्र अथवा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अभिलाषा की है।

अत: निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीय परम्परागत शिक्षा मानव के मूल्यों के साथ उसके सर्वांगीण विकास पर बल देती है। अत: आवश्यकता है आज पुन: उसी प्राचीन भारतीय शिक्षा की ओर कुछ परिवर्तन को लेकर बढ़ने की। अर्थात् आधुनिकता की इस मांग को देखते हुए पुन: अपनी प्राचीन संस्कृति और शिक्षा को उसी रूप में वर्तमान समय में लाना कठिन होगा। इसलिए कुछ परिवर्तनों को लेकर ही हमें अपनी प्राचीन संस्कृति और शिक्षा की ओर लौटना होगा।

संदर्भ

1. त्यागी, जी. एस. डी., (1998) शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
2. श्री वास्तव, सुषमा, (2008) समाज में मूल्यों का परिवर्तमान परिदृश्य एवं उच्च शिक्षा, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
3. जै श्री, (2008) मूल्य, पर्यावरण और मानव अधिकार की शिक्षा, शिप्रा पब्लिकेशन विकास मार्ग दिल्ली
4. सिंह, रामपाल, शिक्षा में नव चिन्तन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
5. मिश्र, डॉ. लोकमान्य, (2013) भारतीय आधुनिकी शिक्षा, मृगाक्षी प्रकाशन, लखनऊ

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा में मूल्य मीमांसा की आवश्यकता

नितिन भाल
शोधच्छात्र

भारतवर्ष की पहचान अपनी उत्तम संस्कृति एवं मूल्यों के कारण होती है। हमारी संस्कृति सम्पन्न एवं मूल्य सारगर्भित है। मानवीय मूल्यों का आधार मानव कल्याण की कामना पर आधारित है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत्।।

किसी भी विषय का आधार या नींव अवश्य होती है। कोई भवन बिना नींव के नहीं बनता। हमारे मूल्यों की नींव अत्यन्त दृढ़ है। इसी सुश्लिष्ट दृढ़ता के कारण ही हमारे मूल्य आज भी सुरक्षित है। यद्यपि आज के समाज में हमारे प्राचीन मूल्य उसी रूप में विद्यमान नहीं है परन्तु उनका पूर्णतया ह्रास भी नहीं कहा जा सकता है समयानुसार कुछ नवीन मूल्यों का भी समायोजन होता चलता है।

मूल्यों का आकलन चाहे धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनैतिक किसी भी दृष्टि से किया जाए किन्तु सभी मूल्य हमारी संस्कृति के मूल आधार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों में आकर समाहित हो जाते है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है तथा समाज का लघु रूप विद्यालय को कहा जाता है विद्यालय शिक्षा को त्रिधुवीय प्रक्रिया से जाना जाता विद्यालय त्रिध्रुव के रूप में शिक्षक, शिक्षार्थी और पाठ्यक्रम को जाना जाता है। तथा इन तीनों ध्रुवो पर ही शिक्षा की पूरी व्यवस्था टिकी होती है क्योंकि विद्यालय में पढ़ने वाला ही बालक आगे देश का भविष्य निर्धारक होता है। इसलिए आवश्यक है कि आज की विद्यालय व्यवस्था को सुधारा जाये तथा समाज की आवश्यकता व देश के भविष्य को ध्यान में रखकर ही विद्यालय में उचित पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जाए। क्योंकि आज के समाज को मूल्य से युक्त व्यक्तियों की आवश्यकता है क्योंकि समाज में आज भ्रष्टाचार ने शिष्टाचार का रूप ले लिया है। शिष्टाचार ने विशिष्टाचार का जामा पहन लिया है। आज समाज को मनुष्यों में मनुष्यत्व की भावना पैदा करने की आवश्यकता है इसी सन्दर्भ में उर्दू भाषा में यू कहाँ गया है–

यूँ तो हजारों साल से है आदमी का वजूद।

निगाह अब भी तरसती है आदमी के लिए।।

आज के विद्यालय-विश्वविद्यालय ज्ञान के भंडार है किन्तु आज के विद्यार्थी अपने विकास के लिए शिक्षण संस्था में अपेक्षित ज्ञान नहीं ग्रहण करते है। इसलिए विद्यालय केवल ''स्टोर हाऊस'' बनकर ही रह गये है।

विद्यालय और विश्वविद्यालयों को ''स्टोर हाउस'' न बनाने की जगह इनको बालक के सर्वोत्तम व चहुमुखी विकास का स्थान बनाना है जिससे बालकों में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक व शारीरिक एवं मानसिक विकास हो सकें। इन सभी विकासों को बालकों में विकसित करने की प्रमुख जिम्मेदारी अध्यापक की होती है अत: आवश्यक है कि परिवर्तन मान शैक्षिक परिदृश्य में अध्यापकों में मूल्य मीमांसा के प्रति सजग व जागरूक करे। नहीं तो जैसा की पंक्तियों में कहाँ गया है–

ओ फिक्र कर बन्दे! तेरी मुसीबत आने वाली है।

तेरी बरबादियों के मशवरे है आसमानों में।।
न समझोगे तो मिट जाओगे हिन्दोस्ताँ वालो।
तुम्हारी दास्तां तक भी न होगी दास्तानों में।।

अतः आवश्यक है कि अध्यापक के द्वारा ही बालकों में मूल्यों का विकास किया जा सकता है इसलिए पूर्व में अध्यापकों मूल्य का विकास करना आवश्यक है क्योंकि मूल्यहीन सिद्धान्त उपयोगी नहीं होगे तथा मूल्यों को पढ़ाया नहीं जा सकता, किन्तु मूल्यों को सिखाया जा सकता है अतः मूल्य भी तभी सीखाये जा सकते है जब उनको आचरण में लाया जाए बिना आचरण में लाये मूल्यों को नहीं सिखाया जा सकता क्योंकि बालक अनुकरण के माध्यम से अधिक व शीघ्र सीखता है

अतः अध्यापकों में निम्न मूल्यमीमांसा शिक्षा की आवश्यकता है–

(1) उत्तम चरित्रवान–अध्यापक शिक्षा में उत्तम चरित्र की शिक्षा का अवश्य ध्यान रखना चाहिए क्योंकि उत्तम चरित्र के आचरण को देखकर ही छात्रों के द्वारा उसका अनुकरण किया जाएगा इसलिए अध्यापक सुसभ्य और सुचरित्र का परिचायक होना चाहिए।

(2) ज्ञान की प्रति जिज्ञासु–अध्यापक शिक्षा में उसे स्वाध्याय के प्रति जागरूक व जिज्ञासु प्रवृत्ति की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए जिससे वह छात्रों को स्वाध्याय के प्रति सजग रखे व नये से नये ज्ञान को प्रदान कर सके।

''नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते''

ज्ञान के समान इस संसार में पवित्र दूसरी चीज नहीं है।

(3) अध्यात्म की भावना–अध्यापक में अध्यात्म की भावना का होना परम आवश्यक है जिससे व छात्रों के मनो स्तर को ऊँचा उठा सके तथा अवगुणों को पहचानकर उनका निराकरण कर सके तथा ईश्वर कि सत्ता पर विश्वास जागृत कर, आचार्य देवो भवः, गुरु देवो भव, मातृदेवो

भवः, पितृदेवो भवः, अतिथि देवो भवः आदि अध्यात्मिक भावनाओं का विकास कर सकें।

(4) वसुधैव कटुम्बता की भावना–अध्यापक में वसुधैव कुटुम्बता की भावना की आवश्यकता है इससे बालकों में गुरु के प्रति मातृ व पितृ वत भावना जाग्रत होगी तथा संसार सभी प्राणियों के प्रति परिवार रूपी भावना का विकास होगा। इससे कल्याण की भावना का भी विकास होगा।

''आत्म मोक्षार्थ जगद्धितायं च''

अर्थात् अपने मोक्ष एवं जगत के कल्याण का भाव जाग्रत होगा।

(5) राष्ट्रप्रेम की भावना–अध्यापक शिक्षा में राष्ट्रप्रेम की शिक्षा की आवश्यकता है क्योंकि शिक्षण जब स्वयं अपने राष्ट्र के प्रति एक जिम्मेदार नागरिक की भूमिका निभायेगा तो छात्र उसका अनुकरण कर उसी भावना को विकसित करेंगे।

''ऊँ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवाव है। तेजस्वि नाव-धीतमस्तु। मा विद्विषावहै। ऊँ शान्तिः शान्तिः, शान्तिः।

(6) अपने कर्म व कार्य के प्रति उत्तरदायित्व–अध्यापक शिक्षा मूल्य मीमांसा में परम आवश्यक मूल्य है वह यह की अध्यापक अपने कर्त्तव्यों व कार्य के प्रति सदैव उत्तरदायित्व की भावना रखे तथा अपने कर्म के प्रति सजग रहे व अपने कार्य से प्रमाद न कर उसी में संलग्न रहकर ईमानदारी के साथ कार्य का निर्वाह करें। इसी का अनुकरण छात्र करेगे और छात्रों में कर्त्तव्य के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का विकास होगा।

निष्कर्ष–

अन्त में अपनी बात संक्षेप में कहूँगा–मूल्यहीन सिद्धान्त उपयोगी नहीं होते। इस अवधारणा पर विमर्श करना आवश्यक है मूल्यों को पढ़ाया नहीं जा सकता, किन्तु मूल्यों को सिखाया जा सकता है अतः मूल्यों को आचरण में लाने की आवश्यकता है।

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।''

ये तीन शब्द केवल अध्यापकों के तारीफ के शब्द नहीं है। एक आवश्यक गुणों के शब्द है जब ब्रह्मा की चर्चा करते है तो मानते है कि शिक्षक ज्ञान का सृजन करते है इसलिए वह ब्रह्मा का प्रतिरूप है जब वो ज्ञान के आचरण के रूप में शिक्षा देते है तो विष्णु का रूप होते है। जब वह ज्ञान देने के लिए प्रेरित करता है तो वह महेश के रूप में होता है इसलिए अध्यापक शिक्षा में मूल्य मीमांसा शिक्षा की आवश्यकता है।

मूल्य विकास हेतु प्रभावी रचना कौशल

रतन बारिक

संसार में इतना विषाद क्यों हैं? अशांति क्यों हैं? बौद्धिकता होते हुए भी भ्रमजाल क्यों, पूंजी के बीच में बेचैनी क्यों? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर शिक्षा को देना है। उत्तर का एक भाग तो यह हो सकता है कि व्यक्ति संस्कारित नहीं हो सकता। इसी कारण यह क्लेश है, पर तब नया प्रश्न उठता है कि व्यक्ति को संस्कारित करने की जिम्मेदारी किसकी है? यदि शिक्षा की है तो एक बात तो स्पष्ट है कि शिक्षा इस बिन्दु पर अभी तक असफल रही है-एक तरह से पराजित ही हुई है।

आज की शिक्षा जानकारी, ज्ञान और कौशल तो प्रदान कर सकती है परन्तु नैतिक व आचरण मूल्यों का पूर्ण विकास नहीं कर पाई है। नैतिकता या यों कहें मानवीय मूल्य उन नियमों की व्यवस्था है जो हमारे आचरण को निश्चित करते हैं। क्या मूल्यों की अवहेलना किए बगेर मानव प्रगति नहीं कर सकता? यदि ऐसा नहीं है तो आज सर्वत्र मूल्यों के पुनर्निर्माण की बात क्यों उठती है? यदि मानवीय व्यवहार किसी नकारात्मक मूल्य से बाधित नहीं होता तो बार-बार मूल्याधारित शिक्षा की चर्चा ही क्यों होती है। बालकों में मूल्यों के निर्माण हेतु मूल्याधारित शिक्षा की बात क्यों की जा रही है? एक ओर कहा जाता है कि मूल्यों की शिक्षा कक्षा-कक्ष में नहीं दी जा सकती तो शिक्षा में इसका प्रावधान क्यों? इसलिए सबसे पहले मूल्य शिक्षा के बारे में थोड़ा चर्चा करना आवश्यक है।

मूल्यपरक शिक्षा

मूल्य शब्द अंग्रेजी के Value शब्द का हिन्दी अनुवाद है। ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोश में इसे महती उपयोगिता वांछनीय तथा

गुणों के रूप से परिभाषित किया गया है। मल्य का अर्थ मानव समाज में सम का निर्माण करना है। वास्तव में मूल्य में एक प्रकार के मानक है। मनुष्य किसी वस्तु क्रिया विचार को अपनाने के पूर्व यह निर्णय लेता है कि वह अपनाए या त्याग दें। जब ऐसा भाव व्यक्ति के मन में निर्णयात्मक ढंग से आता है तो वह मूल्य कहलाता है। इसके विषय में सी. बी. गुड का मानना है कि 'मूल्य वह चारित्रिक विशेषता है जो मनोवैज्ञानिक सामाजिक और सौन्दर्य बोध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।' जैक बार. फ्रेकलिन के शब्दों में 'मूल्य आधार सौन्दर्य, कुशलता पर महत्त्व के वे मानदण्ड है, जिनका लोग समर्थन करते हैं, जिनके साथ वे जीते हैं तथा जिन्हें वे कायम करते हैं।'

इस प्रकार मूल्य मानव व समाज के लिए आवश्यक है। शिक्षा में मूल्य शिक्षण के लिए नैतिक शिक्षा चरित्र की शिक्षा मूल्यों की शिक्षा तथा मूल्यपरक शिक्षा अनेक शब्द दिए हैं। इसके सन्दर्भ में दो अवध ारणाएँ प्रमुख हैं-

1. मूल्य शिक्षा - अर्थात् मूल्यों की शिक्षा। इसमें स्वतंत्र रूप से मूल्यों की शिक्षा का निर्धारण होता है।

2. मूल्यपरक शिक्षा - यह सभी विषयों एवं क्रिया कलापों में मूल्यों की समाहित कर प्रदान की जाती है। इस प्रकार मूल्यपरक शिक्षा से हमारा तात्पर्य उस शिक्षण से है जिसमें हमारे नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य समाहित हो प्रत्येक विषय का मूल्य परक (Value Orient) बनाकर उसके माध्यम से विविध प्राचीन एवं अर्वाचीन मूल्यों को विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में समाहित करना ताकि विद्यार्थियों का संतुलन एवं सर्वतोन्मुखी विकास हो सके

मूल्य शिक्षा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों विधियों से बालकों को विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा प्रदान की जानी चाहिए।

प्रत्यक्ष कार्यक्रम विधियाँ

1. विद्यालय की समयतालिका में मूल्य शिक्षा हेतु कालांशों का निर्धारण।

2. शिक्षा द्वारा छात्रों को धार्मिक और नैतिक कहानियों, घटनाओं पौराणिक कथाओं आदि का सुनाया जाना।

3. शालाओं में बालकों को धार्मिक, नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों की शिक्षा प्रदान करना। पाठ्यक्रम में संसार के विभिन्न धर्मों का अध्ययन शामिल किया जा सकता है। इतिहास एवं सामाजिक अध्ययन जैसे विषयों और भाषा तथा साहित्य के पाठ्यक्रम में शामिल किया जा सकता है।

4. बालकों को महान् धार्मिक व सामाजिक नेताओं की जीवनियाँ और आत्मकथाएँ सुनाया जाना।

5. छात्रों एवं शिक्षकों द्वारा धार्मिक एवं नैतिक विषयों पर विचार-विमर्श।

6. खेलादि समय छात्रों के समक्ष उत्पन्न होने वाली नैतिक समस्याओं के संबंध में शिक्षक द्वारा उनका भली-भाँति पथ-प्रदर्शन किया जाए।

अप्रत्यक्ष कार्यक्रम एवं विधियाँ

1. विद्यालय में छात्रों द्वारा कुछ मिनट का मौन चिन्तन द्वारा कार्य को प्रारम्भ करना दिन को स्फूर्तिमय व ताजगी से भर देता है।

2. विद्यालय द्वारा आयोजित विभिन्न गतिविधियों में प्रार्थना व प्रात:कालीन सभा का सर्वोच्च स्थान है। इस हेतु प्राथमिक कक्षाओं में स्कूल प्रारम्भ होने से पूर्व कुछ मिनटों के लिए स्कूल असेम्बली करना तथा बालकों को सामूहिक व निजी रूप से गाने को प्रोत्साहित किया जाय। माध्यमिक कक्षाओं में प्रात:कालीन सभा में विभिन्न धार्मिक पुस्तकों के कुछ अंश पढ़े जाने का नियमित रूप से पालन करना।

3. विद्यालयों में महान धर्म-प्रवर्तकों के जन्मोत्सव और सभी धर्मों के धार्मिक उत्सव मनाया जाय। इन अवसरों पर व्याख्यान और उपदेश दिए जायें। दृश्य-श्रव्य के माध्यम से बालकों को विभिन्न धर्मों से जुड़ी कलाओं, शिल्प आदि को दिखाया जा सकता है।

4. महापुरुषों का जीवन चरित्र मूल्यों की शिक्षा में सहायक रहा है। विद्यालय की पाठ्यक्रम सहगामी गतिविधियों में महापुरुषों के जीवन चरित्र की शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए, ताकि छात्रों को मूल्यों की उपयोगिता का पता चले और वे अपने जीवन में इन्हें धारण कर सके। महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, महात्मा गाँधी, ईसा-मसीह और तिलक आदि के व्यक्तित्व से प्रेरणा पाकर विद्यार्थियों में अहिंसा, प्रेम, ईमानदारी, त्याग, सत्यभाषण, देशभक्ति, दया, मानव-सेवा, संस्कृति के प्रति आदरभाव आदि मूल्यों का विकास किया जा सकता है। महापुरुषों की जयन्तियों का आयोजन आवश्यक रूप से किया जाय। इसके लिए कहानी, कविता, लोकगीत, लोकनृत्य, नाटक, प्रदर्शियों आदि की व्यवस्था की जा सकती है।

5. विद्यालयों में आयोजित किए जाने वाले खेल-कूद तथा शारीरिक व्यायाम आदि का उद्देश्य बालकों का चरित्र निर्माण तथा उनमें सच्ची खेल-भावना का विकास होना चाहिए।

6. नैतिक विकास के अभाव में बालकों का बौद्धिक विकास अर्थहीन है। यह तभी संभव है जबकि विद्यालय में सादगी और पवित्रता का वातवरण हो जिसका की बालकों के जीवन स्थाई प्रभाव पर पड़ता है।

सन्दर्भग्रन्थ -

गुप्त, डॉ. नत्थूलाल : मानव मूल्य संस्कृति और साहित्य, मोहित पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली

चौबे, डॉ. सरयूप्रसाद एवं पाण्डेय, डॉ. रामशकल : नैतिक शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1982

डागर, डॉ. बी. एस. : शिक्षा तथा मानव मूल्य, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, 1992

प्रियंका जैन, नैतिक एवं सामाजिक मूल्य, स्रोत - प्रतियोगिता दर्पण

मूल्य संवर्धन हेतु अध्यापक की भूमिका

नीरज कुमार द्विवेदी
विद्यावारिधि

मूल्यों का मानव समाज में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस कारण सबसे पहले हम इस बात की चर्चा करेंगे कि मूल्य क्या है? अथवा मूल्य किसे कहते हैं?

मूल्य का अर्थ–

शाब्दिक रूप में यदि देखा जाये तो मूल्य को अंग्रेजी में Value कहते हैं जो लेटिन भाषा के शब्द valuere से बना है जिसका वैलियर का अंग्रेजी में अर्थ है–ability, utility, importance तथा हिन्दी में अर्थ है–योग्यता, उपयोगियता व महत्त्व। शाब्दिक अर्थ के आधार पर हम कह सकते हैं कि व्यक्ति या वस्तु का वह गुण जिसके कारण उसका महत्त्व सम्मान या उपयोग समझा जाता है वह मूल्य है। मूल्य से आशय वह वस्तुयें या बातें हैं जिनमें व्यक्ति रुचि लेता है। मूल्य की चर्चा विभिन्न विचारकों ने विभिन्न प्रकार से की है।

सुखवादी विचारक यह कहते हैं कि मूल्य वह है जो मनुष्य की इच्छा को तृप्त करते हैं।

विकासवादी विचारकों का मानना है कि मूल्य वह है जो जीवनवर्धक होते हैं।

पूर्णतावादी विचारकों की धारणा है कि मूल्य वह है जिससे

आत्मलाभ होता है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सुखवादी मूल्य का अभिप्राय सुख भावना को मानते हैं जबकि विकासवादी और पूर्णतावादी क्रमशः जीवन और आत्मा को। परन्तु तीनों ही विचारधारायें मूल्य को एक चैतन्य प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं अथवा इनका मानना है कि मूल्य का सम्बन्ध मानव के मस्तिष्क के चेतना के स्तर से होता है।

हम शिक्षा के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो यह पायेंगे कि विभिन्न देशों में शिक्षा के मूल्यों में शिक्षा की जो चर्चा की गई है, वह उनके देश की विद्यमान परिस्थितियों पर आधारित है। भारतवर्ष में भी विभिन्न समयों में मूल्यों के वर्गीकरण के समय में विभिन्न विद्वानों ने विभिनन प्रकार के विचार प्रस्तुत किये हैं। ''राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्'' नई दिल्ली ने शिक्षा में सामाजिक, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों पर दस्तावेज में 83 मूल्यों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं–(1) दूसरों के सांस्कृतिक मूल्यों की सराहना (2) अस्पृश्यता विरोध (3) नागरिकता (4) दूसरों की चिन्ता (5) दूसरों का ध्यान रखना (6) सहयोग (7) सामान्य अच्छाई (8) प्रजातान्त्रिक निर्णय लेना (9) व्यक्ति की महत्ता (10) शारीरिक कार्य का सम्मान (11) साथी भावना (12) अच्छे आचरण (13) राष्ट्रीय समाकलन (14) आज्ञा पालन (15) समय का सदुपयोग (16) ज्ञान की खोज (17) संयम (18) करूणा (19) सामान्य लक्ष्य (20) शिष्टाचार (21) भक्ति (22) स्वास्थ्यकर जीवन (23) अखण्डता (24) शुचिता (25) स्व-सहायता (26) निष्कपटता (27) आत्मनियन्त्रण (28) साधनसम्पन्नता (29) नियमितता (30) दूसरों का सम्मान (31) वृद्धावस्था का सम्मान (32) सादा जीवन (33) सामाजिक न्याय (34) स्वानुशासन (35) स्व-सम्मान (36) आत्म-विश्वास (37) स्व-समर्थन (38) स्वाध्याय (39) आत्मनिर्भरता (40) चिन्तन (41) समाज सेवा (42) मानव जाति की एकात्मकता (43) अच्छे व बुरे में भेद (44) सामाजिक उत्तरदायित्व का भाव (45) स्वच्छता (46)

साहस (47) जिज्ञासा (48) धर्म (49) अनुशासन (50) सहनशीलता (51) समानता (52) मित्रता (53) वफादारी (54) स्वतन्त्रता (55) दूरदर्शिता (56) सज्जनता (57) कृतज्ञता (58) ईमानदारी (59) सहायता (60) मानवतावाद (61) न्याय (62) सत्यता (63) सहिष्णुता (64) सार्वभौमिक सत्य (65) सार्वभौमिक प्रेम (66) राष्ट्रीय व जन सम्पत्ति का महत्त्व (67) पहल (68) दयालुता (69) जीवों के प्रति दया (70) धर्मपरायणता (71) नेतृत्व (72) राष्ट्रीय एकता (73) राष्ट्रीय सचेतनता (74) अहिंसा (75) शान्ति (76) देशभक्ति (77) समाजवाद (78) सहानुभूति (79) धर्मनिरपेक्षता (80) पृच्छा भाव (81) दल भावना (82) समय की पाबन्दी (83) दल कार्य।

उपरोक्त वर्गीकरण देखने के पश्चात् हम मूल्यों को व्यापक दृष्टि से निम्न वर्गो में विभाजित कर सकते हैं–

1. **वैयक्तिक मूल्य**–वैयक्तिक मूल्य वह है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। इन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति स्वयं को रखता है। शुचिता, सफाई, नियमितता, समय की पाबन्दी, ज्ञान की खोज व सादा जीवन आदि मूल्यों को हम इस श्रेणी में रखते हैं।

2. **सामाजिक मूल्य**–सामाजिक मूल्य वह है जिसमें व्यक्ति समाज को महत्त्वपूर्ण स्थान देता है। इन मूल्यों में वृद्ध व्यक्तियों का सम्मान, समाज सेवा, संस्कृति का संरक्षण आदि सम्मिलित करते हैं। यह मूल्य वह होते हैं जिनके द्वारा व्यक्ति समाज के कल्याण की कल्पना करता है। व्यक्ति के लिए सामाजिक मूल्यों का ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक है। क्योंकि वह एक सामाजिक प्राणी है।

3. **शैक्षिक मूल्य**–बुद्धि का विकास, जिज्ञासा, चिन्तन आदि वह मूल्य हैं जिन्हें हम शैक्षिक मूल्यों की श्रेणी में समाहित करते हैं। शिक्षा का उद्देश्य बालक के बौद्धिक ज्ञान का विकास करना तो है ही, साथ ही वह बालक को आत्मनिर्भर भी बनाती है।

4. **राजनैतिक मूल्य**—देशभक्ति, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय सचेतना आदि वह मूल्य हैं जिन्हें हम राजनैतिक मूल्यों की श्रेणी में रखते हैं। इनका उद्देश्य व्यक्ति को योग्य नागरिक बनाना होता है जिससे वह अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हो सके।

5. **चारित्रिक मूल्य**—सदाचार, करूणा, सहानुभूति, दयालुता आदि वह मूल्य है जिन्हें चारित्रिक मूल्य कहे जाते हैं। इनका उद्देश्य व्यक्ति को चारित्रिक दृष्टि से ऊँचा बनाना होता है।

6. **धार्मिक मूल्य**—भक्ति, धर्मनिरपेक्षता (सभी धर्मो का आदर करना इसका अभिप्राय है)। धर्म के बिना मूल्यों का विकास सम्भव नहीं है। अत: धर्मनियन्त्रित शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है साथ ही ध्यान देने योग्य है कि कट्टर धार्मिक दृष्टिकोण उत्पन्न न हो पाये।

7. **सौन्दर्यात्मक मूल्य**—प्रकृति, प्रेम, सुन्दरता की प्रशंसा, वनों की रक्षा आदि सौन्दर्यात्मक मूल्य हैं। व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सुन्दर वस्तु से प्रेम करे व जिस धरातल पर वह रहता है, उसे स्वच्छ व सुन्दर बनाये रखने का प्रयास करे।

मूल्य संवर्धन की आवश्यकता—

यदि हम भारतवर्ष के शैक्षिक इतिहास पर दृष्टिपात करे तो हम यह नि:संकोच कह सकते हैं कि विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारतवर्ष ने सन्तोषजनक प्रगति की है। आज हम गर्व के साथ यह कह सकते हैं कि भारतवर्ष ने यातायात, संचार व चिकित्सा में सन्तोषजनक उपलब्धियाँ की है परन्तु इसके साथ ही दूसरी ओर जब हम अपनी संस्कृति व मूल्यों पर विचार करते हैं तो हमें बहुत ही शर्म का अनुभव होता है चूंकि मूल्यों की दृष्टि से हमारा दिन प्रतिदिन पतन होता जा रहा है। आज हमारे सामने बहुत ही विषम परिस्थितियाँ हैं, एक तो यह है कि हमें यह पता ही नहीं कि हमारे भारतीय मूल्य क्या हैं? और इस कारण हम मूल्य अनभिज्ञ होकर व्यवहार करते जा रहे हैं। दूसरे हमें भारतीय मूल्यों का ज्ञान तो है परन्तु

हम उनके प्रति आस्था नहीं रखते और मूल्यविहीन व्यवहार का प्रदर्शन करते है। तीसरे हमें मूल्यों का ज्ञान है और उस पर चलना हम पिछड़ेपन का प्रतीक समझते हैं और आधुनिकता की दौड़ में हम इतनी तीव्रगति से चलना चाहते हैं कि हमारे मूल्य उस दौड़ में कहीं लुप्त हो जाते हैं। मूल्यपरक व्यवहार न करने के लिए हमें आत्मग्लानि नहीं होती हो ऐसा नहीं है, अवश्य आत्मग्लानि होती है परन्तु आधुनिकता की चाहत में हम घुटने टेक देते हैं। यह तीनों ही वह परिस्थितियाँ हैं जिन्हें मूल्य अन्तर्द्वन्द्व की संज्ञा दे सकते हैं। इन्हीं कारणों से आज समाज में चारों ओर नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों में गिरावट देखने को मिलती है। आज समाज में सामान्य आदमी की यह धारणा है कि मेहनतकश एवं ईमानदार व्यक्ति पिस रहे हैं और झूठ एवं फरेब का रोजगार करने वाले फल-फूल रहे हैं।

ईमानदार व्यक्ति को मूर्ख माना जाता है, इस धारणा ने शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासनहीनता, श्रम के प्रति अनास्था, स्वकर्त्तव्य के प्रति उदासीनता, अनुत्तरदायित्व आदि को जन्म देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। आज हमारे लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि हम मूल्य शिक्षा के द्वारा छात्रों को सही मूल्यों का ज्ञान कराये।

मूल्य संवर्धन में अत्यधिक किसी का योगदान होगा तो वह अध्यापक है, वह अपने आचरण के द्वारा छात्रों में मूल्यों को समाहित होने का वातावरण का निर्माणकर्ता हो सकता है। जिनसे समाज व राष्ट्र पूरे विश्व में शान्ति सुरक्षा सद्भाव मैत्री आदि के द्वारा सद्जीवन के साथ विकासोन्मुख हो सकता है जिनमें कुछ व्यावहारिक मूल्य है जैसे स्वानुशासन, मित्तभाषी, विनय, नैतिकता, ईमानदारी, सदाचरण आदि सद्गुणों को धारणकर छात्र समाज में अपने व्यक्तित्व को प्रतिष्ठाापित कर सकता है।

सेवा–

अपनी आवश्यकता को पूर्ण करने की इच्छा होती है, वैसे ही दूसरे

की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए व्याकुल होने पर सेवा होती है। शिशु की सेवा माँ इसी भाव से करती है। शिशु के अभाव की पूर्ति के लिए माता का अस्थिर होना ही सेवा है। अन्दर अनुराग नहीं है, दूसरों की देखा-देखी सहायता करते हैं। इनका नाम सेवा नहीं है।

संसार में सभी प्राणी दुःखों में निमग्न हैं। दुःख के दो भेद है-1. लौकिक 2. पारलौकिक। लौकिक दुःख तीन प्रकार के होते हैं-

आधिभौतिक-

मनुष्य, पशु, कीट, पतंगों आदि प्राणियों द्वारा जो दुख मिलता है, वह आधिभौतिक दुःख है।

आधिदैविक-

वायु, अग्नि, जल, वर्षा, देश, काल, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र आदि देवों द्वारा जो दुःख मिलता है, वह आधिदैविक दुःख कहलाता है।

आध्यात्मिक-

मानसिक रोग अर्थात् आधि एवं शारीरिक रोग अर्थात् व्याधि इसके अन्तर्गत आते हैं।

पारलौकिक दुःख-

मरने के पश्चात् परलोक में या पुनः इस लोक में आकर मनुष्येतर योनियों में भ्रमण करते हुए जो दुःख मिलते हैं, वे पारलौकिक कहलाते हैं।

अध्यापक को चाहिए कि इन सभी लौकिक एवं पारलौकिक दुःखों को दूर करने के लिए, भगवान् को सब में व्याप्त जानकर भगवान् का स्मरण करते हुए उनके आज्ञानुसार निष्काम भाव से विद्यालय या विद्यालयेतर, सभी जगह आजीवन सेवा कर उदाहरण प्रस्तुत करें।

स्वानुशासन-

अनुशासन प्रत्येक देश और प्रत्येक समाज के जीवन के लिए सबसे

अमूल्य निधि है। जिस प्रकार देश व समाज के जीवन में अनुशासन का मूल्य बहुत अधिक है उसी प्रकार अनुशासन व्यक्ति के जीवन के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। आदर्श प्रस्तुत करने के लिए अध्यापक को स्वानुशासन में रहना अत्यन्त आवश्यक है।

सदाचारी–

जो मनुष्य सदाचारी है, उनको दीर्घ आयु, धन, सन्तति, सुख और धर्म की प्राप्ति होती है तथा नित्य अविनाशी भगवान् विष्णु के लोक की प्राप्ति होती है और वे इस संसार में विद्वानों से भी मान्यता को प्राप्त करते है।

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते, आयुश्च वित्तं च सुतांश्च सौख्यम्।

बुराईरहित–

बुराई तीन प्रकार की होती है–किसी को बुरा समझना, उसका बुरा सोचना, उसका बुरा कर देना। बुरा समझना सबसे बड़ी बुराई है। बुरा सोचना उससे छोटी बुराई है। बुरा करना सबसे छोटी बुराई है।

असत्य, चोरी, कपट, धोखेबाजी, विश्वासघात, दूसरों को दुःख देना, उनका अपमान एवं उन पर क्रोध करना आदि स्थूल बुराइयाँ हैं।

मोह, ममता, कामना, राग, द्वेष, दीनता, अभिमान आदि सूक्ष्म बुराइयाँ है।

हित की भावना–

इसका अर्थ है–मन में निरन्तर यह सोचना कि दूसरों को सुख, सुविधा, सम्मान मिले उनको परम शान्ति मिले, उनका कल्याण हो जाए, दूसरों की हित का सम्मान करना।

करुणा एवं प्रसन्नता–

दुखी व्यक्ति को देखते ही आपका हृदय करुणा से भर जाए और

सुखी व्यक्ति को देखते ही आपका हृदय प्रसन्नता से भर जाए। यह दुखी एवं सुखी व्यक्ति की बहुत बड़ी सेवा है।

माता-पिता एवं गुरूसेवा-

आज का मनुष्य घोर स्वार्थी बनता जा रहा है, वह केवल 'हम दो और हमारे दो' में ही सिमट गया है। फलतः आज परिवारों में वृद्ध माता-पिता उपेक्षापूर्ण जीवन जीने के लिए विवश हो गये है। उनको अनुपयोगी सामान की तरह समझा जाने लगा है। जैसे पुराने सामान को लोग 'यूज एण्ड थ्रो' व्यर्थ समझकर एक कमरे में डाल देते है, इसी तरह वृद्ध माता-पिता को भी अनुपयोगी समझकर उनके लिए मकान में एक उपेक्षित कमरा दे दिया जाता है और इस प्रकार उनके साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार की शुरूआत हो जाती है। कभी-कभी तो यह भी देखा जाता है कि पुत्र वृद्ध माता-पिता को जबरन वृद्धाश्रम में छोड़ आते हैं और फिर उनके सुख-दुख का नाम भी नहीं लेते।

ऐसी परिस्थिति में अध्यापक को परम कर्त्तव्य बनता है कि छात्र व समाज को अवगत कराये कि 'माता-पिता की सेवा पुत्र का परम कर्तव्य है ''मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव'' माता-पिता और आचार्य को देव मानो।

''माता पिता गुरूश्चैव पूजनीयाः सदा नृणाम्'' ''विनयस्य मूलं वृद्धोपसेव'' ''विनयेन सर्व प्राप्यते''। अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।

(मनु. 2/121)

वृद्धजनों को सर्वदा अभिवादन अर्थात् सादर प्रणाम, नमस्कार चरणस्पर्श तथा उनकी नित्य सेवा करने वाले मनुष्य की आयु विद्या यश और बल ये चारों बढ़ते है।

इसका आशय स्पष्ट है कि हमें सदैव अपने माता-पिता, परिवार की

ज्येष्ठ सदस्यों एवं आचार्यों की सेवा-शुश्रूषा, परिचर्या का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

ऐकमत्य-

"वसुधैव कुटुम्बकम्" "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः" की भावना के लिए ऐकमत्य होना परम आवश्यक है। एकता विना ऐकमत्य असम्भव है। यदि प्रत्येक के विचार उद्देश्य भिन्न-भिन्न है तो उस समाज में एकता का होना कठिन है। अतः एकता के लिए ऐकमत्य होना आवश्यक है।

सत्यवचन-

सत्यवचन का अवलम्बन करना जितना दुष्कर प्रतीत होता है, उतना ही सत्य सरल व सुगम है। मिथ्या बोलना बड़ा ही सरल व सुगम होता है, लेकिन स्मृति पटल पर बनाए रखना उतना ही कठिन होता है। सत्य बोलना कठिन तो है, लेकिन स्मृति पटल पर सदैव ही बना रहता है। सत्य का सहारा लेना ही श्रेयस्कर है।

श्रुति, स्मृति तथा काव्यों में मूल्य का विशद् रूप से वर्णन किया गया है कुछ मूल्य निम्नलिखित हैं, जो कि दृष्टव्य हैं-

ऋग्वेद-

स्वस्ति पन्था मनु चेरम्। (5। 51। 15) संगच्छध्वं संवदध्वम्। (10।191।2) अक्षैर्मा दीव्यः। (10।34।13) सुगा ऋतस्य पन्थाः। (8।31।13) न स सखा यो न ददाति सख्ये। (10।117।4) शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः। (10।18।2) दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते (1।125।6)

यजुर्वेद-

भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनम्। (3017) ऋतस्य पथा प्रेत। (7।45) मा गृधः कस्य स्विद् धनम्। (40।1) मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। (36।18) तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। (34।1)

अर्थवेद–

वाचा वदामि मधुमद्। (1।34।3) मधुमतीं वाचमुदेयम्। (16।2।2) उप सर्प मातरं भूमिम्। मा हिंसी: पुरूषान्पशूंश्च। (6।2)

उपनिषद्–

सत्यं वद। धर्मं चर। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। सत्यं शिवं सुन्दरम्।

अन्य–

ज्ञानस्याभरणं क्षमा। जपतो नास्ति पातकम्। ऋणकर्ता पिता शत्रु:। आचार: कुलमाख्याति। आचारहीनं न पुनन्ति वेदा:। आत्मवत् सर्वभूतानि य: पश्यति स पश्यति। अगुणस्य हतं रूपम्। ज्येष्ठभ्राता पितु: सम:। त्यजेदेकं कुलस्यार्थे इत्यादि।

शिक्षा का उद्देश्य मानवमात्र की सेवा है तथा उनमें मूल्यों को पिरोना तथा मानवता से युक्त आचरण करने लायक व्यवहार को मूल्य के रूप में समावेशित करना भी है। न्यूटन, पाश्चर, आइंस्टीन, महात्मा गाँधी, टैगोर, सुकरात, आदि वैज्ञानिक विचारक तथा दार्शनिकों ने शिक्षा में अध्यापकों को महत्त्वपूर्ण आचरणों से युक्त अध्यापक के रूप में अपने को स्थापित करने पर बल दिया है।

अध्यापक को विद्यालय की औपचारिक एवं अनौपचारिक गतिविधियों को इस प्रकार संगठित करना होगा जिससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से छात्रों के अन्दर के मूल्यों का विकास कर सके। तथा सम्पूर्ण जीवन में मैत्री एवं सहयोगात्मक भावना को प्रदर्शित करना है। ऐसा करने का प्रभाव यह होगा कि व्यक्ति मूल्य परख व्यवहार करके अपने आचरण को सही दिशा प्रदान करेगा। मूल्य शिक्षा के द्वारा बालक सच्चाई, ईमानदारी, करूणा इत्यादि मानवीय गुणों को सीखेगा व उन्हें व्यवहार रूप में अपने आचरण में उतारने का प्रयास करेगा।

मूल्य संकट एवं समस्या समाधान

गुरिन्द्र कौर
शोध-छात्रा

शारदा-शरदाम्बोज वदना-वदनाम्बुजे।
सर्वदा-सर्वदा अस्मांक सचिधं-सचिधं क्रियात्।।

सम्पूर्ण विश्व आज हिंसा एवं आतंकवाद की विभीषिका से ग्रस्त है। ऐसे में शान्ति व सद्भावना की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। विश्व में ऐसा कोई राष्ट्र नहीं है जो भय, भूख, वैमनस्य, पर्यावरण संकट एवं मूल्य संकट की पीड़ा से पीड़ित न हो। ऐसे में नैतिक बोध एवं मूल्य शिक्षा के लिए आवाज उठाना शान्ति की दिशा में अग्रसर होना है। यह प्रयास सराहनीय भी है। इनके लिए सर्वप्रथम हमें शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करना होगा। आज की हमारी शिक्षावस्था मनुष्य के आत्मिक विकास को बढ़ावा न देकर उसको भौतिकवाद की ओर ले जा रही है। जिससे उसके नैतिक चिन्तन का ह्रास हो रहा है। इसी सन्दर्भ में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने भी कहा है।

'भारत सहित सारे संसार के कष्टों का कारण यह है कि शिक्षा का संबंध नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति से न रहकर केवल मस्तिष्क के विकास से रह गया है। यदि शिक्षण का अर्थ हृदय और आत्मा की अवहेलना है। तो उसको पूर्ण नहीं माना जा सकता।'

आज की उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित समाज अर्थ प्रधान हो

गया है। नैतिक मूल्यों का स्थान आर्थिक मूल्य ने ले लिया है। धर्म और मोक्ष के पुरूषार्थ को दरकिनार कर वह पंचशील के अपरिग्रह के सिद्धान्त को भी भूल गया है। सम्पूर्ण विश्व बाजार हो गया है। भौतिकता की इस अन्धी दौड़ में समस्त सामाजिक संबंध और सांसारिक संस्थाएँ छिन्न-भिन्न हो गई है। संयुक्त परिवार टूट कर एकांकी परिवार हो रहे है। ऊँच-नीच, धनी-निर्धन का भेद गहराता जा रहा है। धनी व्यक्ति निर्धन के पास जाने से कतराता है कि कही वह कुछ माँग न लें। शिक्षा का व्यवसायिकरण हो गया है। जिन विश्वविद्यालयों को ज्ञान का केन्द्र होना चाहिए। वही आज धन, पद और सत्ता के लिए परस्पर होड़ में लगी हुई है।

मूल्य संकट-प्राचीन काल का गौरवमयी इतिहास जो हमारी धरोहर है हमें विश्व की प्राचीन संस्कृति का दर्जा देते है। हमारे उपनिषदों ने हमें "वसुधैव कुटुम्बकम्" अर्थात् सारा संसार एक परिवार है। इसके बावजूद हम कभी धर्म, कभी क्षेत्र, जाति व यहाँ तक कि भाषा के नाम पर लड़ते है। हमें आज दुखातुर पड़ोसियों व अपने देशवासियों की पीड़ा भी महसूस नहीं होती है। हमारे मूल्य धर्मान्धता व सांप्रदायिकता की भेंट चढ़ चुके है। भारतीय आध्यात्मिकता व पतंजलि का अपरिग्रह जैसे आदर्श जो त्याग पर आधारित थे आज कोई महत्व नहीं रखते। शिक्षा व मूल्यों के बीच खाई बढ़ती जा रही है। स्वार्थसिद्धि सबसे बड़े मूल्य बन गए हैं। अहिंसा के स्थान पर हिंसा ही आज परम धर्म बनता जा रहा है। आज हमारे मूल्य सदाचारणों से दूर हो गये है। जिसका उदाहरण आए दिन बढ़ते अपराध है। जिनकी खबर हम अपहरण, हत्या, डकैती, बलात्कार के रूप में रोज पढ़ते है। आज हम चाहे महाशक्ति के रूप में उभर रहे हैं किन्तु हमारा चारित्रिक पतन होता जा रहा है। इन सब मूल्यों का ह्रास के कुछ प्रमुख कारण हैं:-

1. छात्रों में अशान्ति।

2. शिक्षा का व्यवसायिकरण।

3. प्रत्येक क्षेत्र में मीडिया का अत्यधिक प्रचार-प्रसार।
4. मनुष्यों में सौहार्द तथा स्नेह जैसे नैतिक गुणों का ह्रास।
5. बड़ों के प्रति अनादर।
6. परिवर्तित समाज का परिवेश।
7. शिक्षा द्वारा केवल के बालक मानसिक स्तर का विकास।
8. 'बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय' की भावना के स्थान पर स्वार्थ सिद्धी की भावना का विकास।
9. वर्तमान समाज में नारी के प्रति असम्मान की भावना।
10. सामाजिक व परिवारिक संबंधों के प्रति अविश्वास की भावना।
11. परिवार द्वारा बच्चों में ईर्ष्या और द्वेष की भावना का विकास।
12. उत्तरदायित्व की भावना का ह्रास।
13. आत्म-संचेतना का अभाव।
14. भावात्मक विचारों का निरादर।
15. वैयक्तिक संचेतना और समाज संचेतना का अभाव।

मूल्य संकट का संभव समाधान–

विद्यार्थियों के राष्ट्रिय एवं स्थानीय स्तर पर समस्याओं से परिचित कराने पर बल ने देकर उनके समाधान हेतु किए गए प्रयत्नों पर भी बल देते हैं मानवीय संसाधनों का कुशलतम् उपयोग किस प्रकार किया जाए इत्यादि तत्वों पर बल देते हैं। विभिन्न सुझाओं के आधार पर हम मूल्य संकट के लिए संभव समाधान कर सकते है।

पाठ्य-पुस्तक संबंधी सुझाव–

1. पाठ्य-पुस्तक नैतिकता उन्मुखी एवं बाल केन्द्रित हो। मूल्य-शिक्षा संबंधी अंशों को स्थान दिया जाये।
2. राजनैतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक बनाने के स्थान पर सामाजिक बनाया जाए।
3. भाषण, वाद-विवाद, क्विज, स्वास्थ्य सप्ताह, विशेष दिवसों का आयोजन इत्यादि को पर्याप्त समय दिया जानाा चाहिए।

शिक्षक संबंधित सुझाव–

1. शिक्षक का व्यवहार आदर्शपूर्ण हो।
2. बच्चों में भावात्मक गुणों का विकास करना।
3. कक्षा के अन्दर और बाहर के व्यक्तिगत व्यवहार द्वारा बच्चों के लिए प्रवृत्तियों के प्रवर्तक के रूप में भी देखा जाना चाहिए। शिक्षक प्रेक्षक watcher बने watch की व्याख्या निम्न है–

i. He Should watch his wards.
ii. He Should watch his actions.
iii. He Should watch his thoughts.
iv. He Should watch his character.
v. He Should watch his heart.

अधिकाधिक दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग करके शिक्षक विषय को रोचक बना सकते हैं–

1. कहानी प्रस्तुतिकरण।
2. कहानी खेलना (अभिनय पद्धति)
3. जीवनी पठन

अभिभावकों हेतु सुझाव–

1. परिवार में बच्चों के सामने शिक्षक की बातों के प्रति नकारात्मक रवैया न अपनाएँ।

2. बच्चों को मूल्य समझने में सहायता दें, अपने विचार उन पर थोपें नहीं।

3. माता-पिता बच्चों को मूल्य संबंधी निर्णयों तक पहुँचाने की बजाय उन्हें मूल्य स्पष्टीकरण एवं मूल्य विश्लेषण में उनकी मदद करें।

4. घर के सभी सदस्यों को अड़ोस-पड़ोस और समाज में हो रहे अनैतिक व्यवहारों को रोकने का प्रयत्न करना चाहिए।

5. माता-पिता को बच्चों को कुसंगति से बचाने के लिए भरसक प्रयास करने चाहिए।

6. अभिभावकों को बच्चों को मूल्यवर्धक साहित्य उपलब्ध कराएँ एवं स्वयं उस पर चर्चा करें।

7. बच्चे किन्हीं कारणों से मूल्य विरोधी व्यवहार करें तो घर के सदस्य उनकी भर्त्सना अथवा तिरस्कार की बजाय विचार-विमर्श का वातावरण पैदा करें।

पाठ्यक्रम सहगामी क्रिया-कलापों द्वारा सुझाव–

पाठ्यक्रम सहगामी गतिविधियाँ एक महत्त्वपूर्ण मंच का कार्य कर सकती है। निम्न गतिविधियों के आधार पर हम मूल्यों को सुरक्षित रख सकते हैं।

1. प्रभावी प्रार्थना सभाएँ।

2. खेल-कूद एवं क्रीडा-क्षेत्र।

3. सांस्कृतिक कार्यक्रम।

4. स्वच्छता अभियान।
5. सामाजिक समस्याओं पर वाद-विवाद।
6. विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन।
7. शैक्षिक भ्रमण।
8. सौन्दर्यात्मक मूल्यों को विकसित करने की गतिविधियाँ।

उपसंहार–

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इन नष्ट होते मूल्यों का संरक्षण प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा ही किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक हो, जिससे मूल्यों को सुरक्षा मिले।

''सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं, मेरी कोशिश है कि यह सूरत बदलनी चाहिए। मेरे सीने में न सही तो तेरे सीने में सही हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।''

संदर्भ

1. उपाध्याय, प्रतिभा-भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ-शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2009
2. गुप्त, नत्थूलाल, मूल्यपरक शिक्षा और समाज-नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
3. जयश्री - मूल्य पर्यावरण और मानव अधिकार को शिक्षा-शिप्रा प्रकाशन, दिल्ली, 2008
4. जोशी, धनंजय - नैतिक शिक्षा एवं नागरिक बोध, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2005
5. श्रीवास्तव, सुषमा, अग्रवाल, विनीता - समाज में मूल्यों का वर्तमान परिदृश्य एवं उच्च शिक्षा, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2008

अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में उभरती चुनौतियाँ एवं समाधान

अतुल गर्ग
शोधच्छात्र

कोई समुदाय, समाज अथवा राष्ट्र अपने को तभी विकसित कह सकता है जब वहाँ की शिक्षा विकसित दशा में हो। विकास का वास्तविक मापदण्ड शिक्षा ही है। वस्तुत: शिक्षा ही सभी क्रियाकलापों का मूल है तथा शिक्षा का मूल है–शिक्षक। प्रत्येक मानव के लिए शिक्षा अति महत्वपूर्ण है। बालक जन्म से मृत्यु तक किसी न किसी रूप में शिक्षा प्राप्त करता रहता है। समाज ने शिक्षा प्रदान करने का दायित्व विद्यालयों को सौंपा। जहाँ अध्यापक अपने ज्ञान से बच्चों को लाभान्वित करते हैं। अध्यापक न केवल जड़ वस्तुओं से मानवोपयोगी वस्तुओं का निर्माण करते हैं अपितु मानव को समाज एवं देश के लिए उपयोगी नागरिक बनाने में सहयोग देते हैं। यही कारण है कि समाज ने अध्यापक को बहुत उच्च स्थान दिया है। अध्यापक सदैव विद्यार्थियों को नवीन ज्ञान, नवीन एवं उत्तम विधि दें, इसीलिए समय समय पर अध्यापकों की शिक्षा और प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। सरकार नई-नई नीतियों, योजनाओं एवं कार्यक्रमों में अध्यापकों के प्रशिक्षण को उच्च स्थान देती है। समय-समय पर विभिन्न आयोगों ने वर्तमान समय की व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षपण की कमियों को उजागर किया।

शिक्षा के माध्यम से ही ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण कर पाना सम्भव है, जो वातावरण एवं मूल्यों के संरक्षण के साथ ही अनुकूल परिवेश के

निर्माण में भी सहायक सिद्ध हो सकता है। व्यक्ति में मानवता बोध एवं सांस्कृतिक चेतना की जागृति शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है, प्रशिक्षण पर अन्य सम्प्रेषण व्यवहार के माध्यम से नहीं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अध्यापक शिक्षा वह शैक्षिक आयोजन है, जिसमें विभिन्न स्तरों एवं वर्गों वाले अध्यापकों को इस तरह से शिक्षित करने का प्रयत्न किया जाता है कि वे शैक्षिक एवं विकासात्मक दायित्वों को ग्रहण करने व वहन करने में सक्षम हो सके तथा ज्ञान एवं मूल्यों का अगली पीढ़ी में हस्तान्तरण करने में समर्थ हो सके तथा साथ ही उसमें तकनीकी कुशलता वैज्ञानिक चेतना, संसाधन सम्पन्नता तथा नवाचारिता के साथ सांस्कृतिक चेतना एवं मानवता बोध का समन्वयात्मक विकास करना सम्भव हो सके।

अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में आज असंख्य महत्वपूर्ण एवं विचारणीय चुनौतियाँ हैं। जिनके समाधान के लिए प्रयत्न करना प्रत्येक अध्यापक शिक्षक एवं भावी अध्यापक/अध्यापिकाओं के लिए दायित्व बन जाता है। अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में विद्यमान चुनौतियों को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से रेखांकित किया जा सकता है–

1. सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक पाठ्यक्रम में कृत्रिमता–विभिन्न स्तरों पर अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्राचीनता पूर्णतया दृष्टिगोचर होती है। प्रभावशाली और सफल अध्यापक का निर्माण करने के लिए उचित विषय वस्तु नहीं है। विषय-विशेष में सैद्धान्तिक विषयों का प्रयोगात्मक कार्य से कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं है। विषय वस्तु पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता। पाठ्यक्रम निर्माण का कोई तथ्यपरक आधार नहीं है।

2. व्यावसायिक अभिवृत्ति के विकास पर कम बल–अध्यापक शिक्षा के स्वस्थ कार्यक्रम के लिए आवश्यक है व्यावसायिक अभिवृत्ति पर जोर देना, किन्तु इस पर जोर कम ही दिया जाता है। महाविद्यालयों में सुविधाएं निम्नस्तरीय हैं। इनके साथ जुड़ी अध्यापक की निम्न गुणवत्ता प्रांगण में गतिशील एवं पुष्ट कार्यक्रम के अभाव के लिए विस्तृत रूप

से उत्तरदायी हैं। अध्यापक शिक्षा की अवधि के दौरान व्यावसायिक नीति के विकास को कोई महत्व नहीं दिया जाता।

3. विद्यालय अभ्यास पर प्रभाव नहीं–विद्यालयों में अपनाई गई शिक्षण विधियाँ, उनका पाठ्यक्रम एवं विभिन्न अन्य आवश्यकताएँ, अध्यापक शिक्षा विभागों द्वारा समर्पित एवं वास्तविक रूप में, कार्यानुरूपित विधियों, पाठ्यक्रमों एवं आवश्यकताओं से भिन्न है। अध्यापक शिक्षा विद्यालय शिक्षक का व्यावसायिक विकास करने वाली संस्था के रूप में नहीं स्वीकार किये जाते।

4. अप्रभावी शिक्षण विधियाँ–भारत में अध्यापक शिक्षण विधियों में खोज एवं प्रयोग अल्प मात्रा में है। छात्र अध्यापक में शिक्षण विधियों की सरलता एवं दक्षता का अभाव है। शिक्षण की क्रिया में निहित विभिन्न तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक क्रियायें असम्बद्ध तरीके से की गई होती है।

5. उपयुक्त सुविधाओं का अभाव–अधिकांश महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयीय विभागों में अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में सौतेला व्यवहार किया जाता है। आज भी अधिकतर अध्यापक शिक्षा संस्थाएँ किराये की इमारतों में चल रही हैं। अध्यापकों के लिए आवश्यक प्रयोगशाला, पुस्तकालय एवं अन्य उपकरणों की कोई सुविधा नहीं है। अधिकांश अध्यापक शिक्षा संस्थाओं में छात्र अध्यापकों के लिए अलग से छात्रावास नहीं हैं।

6. शैक्षिक संस्थाओं में एकरूपता का अभाव–वर्तमान समय में एन.सी.टी.ई. द्वारा निर्देशित अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रमों के अधिकाधिक असमानता दिखाई दे रही है। किसी संस्था में प्रशिक्षण में दौरान आवश्यक प्रायोगिक क्रियाकलापों को विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से सिर्फ अनुपूरक के रूप में कार्य कराया जाता है अर्थात् स्पष्टत: यों कहें कि उपाधि प्राप्त करने के लिए निरर्थक कार्यों की प्रतिपूर्ति की जाती है।

7. अपर्याप्त वित्तीय व्यवस्था–अधिकतर शिक्षा संस्थाओं में वित्त-सम्बन्धी अभाव अध्यापक-शिक्षा प्रक्रिया को संचालित करने में

बाधक हो जाता है।

इस प्रकार अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में इनके अतिरिक्त भी अनेकानेक चुनौतियाँ दिन-प्रतिदिन सृजित और विकसित हो रही हैं, जिनका सामना करना प्रत्येक यथार्थ एवं आदर्श अध्यापक शिक्षक का उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्य हो जाता है। उपर्युक्त उद्धरणों द्वारा अध्यापक शिक्षा सम्बन्धी चुनौतियों का प्रामुख्येन विवेचन किया गया है। जिनका समेकित रूप में अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त चुनौतियों का समाधान निम्न रूप में दिया जा सकता है।

सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक विषय के पाठ्यक्रमों को पुनः व्यवस्थित या नियोजित किया जाना चाहिए। विभिन्न प्रकार के प्रयोगात्मक कार्यों के लिए विशेष कार्यक्रमों की व्यवस्था होनी चाहिए। अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायिक सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करने के लिए शिक्षाशास्त्र के विद्यालयों को अपने आप में एक इकाई की तरह माना जाना चाहिए। ऐसे संस्थान विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को क्रियान्वित करने की सुविधाओं से समृद्ध होने चाहिए, ताकि नित्य सभा, सामुदायिक जीवन, सामाजिक कार्य, पुस्तकालय योजना, सहभागी की प्रजातान्त्रिक भावना आदि को क्रियान्वित करने की सुविधाओं से समृद्ध होने चाहिए, ताकि नित्य सभा, सामुदायिक जीवन, सामाजिक कार्य, पुस्तकालय योजना, सहभागी की प्रजातान्त्रिक भावना आदि को क्रियान्वित किया जा सके। शिक्षण के अन्तर्गत नई-नई तकनीकियों पर भी बल देना अत्यन्त आवश्यक है। सेमीनार, प्रोजक्ट, वाद-विवाद, व्याख्यान इत्यादि के माध्यम से भी शिक्षण प्रक्रिया को पुष्ट किया जाना चाहिए। शिक्षणाभ्यास हेतु उत्तम प्रबन्धन शिक्षण की बारीकियों को सीखने में अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक होता है। अतः शिक्षणाभ्यास कराये जाने वाले विद्यालयों के साथ विश्वसनीयता, सहयोगात्मकता का व्यवहार होना चाहिए। प्रशिक्षण की उपाधि मात्र प्रदान करने का साधन ही न बने, अपितु सभी शैक्षिक संस्थाएं अध्यापिकीय गुणवत्ता में वृद्धि हेतु पूर्णतः प्रयास करें। प्रदेश सरकार को अध्यापक

शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों एवं विद्यालयों को उचित वित्तीय सहायता देनी चाहिए। जिससे शिक्षण की गुणवत्ता में आंशिक रूप में भी कमी न हो।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आधुनिक अध्यापक शिक्षा का क्षेत्र कम विकासशील है और इस क्षेत्र में समस्याएँ और चुनौतियां भी कम नहीं हैं। भावी अध्यापक शिक्षक वर्ग के लिए यह क्षेत्र जितना अधिक चुनौतीपूर्ण होने की सम्भावना है उतना शायद ही किसी अन्य क्षेत्र की है। वास्तव में कहा जा सकता है कि अध्यापक शिक्षा आज भी अंकुरण की स्थिति में है, जिसे पल्लवित और पुष्पित करने के लिए भावी पीढ़ी को पूर्ण सहृदयता और कर्मठता के साथ आगे आना होगा और पूर्व उपेक्षाओं को शीघ्र ही दूर करने के लिए कमर कसनी होगी।

इस प्रकार अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में उभरती चुनौतियों की सही पहचान एवं उनका उचित समाधान किया जाए, तो न ही केवल अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता सुस्थिर रहेगी अपितु उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी।

संदर्भ

1. भट्टाचार्य, जे.सी.-अध्यापक शिक्षा
2. मिश्र, भास्कर-शिक्षा और समाज
3. शर्मा, आर.ए.-अध्यापक शिक्षा
4. सक्सेना, एन.आर.-अध्यापक शिक्षा
5. शुक्ल, रमाशंकर-शिक्षक-शिक्षा दशा एवं दिशा

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा की समस्याएं एवं समाधान

विवेक कुमार तिवारी
शोधच्छात्र

शिक्षा मानव के अन्तर्निहित गुणों का सर्वांगीण विकास कर एक सभ्य समाज के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। शिक्षा अथवा विद्या को अमृत प्रदान करने वाला कहा गया है–**विद्यया विन्दतेऽमृतम**। ऐसे शिक्षारूपी महत्वपूर्ण तत्त्व को कुशलतापूर्वक प्रदान करने का श्रेय मुख्य रूप से अध्यापक को प्राचीनकाल से ही दिया जाता रहा है तथा आज भी वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारत देश में ही नहीं अपितु विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के भाग्य का निर्माण देश के कक्षा–कक्ष में अध्यापक के द्वारा ही किया जाता है। इसीलिए अध्यापक या गुरु को सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के रूप में स्वीकार किया गया है–**गुरुः साक्षात् परब्रह्म. ..** (गर्ग संहिता 4/1/13) क्योंकि जिस प्रकार ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं उसी प्रकार अध्यापक सद्विद्या द्वारा सही अर्थों में मानव के जीवन का निर्माण करता है। यदि इस राष्ट्र निर्माता के समक्ष शिक्षण की समस्यायें आने लगे तो न केवल व्यक्ति या देश का विकास बाधित होगा, बल्कि समाज में अध्यापक का स्तर भी गिरने लगेगा।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में अनेकानेक समस्यायें विद्यमान हैं। जिनके प्रति सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि परिस्थितियाँ कारण हैं। इन सभी परिस्थितियों से अध्यापक शिक्षा

के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं की सही पहचान तथा उसका उपयुक्त समाधान अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए अत्यन्त अनिवार्य है। इन समस्याओं को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. प्रवेश सम्बन्धी समस्याएँ–अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में विभिन्न स्तरों पर प्रवेशार्थियों का चयन करते समय जिन मापदण्डों को ध्यान में रखने की आवश्यकता होती है। प्राय: उनका अनुपालन नहीं किया जाता। शिक्षण अभिक्षमता व शिक्षकीय अभिवृत्ति से युक्त व्यक्ति को जो अपने विषय में पूर्ण दक्ष हो तथा शिक्षण-उद्यम को आदर्शात्मक रूप में स्वीकार करने की मन:स्थिति में हो, मात्र उन्हें ही प्रवेश दिये जाने की आवश्यकता है। जो व्यक्ति शिक्षण कार्य को रोजगार प्राप्त करने या जीविका संसाधन मात्र के रूप में स्वीकार करता है। वह अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में ह्रास का कारण बनता है। क्योंकि शिक्षा प्रदान करने के अधिकाधिक अभिकरणों की उपलब्धता के बावजूद भी अध्यापक का स्थान अपरिहार्य है। जिसका कारण है अध्यापक द्वारा अधिगमकर्त्ता को वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए अधिगम कराना। अत: शिक्षण के प्रति उच्च सकारात्मक अभिवृत्तियुक्त व्यक्ति का प्रवेश के समय ही यह सुनिश्चित करना होगा।

2. संस्थागत एवं प्रशासनिक समस्याएँ–राज्य व केन्द्रीय व्यवस्था का शिक्षण संस्थाओं के प्रति उदासीनता भी अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में ह्रास के प्रति उत्तरदायी है। ऐसे शिक्षण संस्थान प्रशिक्षणेच्छुओं की रूचियों के अनुसार विषय अथवा विषयाध्यापक की व्यवस्था नहीं रखते, जिससे वह उपाधि प्राप्त करने मात्र के लिए किसी भी विषय का चयन कर लेता है। संस्थाओं में पर्याप्त कक्ष, पुस्तकालय, कुशल प्रशिक्षकों आदि की भी कमी दृष्टिगत होती है। अध्यापक शिक्षा संस्थाओं में व्याप्त राजनीतिक, भ्रष्टाचार और निरंकुशता के कारण भी आज इसकी उपेक्षा हो रही है। शिक्षा प्रशासन उदात्त मापदण्ड के निर्माण एवं उसके पूर्णतया

अनुपालन से अपने आप को बचाते हुए दिखाई पड़ते हैं। शिक्षण संस्थान एक मंदिर का स्वरूप होना चाहिए जबकि वर्तमान में पूर्णतया व्यावसायिक हो चुका है। अत: वर्तमान में संस्थाओं व प्रशासनिक व्यवस्थाओं को अध्यापक शिक्षा का उत्तम मापदण्ड बनाकर उसके क्रियान्वयन पर बल देना चाहिए, सभी आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराना चाहिए, तथा बाह्य प्रभावों से इन्हें मुक्त करना चाहिए।

3. पाठ्यक्रम सम्बन्धी समस्यायें–अध्यापक शिक्षा के सैद्धान्तिक व प्रायोगिक पाठ्यक्रमों का व्यावहारिकता से पर्याप्त तालमेल नहीं दिखई देता। इसके पाठ्यक्रम में तारतम्यता तथा सहसम्बन्ध की कमी प्राय: देखने को मिलती है। शिक्षण कला, तकनीकी एवं मूल्यांकन से सम्बन्धित प्रश्नपत्रों को शिक्षा इतिहास तथा आदि की तुलना में कम महत्व दिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप पाठ्यक्रम असन्तुलित ही नहीं अपितु अव्यावहारिक भी हो जाता है।

अत: व्यावहारिकता के धरातल पर पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए तथा सभी विषयों को समान महत्व प्रदान करना चाहिए।

4. नवाचार सम्बसन्धी समस्यायें–वर्तमान सन्दर्भ में अधिकाधिक क्षेत्रों में नवाचारों का प्रयोग अत्यन्त तेज गति से बढ़ रहा है परन्तु अध्यापक शिक्षा के अन्तर्गत प्राचीन व्यवस्था व रूढ़िवादिता दृष्टिगोचर होती है जिनमें नवाचारों का आंशिक प्रयोग ही प्राप्त होता है। अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में भी नवाचारों का अधिकाधिक प्रयोग करना आवश्यक है। यद्यपि शिक्षण एक कला है तथापि नवाचारों का प्रयोग उसे और प्रभावशाली बनाने में मदद करेगा तथा उन नवाचारों के सही प्रयोग का प्रशिक्षण भी प्रदान करना चाहिए, जिससे अधिगम की कठिनाइयों को दूर किया जा सके।

5. शिक्षणाभ्यास सम्बन्धी समस्यायें–शिक्षणाभ्यास अध्यापक शिक्षा का सर्वाधिक उपेक्षित पक्ष है। पाठयोजना निर्माण से लेकर अध्यापकीय निरीक्षण, समय एवं विषय-वस्तु का समन्वयन, विश्लेषणात्मक मूल्यांकन

तक प्रत्येक अध्यापन सम्बन्धी व्यावहारिकता को स्वयं वास्तविक स्थिति में करने के पहले पूर्वाभ्यास का अत्यधिक महत्व होता है। परन्तु वर्तमान में शिक्षणाभ्यास हेतु उपयुक्त विद्यालयों की व्यवस्था का अभाव तथा एक प्रशिक्षक पर अधिकाधिक प्रशिक्षुओं की संख्या अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। ऐसे प्रशिक्षण सभी की शिक्षण बारीकियों पर ध्यान नहीं दे पाते तथा किसी प्रकार यह पाठयोजना की संख्या पूरा करने तक सीमित हो जाता है। वर्तमान में प्रशिक्षण व प्रशिक्षुओं की उपयुक्त संख्यानुसार समूह बनाने चाहिए, जिससे सभी के प्रायोगिक क्रियाकलाप का निरीक्षण किया जा सके। ऐसे विद्यालयों को सुनिश्चित करना चाहिए जहाँ प्रशिक्षणार्थी अपने शिक्षणाभ्यास अच्छी तरह पूर्ण कर सकें।

6. परीक्षा सम्बन्धी समस्याएँ–अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में प्राय: परीक्षा संकलनात्मक रूप में सत्रान्त में ही आयोजित किए जाने के कारण निरन्तर मूल्यांकन की यथार्थता कभी वास्तविकता के धरातल पर नहीं आ पाती। इस क्षेत्र में प्रचलित वर्तमान परीक्षा प्रणाली न केवल एकपक्षीय है बल्कि यह सर्वथा अनुपयोगी भी है। यह प्रणाली स्मृति एवं पुन: प्रस्तुतिकरण की क्षमता का आकलन मात्र करती है जबकि अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में इसका महत्व आज नगण्य ही रह गया है। अत: अध्यापक शिक्षा के अन्तर्गत परीक्षा प्रणाली पर विचार करने की आवश्यकता है जिससे उनके कौशल व ज्ञान का सही मूल्यांकन हो सके।

7. वित्त सम्बन्धी समस्याएँ–शिक्षण संस्थाओं को पर्याप्त वित्त प्राप्त नहीं होने के कारण आधारभूत आवश्यकताओं की भी पूर्ति अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में नहीं हो पाती, जिससे उसकी गुणवत्ता का सही संरक्षण नहीं हो पाता। अत: सरकार को ऐसे संस्थानों को अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता बनाये रखने वाली बुनियादी सुविधाओं को प्रदान करने की कोशिश करनी चाहिए।

अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में विविध परिस्थितियों से आने वाली समस्यायें चाहें वह प्रवेश सम्बन्धी हों, पाठ्यक्रम सम्बन्धी हों, नवाचार

सम्बन्धी हो, शिक्षणाभ्यास या बुनियादी सुविधाओं से सम्बधित हो उन सभी समस्याओं का समाधान अत्यन्त अनिवार्य है। विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या तथा उस जनसंख्या को शिक्षित करने का दायित्व अध्यापक पर ही होगा। ऐसी स्थिति में अध्यापक शिक्षा की समस्याओं को अत्यन्त शीघ्रता से दूर करना चाहिए। जिससे वे शिक्षा के माध्यम से लोगों को शिक्षित कर विश्व में सुख शान्ति व भाईचारे का वातावरण बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके।

संदर्भ

1. मिश्र, भास्कर - शिक्षा और समाज
2. शर्मा, आर. ए. - अध्यापक शिक्षा
3. सक्सेना, एन. आर. - अध्यापक शिक्षा
4. शुक्ल, रमाशंकर - शिक्षक-शिक्षा दशा एवं दिशा
5. भट्टाचार्य, जे. सी. - अध्यापक शिक्षा

अध्यापक शिक्षा में मूल्य मीमांसा : वर्तमान परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियाँ

हर्षवर्धन वशिष्ठ

शिक्षा का सदा से ही यह उद्‌देश्य रहा है कि वह मनुष्य को आदर्श मानव में परिणत करे। सम्पूर्ण आध्यात्मिक और दार्शनिक चिन्तन का भी सदा से ही आदर्श व उन्नत मानवीय जीवन केन्द्र बिन्दु रहा है व्यक्ति अपने जीवन में परमानन्द को कैसे प्राप्त कर सकता है और इसका स्वरूप क्या हो सकता है, जीवन की अन्तिम सत्यता क्या है, इस सत्यता का साक्षात्कार कैसे हो सकता है, आदि मूलभूत प्रश्न सदा से ही दार्शनिकों को आक्लान्त करते रहें है। हर समाज में, हर काल में, हर दार्शनिक और आध्यात्मिक मान्यता में अपने-अपने ढंग से इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया है किन्तु इनमें विभिन्नता देखने को मिलती है सत्य की प्रकृति क्या है, ब्रह्माण्ड की संरचना क्या है, ज्ञान की पराकाष्ठा क्या है, स्वरूप क्या और शाश्वत मूल्य क्या है, आदि के सम्बन्ध में विभिन्नतायें मिलती है किन्तु एक आधारभूत तथ्य पर सभी एकमत प्रतीत होते है कि उन्नत, भव्य और आदर्श मानव जीवन सम्भव है और यह व्यक्ति की स्वयं के प्रयास और क्षमता में निहित है जिन शाश्वत मूल्यों में व्यक्ति का जीवन परम सुखकर और आनन्दमयी हो सकता है वह व्यक्ति स्वत: ही प्राप्त कर सकता है और वह उसके ज्ञान, बोध और प्रतिबद्धता में निहित होता है आदर्श मानव की संकल्पना मूल्यों में जुडी है मूल्य का स्वरूप अन्तिम सत्यता की अवधारणा से जुड़ा है और अन्तिम सत्यता की अवधारणा ज्ञान की अवधारणा को बनाता है। वस्तुत: अन्तिम सत्यता या शाश्वत सत्य वह आदर्श स्थापित करता है जिसके अनुरूप मानव जीवन को अनुवादित करना जीवन का लक्ष्य हो जाता है इस अनुवाद की प्रक्रिया में जिस ज्ञान, कौशल और

योग्यता, व्यवहार और आदतों की आवश्यकता होती है वह ज्ञान की संकल्पना होती है। मनुष्य जीवन की सार्थकता को जब इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है जो शाश्वत सत्य, ज्ञान और मूल्यों का स्वरूप विकसित होता है। समस्त दार्शनिक चिन्तनों में यही केन्द्र बिन्दु रहा है इसलिए शिक्षा दर्शन में सत्य, ज्ञान और मूल्यों की एक निश्चित संकल्पना निहित होती है।

मूल्य का अर्थ - मूल्य का सम्बन्ध आस्था और विश्वासों से होता है। आस्था, विश्वास और आशक्ति या प्रेम को दो आधारों पर समझने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः अनुराग, आस्था, व्यक्ति के इहलौकिक और पारलौकिक जीवन से संबधित होते है और इन दोनों ही तरह से संसार में उसकी परिपूर्णता हेतु दार्शनिक मान्यताओं ने अलग-अलग सीमायें निधारित की है। भारतीय चिन्तन में परमानन्द और चिरानन्द इहलौकिक जीवन की इति और पारलौकिक जीवन की प्राप्ति के लिए आवश्यक माना गया है, उसी प्रकार पाश्चात्य दर्शन में भी 'व्लेसडनेस' या ईश्वरीय वरदान के प्रति आस्था, विश्वास और आशक्ति में, जो ईश्वर के प्रति है, निहित मानी गई है। ईश्वरीय कृपा मनुष्य की पूर्णता की पराकाष्ठा है। इहलौकिक रूप में भौतिक सुखों की प्राप्ति प्राकृतिक मानव की जिस प्रकार पूर्णता मानी गई है, उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा का सबसे बड़ा सुख दैवीय कृपा या वरदान है प्रो. स्टर्लिंग लिम्प्रेश्ट, अवर फिलासफिकल ट्रेडीशन, में व्यक्त करते है कि "एक शाश्वत अच्छाई, पूर्णता है, सत्य है, जो सम्पूर्ण सृष्टि के अन्तराल में केन्द्रित है, सम्पूर्ण सृष्टि में अभिव्यक्त होती है यही वस्तुतः वह मूल्य है जिसकी प्राप्ति मानव जीवन का लक्ष्य है।" थियोडोर ब्रेमल्ड इसे स्पष्ट करते हुए व्यक्त करते है कि- "मूल्य उन सत्यताओं का ज्ञान है जिन्हें समाज अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए स्थापित करता चलता है। जब व्यक्ति इन मूल्यों के प्रति समर्पित हो जाता है, जब यह मूल्य उसे जीवन में आस्था और प्रतिबद्धता में बदल जाते है तो व्यक्तित्व एकीकृत हो जाता है।"

हमारी इच्छायें, अनुभूतियाँ, प्रेरणा, ऋण, आदि जो आदर्श व्यक्तित्व से उद्‌भूत हो रहे हैं, वे ही मूल्यों का निर्माण करते हैं। स्वास्थ्य, चरित्र, न्याय, कौशल, कला, साहित्य, ज्ञान, दर्शन, धर्म आदि वे घटक हैं जो व्यक्ति कि आवश्यकताओं और संतुष्टि को अभिव्यक्त करते हैं। यह ही वह मूल्य है जो आध्यात्मिक आदर्श व्यक्तित्व की सांसारिक जगत में अभिव्यक्ति है। यह शाश्वत मूल्यों की वैयक्तिक अनुभूतियाँ है जो वैयक्तिक और समष्टिगत रूप से संस्थाओं और व्यवहारों में व्यक्त होती है यह वे मूल्य हैं जो मनुष्यों के तात्कालिक अपेक्षाओं, इच्छाओं और रुचियों को निर्धारित करने में आधार बनते है। यह अवश्य है कि इन मूल्यों की वरीयता, श्रेष्ठता अथवा प्राथमिकता का निर्धारण अलग-अलग होता रहा है। इ.एस.ब्राइटमैन अपनी पुस्तक, एन एन्ट्रोडक्शन टू फिलोसफी, में मूल्यों की प्राथमिकता या वरीयता के विवाद को खत्म करते हुए व्यक्त करते हैं कि "मूल्यों को श्रेष्ठ या गौण के समूहों में रखना इस तथ्य पर निर्भर होता है कि वे मानव जीवन की समग्रता में कितना योगदान देते है।"

वर्तमान परिप्रेक्ष्य - मूल्यों के सम्बध में एक नवीन अवधारणा चार्ल्स सेन्डर्स पीयर्स, विलियम जेम्स, जॉन डीवी जैसे शिक्षा दार्शनिकों ने दी इनकी यह मान्यता अर्थ-क्रियावाद, प्रयोजनवाद व व्यवहारवाद, जो कि एक ही चिन्तनधारा के अनेक नाम है, में अभिव्यक्त हुई है इस मान्यता ने मूल्यों को व्यक्ति की आवश्यकताओं और उसकी संतुष्टि से जोड़ा। विलियम जेम्स ने यह मानक दिया कि 'दी इसेन्स आफ गुड इज सिम्पली टू सैटिस्फाइ डिमान्ड' अर्थात् व्यक्ति को जो सुख और आनन्द देते है वे सब धनात्मक मूल्य हैं और जो दुःख और दर्द देते है वे सब नकारात्मक मूल्य होते है। थार्नडाइक मूल्यों को और परिभाषित करते हुए व्यक्त करते है कि वे सारी चीजें जो व्यक्ति के द्वारा सोची या अनुभव की जा सकती है उनके मूल्यों का अच्छा, खराब या बेकार का निर्धारण किया जा सकता है। वस्तु विचार, घटना या गुणों में मूल्यों का निर्धारण व्यक्ति के निर्णय का परिणाम होता है मूल्य वस्तुतः संतुष्टि

और आनन्द में निहित होता है। इस मान्यता ने अनुभव को प्रधान माना है जीवन के सभी मूल्य अनुभव से जुड़े हैं। सत्य निरपेक्ष नही है बल्कि अनुभव के आश्रित है। सत्य का मूल्य वह है जो क्रिया में प्रस्फुटित होता है। सत्य की यह मान्यता अनुभववादियों के अनुसार नैतिक व धार्मिक मूल्यों के सम्बध में भी सही है किसी भी नैतिक विश्वास के व्यावहारिक परिणामों द्वारा ही यह निश्चित किया जा सकता है कि कोई मूल्य सही है या गलत। जीवन संघर्ष में यदि नैतिक, धार्मिक मूल्य सहायता पहुँचा सकते हों, आन्तरिक शान्ति दे सकते हों तब तो वे सार्थक सिद्ध हो सकते हैं अन्यथा नहीं।

मूल्यों की संकल्पना में एक दृष्टिकोण प्रयोगवादियों का है। इन्होंनें तात्कालिक ढंग से किसी विचार, वस्तु या घटना की सत्यता को जो संतुष्टि प्रदान करती है उसे सत्य स्वीकार नही किया बल्कि परिवर्तित चिन्तन के आधार पर जो स्वीकार योग्य है, अपेक्षित है, चाही गई है, अभिस्वीकृत है, उसे सत्य माना है! यह मूल्य के सम्बंध में एक नई मान्यता है। कोई भी मूल्य धार्मिक, नैतिक, सौन्दर्यात्मक रूप से मान्य इसलिए नही है क्योंकि वे तात्कालिक रूप से वैसे ही प्रतीत होते हैं। मूल्य वैसे ही प्रकल्पित हैं। जैसे वैज्ञानिक, प्रकल्पना मूल्य परिकल्पित होते है और उनका परीक्षण, स्पष्टीकरण तथा निर्धारण वैज्ञानिक शोध की तरह किया जाता है और परिवर्तित चिन्तन के द्वारा साक्ष्य और विचार को प्रस्तुत करते हुए उन्हे स्थापित किया जाता है।

चुनौतियाँ - मूल्य की एक मान्यता तो यह है कि यह पूर्व स्थापित है और अपने आप में परिपूर्ण है जिन्हे डीवी 'एण्ड इन इट सैल्फ' कहता है। दूसरी मान्यता मूल्यों को परिवर्तित चिन्तन से जोड़ती है। एक सम्बंध 'गुड लाइफ', अच्छे जीवन से उद्भूत है और यह अच्छा जीवन किन्हीं शाश्वत यथार्थ और आदर्श पर आधारित है दूसरा 'लाइफ गुड टू लिव', जीने योग्य अच्छा जीवन की मान्यता पर आधारित है किन्तु आज की परिवर्तित परिस्थितियों में जहाँ ज्ञान और विज्ञान ने अनुभव और अनुभूमियों की नई सीमायें दी हैं, नवीन मूल्यों

और आस्थाओं को स्थापित किया है, सामान्य व्यक्ति अपने निर्णय में द्विविधात्मक स्थिति में पड़ जाता है मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया में जब भी मानसिक व मनोवैज्ञानिक निर्माण के प्रभावों में कमी आती है तो मूल्यों का अवमूल्यन हो जाता है। मूल्यों के अवमूल्यन का एक कारण यह भी है कि व्यक्ति के जीवन के विभिन्न आयामों से सम्बंधित जो मूल्य हैं उनके मध्य स्थित सहसम्बंधता को समझ नही पाता और विभिन्न मूल्यों को अलग-अलग करके देखता है और अपने व्यवहार में उनसे सम्बंधित आयामों में उन्हे अपनाने का प्रयास करता है यह मूल्यों के सम्बंध में उसकी भ्रान्ती मूल्यों के अवमूल्यन का कारण है। धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक मूल्य कुछ ऐसे ही मूल्य जिनके समझने में या उनमें स्थापित एकरूपता और सहसम्बंध में अनुभव करने में व्यक्तिगत त्रुटि करता है मूल्यों के समझ की यह भ्रान्ती मूल्यों के अवमूल्यन के लिए अधिक उत्तरदायी प्रतीत होती है आवश्यकता इस बात की है कि मूल्यों के अवमूल्यन को रोका जाये। मूल्यों का एक ढाँचा (वेल्यू फ्रेमवर्क) हो जो उनके निर्णयों को आधार दे। यह सम्भव बनता है शैक्षिक प्रभावों द्वारा, अतः शिक्षा में मूल्यों का क्या स्वरूप हो, इस पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

सन्दर्भ सूची

१) **अरनेस्ट इ.बैलेस**-दी थियरी एण्ड प्रेक्टिस आफ टीचिंग, न्यूयार्क, हारपर, 1950

२) **ओ.कोनर डी.जे.**-इन्ट्रोडेक्शन टू फिलासफी आफ एजुकेशन, फिलासफिकल लाइब्रेरी, न्यूयार्क, 1956

३) **किलपेट्रिक विलियम एच.**-फिलासफीज आफ एजुकेशन, मेकमिलन, न्यूयार्क, 1951

४) **जार्ज एच. मीड**-माइन्ड सैल्फ एण्ड सोसायटी, शिकागो यूनि. प्रेस, 1935

५) **पावर एडवर्ड जे.**-एवोल्यूशन आफ एजुकेशन थाट, एपल्टन सेंच्युरी क्राप्ट न्यूयार्क, 1969

मूल्य संकट एवं सम्भव समाधान

राकेश गौतम

आधुनिकयुग विज्ञान का युग कहा जाता है। जिसमें भौतिकवाद के साथ-साथ उपभोक्तावाद की जड़ें मजबूत होती जा रही है, इस कारण व्यक्ति स्वयं से हटकर परिवार व समाज के बारे में कुछ नहीं सोचता। इसमें हम ही स्वयं जिम्मेदार है क्योंकि नई पीढी में हम मूल्यों का सृजन नही करा पा रहे है अथवा वह हमारें मूल्यों से सन्तुष्ट नही है। इसका मूल कारण हमनें उसे उस संस्कृति का ज्ञान ही नही कराया जिस संस्कृति से भारत को जाना जाता है-

सत्य अहिंसादिगुणैः श्रेष्ठा विश्वबन्धुत्वशिक्षिका।
विश्वशान्तिः सुखाधात्री भारतीया हि संस्कृतिः॥

इन सब लक्षणों का त्याग करते हुए हम उस मार्ग की ओर अग्रसर हो रहे है जहाँ मूल्य व धर्म नाम की कोई वस्तु दिखाई नही पड़ती, इस कारण आज भी हमारे समाज में आतंकवाद, भ्रष्टाचार, भ्रूण-हत्या, यौन-शोषण, दहेज-प्रथा आदि दिन-प्रतिदिन वृद्धि करते जा रहे है। क्या कोई कठोर कानून बनाकर या इन पर प्रतिबन्ध लगाकर इनको बाधित किया जा सकता है? नही इन सब कार्यो से इसमें सुधार नही किया जा सकता अपितु इसमें तो व्यक्ति स्वयं से कम माँ, परिवार तथा समाज से अधिक सृजन करता है। इस चर्चा के विषय में आदरणीय प्रधानमन्त्री ने 15 अगस्त 2014 को लालकिले की प्राचीर से एक बात कही थी जो विचारणीय भी है - "हम प्रत्येक कार्य में पुत्रियों से जाँच- पड़ताल करते है यदि हम उस जाँच-पड़ताल को पुत्रों के साथ सम्बन्धित कर दें तो भारत में घृणित स्थिति की नौबत ही न आए।"

समय-स्थिति के अनुसार मूल्यों में परिवर्तन होता रहता है उदाहरणार्थ- डाकू व डॉक्टर दोनो ही व्यक्ति पर चाकू चलाते है, किन्तु

दोनों के भाव विपरीत होने के कारण डॉक्टर का मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत किया जाता है इसके विपरीत में डाकू का अस्वीकृत।

मूल्यों के सुरक्षित व संवर्द्धन में धर्म का मुख्य आधार होता है जो इस प्रकार स्पष्ट है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। (मनुस्मृति6.92)

आज देखा जाए तो सुप्रतिष्ठित भारत के सबसे बड़े लोकतान्त्रिक संविधान में धर्मनिरपेक्ष शब्द की बार-बार पुनरावृत्ति होती है। मनुष्य को धर्म से कैसे विलग किया जा सकता है। सम्राट अशोक ने अपने चक्र में "धर्मचक्रप्रवर्तनाय" से प्रवृत्त किया है।

भारत की न्यायपालिका में गान्धारी द्वारा उक्त वाक्य "यतो धर्मस्ततो जयः" ध्येय रूप में स्वीकृत किया जाता है। इसके साथ-साथ न्याय के लिए गीता की सौगन्ध तो दिलाई जाती है, किन्तु इसको पढ़ना व पढ़ाना अनिवार्य नही समझा जाता है, इससे प्रतीत होता है कि वास्तविक जीवन-मूल्य हमसे बहुत दूर है जिनको हम अभी तक प्राप्त नही कर सके है। यह उक्ति भी प्रसिद्ध है कि "मूल्यों को सिखाया नही। जाता अपितु अपनाया जाता है।

महाभारत में भी विद्वान् पुरुषों द्वारा इन्हें प्राप्त करने की एकक्रमबद्धता बताई है-

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः।।(महा.वन.2.10)

यदि मूल्यों के बारे में ज्ञात किया जाए तो हमारे शास्त्रों में पग-पग पर मूल्यों का वर्णन स्पष्ट दिखाई पड़ता है। जिस प्रकार बालक के लिए पिता आदर्श होता है, वही पिता बालक की आयु के साथ-साथ व्यवहार परिवर्तन करता है यही कार्य करना उसके लिए मूल्य बन जाता है यथा-

लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि तु ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवद् आचरेत्।।(चाणक्यनीति)

इन सब परस्थितियों को ध्यान रखते हुए हम सब मूल्यों के ह्रास के कारण बने हुए है क्योंकि यदि देखा जाए तो मानवीय मूल्यों के अतिरिक्त भारतीय लोकतान्त्रिक परम्परा और समाज के स्वरूप को देखते हुए शिक्षा-संस्थाओं में निम्नांकित मूल्यों की शिक्षा दी जानी चाहिए-

1.लोकतान्त्रिक मूल्य 2.आर्थिक मूल्य
3.राजनैतिक मूल्य 4.धार्मिक मूल्य 5.भ्रातृत्व मूल्य

मूल्य संकट व सम्भावित समाधान

1.लोकतान्त्रिक मूल्य-

आधुनिक भारत में लोकतान्त्रिक पद्धति की ओर सुदृढ़ करना होगा क्योंकि आज भी हम अधिकांश क्षेत्रों में देखें तो अँग्रेजी हुकूमत के लक्षण दिखाई पड़ते है, जिससे व्यक्ति स्वयं को समाज से विलग समझता है तथा इस लोकतान्त्रिक व्यवस्था के आधार पर समाज से जाति, वर्ण, धर्म, वंश, लिंग, वर्ग और क्षेत्रीयता का विभेद समाप्त करना होगा। सभी नागरिकों में समानता, स्वतन्त्रता और सामाजिक-न्याय के विश्वास को दृढ़ करना होगा।

लोकतान्त्रिक मूल्यों के लिए सर्वप्रथम शिक्षित व्यक्ति जो समाज का नेतृत्व करता है। वह अपने में जन-साधारण के प्रति आदर का भाव जागृत करे तथा जन-कल्याण के आगे अपने व्यक्तिगत कल्याण को महत्त्व न दे। समस्याओं को मूल रूप से जनता के समकक्ष रखा जाए उन्हें तोड़ा-मरोड़ा न जाए। ऐसा होने पर रामराज्य की प्रतीति होगी। यथा-

नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः।
शेरते विवृतद्वारा कृषिगोरक्ष-जीविनः।।(वा.रा.अयो. 67.19)

मूल्य संकट एवं सम्भव समाधान

नविता
शोध-छात्रा (शिक्षाशास्त्र)

विश्वमानचित्र पर कालक्रम से अनेक सभ्यता और संस्कृतियों का जन्म (और ह्रास) हुआ है। कुछ कालान्तर में नष्ट हो गई और कुछ आज भी अक्षुण्ण है। इन्हीं में से भारतीय सभ्यता की भी गणना होती है जो अत्यंत प्राचीन होते हुए भी आज उत्तरोत्तर उन्नत हो रही है। जैसा कि इकबाल ने कहा है–

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।

सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा।।

मानव मूल्य किसी भी सभ्यता के उत्थान या पतन में महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है। हालांकि एक ओर जहाँ विश्व परमाणु युग में प्रवेश कर चुका है और तकनीकी का इतना विकास हुआ है वहीं भौतिकतावादी प्रवृत्ति भी मनुष्य के अंदर प्रबल हो चुकी है। जैसे-जैसे सुख-सम्पदा बढ़ रही है। आदर्श और नैतिकता का ह्रास होते जा रहा है। आधुनिकता का दुष्प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ा है और भारत भी इससे अछूता नहीं रहा है। एक समय था जब भारत विश्वगुरु कहलाता था। इसका श्रेय भारत की प्राचीन संस्कृति को जाता है। पाश्चात्य मान्यता के अनुसार भारत 'प्रकृतिपूजक' संस्कृति (Pegan Culture) का देश रहा है।

भारत की जो प्राचीन सभ्यता थी उसमें मूल्य एवं नैतिक शिक्षा को

न सिर्फ पढ़ाया बल्कि व्यवहार में भी लाया जाता था। 'चाणक्य नीति' में कहा गया है–

'माता शत्रु पिता वैरी येन बालो न पाठित:'।

यहाँ पढ़ाने का अर्थ न केवल बच्चों को विषय का ज्ञान देना बल्कि उसे आचार-विचार, सद्गुण एवं मूल्यों का भी ज्ञान कराना है। आज वर्तमान समय में हमारे समक्ष ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि हमें छात्रों को मूल्य सिखाने की अपेक्षा उसे पढ़ाने पर बल दे रहे हैं।

पाश्चात्य विद्वान् सी.वी. गुड के अनुसार-'मूल्य वह चारित्रिक विशेषता है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।'

मानवीय मूल्यों की व्यवहारिक शिक्षा बच्चों को बचपन में ही दी जाती थी। क्योंकि बाल्यकाल में दिए गए संस्कारों का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। व्यक्तिगत मूल्यों के आधार पर ही मानव सामाजिक मूल्यों की ओर अग्रसर होता है। क्योंकि व्यक्ति अपने प्रति जिस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा समाज से रखता है उसी प्रकार का व्यवहार समाज से करता है। किन्तु वर्तमान समय में संयुक्त परिवारों के विघटन एवं एकल परिवार व एकल संरक्षक/अभिभावक अवधारणा विकसित होने के कारण बच्चों में मूल्यों का अत्यधिक अभाव परिलक्षित होता है। अत: मूल्य शिक्षण का संपूर्ण दायित्व विद्यालय एवं अध्यापकों पर आ गया है। शिक्षकों के विषय में स्वामी विवेकानन्द का कथन है–

'वह छात्रों के स्तर पर आकर उन्हें समझने का प्रयास करता है और अपनी आत्मा का उनमें स्थानांतरण करता है। ऐसे ही शिक्षक वास्तव में छात्रों को अच्छे मूल्य-संस्कार दे सकते हैं।'

आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव के कारण समाज में मूल्यों की अवधारणा में बदलाव हुआ है। आज समाज भय के आवरण में लिपटा हुआ है। आंतरिक कलह, दुर्व्यवस्था, साम्प्रदायिक भेदभाव, जातिवाद, आर्थिक

विषमता आदि संकीर्णता मानव को घेरे हुए हैं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना और विश्व के मूल्यों का ज्ञान देने वाले भारतवर्ष में जितना नैतिक पतन हुआ है उतना किसी अन्य राष्ट्र में नहीं हुआ।

मूल्य संकट

आज समाज में निम्नलिखित परिदृश्य उपस्थित हो रहा है–

1. समाज में पाश्चात्य का अंधानुकरण एवं भौतिकवाद का विकास।
2. संयुक्त परिवार का विखंड एवं एकल परिवार तथा एकल संरक्षक की अवधारणा का विकास।
3. भूमंडलीकरण के कारण शिक्षा में अतिशय उपभोक्तावाद, व्यवसायवाद तथा सांस्कृतिक अध्यारोपण।
4. शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी को उत्पादक बनाकर लक्ष्य की प्राप्ति करना।
5. सूचना क्रान्ति के विस्फोटन के कारण मीडिया द्वारा उचित-अनुचित कार्यक्रमों का प्रसारण।
6. विज्ञान एवं तकनीकी विकास के साथ-साथ अत्याधुनिक हथियारों का निर्माण तथा बहुविध आतंकवाद का संकट।
7. बच्चों के यौन-शोषण के कारण उनमें मानसिक कुंठा का विकास जिससे उनका अनैतिक गतिविधियों में संलग्नता।
8. 'क्विक मनी' की अवधारणा के फलस्वरूप मानवीय, सामाजिक, सामुदायिक तथा आर्थिक मूल्यों का हनन।
9. राष्ट्र के राजनेताओं में उच्च मानवीय आदर्शों का अभाव।
10. परिवार द्वारा बच्चों में ईर्ष्या द्वेष की भावना को विकसित

करना।

11. नशाखोरी, अस्पृश्यता, कर की चोरी, अवैध रूप से धन संग्रह, कालाबाजारी, धार्मिक उन्माद व सामाजिक-आर्थिक न्याय में कमी।

संभव समाधान

किसी भी समस्या का समाधान ज्ञान तथा विवेक से किया जा सकता है। आधुनिक युग में उत्पन्न हुए मूल्य संकट का समाधान भी ज्ञान और उचित शिक्षा व्यवस्था द्वारा किया जा सकता है। मूल्य संकट निवारण हेतु मुख्यत: निम्न समाधान हैं–

1. शिक्षा द्वारा शाश्वत मूल्यों तथा समाज के तात्कालिक सरोकारों सहित बृहद् मानवीय आदर्शों को प्रतिबिम्बित करना।
2. बच्चों में सहिष्णुता और दूसरों के लिए सम्मान की भावना को प्रेरित करना।
3. शिक्षा द्वारा बच्चों की विस्तृत क्षमताओं एवं दक्षताओं को प्रोत्साहित तथा पोषित करना एवं इस कार्य हेतु उन्हें उचित संसाधन उपलब्ध कराना। यथा–संगीत, नृत्य, चित्रकला, खेल-कूद, प्रतियोगिताएँ आदि।
4. शिक्षा द्वारा बच्चों में समस्या समाधान कौशल का विकास करना।
5. स्कूलों में सभी स्तर पर लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया पर बल दिया जाए।
6. शैक्षिक ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना।
7. शिक्षार्थी को शिक्षण प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार के रूप में देखना।

8. देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के संबंध में जागरूकता उत्पन्न करना और उनमें वांछित सुधार लाने के लिए प्रोत्साहित करना।

9. सभी शिक्षा संस्थाओं में हर रोज प्रातःकालीन सभा होनी चाहिए। प्रार्थना, भजन, देशभक्ति, गीत, विद्यार्थी एवं अध्यापक अथवा मुख्याध्यापक द्वारा कोई नैतिक भाषण आदि आयोजित करना।

10. सभी विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में मूल्यों की शिक्षा को अनिवार्य विषय बनाया जाए।

11. जीवन मूल्यों से संबंधित विषय पर व्यंग्य एवं नाटक आयोजित किए जाए।

12. अन्तर्राष्ट्रीय दिवस जैसे यू. एन. ओ. दिवस, मानव अधिकार दिवस, विश्व स्वास्थ्य दिवस, विश्व शान्ति आदि भी आयोजित किए जाए।

13. वर्ष भर अच्छा आचरण और अनुशासित छात्र/छात्रा को वार्षिकोत्सव में पुरस्कृत करना।

14. 'गर्ल गाइडिंग, स्काउटिंग एवं एन. एस. एस.' को ज्यादा से ज्यादा लोकप्रिय बनाना जिससे उनमें आपसी सामंजस्य एवं सेवा भावना का विकास हो।

15. शिक्षक की भूमिका ज्ञान के स्रोत के बदले एक सहायक की होनी चाहिए विविध उपायों से मूल्यों का ज्ञान एवं बोध कराने में सहायक हों।

16. सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी, मल्टी मीडिया, उपचारात्मक शिक्षा, सतत तथा व्यापक मूल्यांकन एवं मनोरंजक उपागम द्वारा मूल्यों को प्रतिपादित करना।

17. विद्यालयों में त्योहार एवं जयंती पर होने वाले अवकाशों को समाप्त कर उन्हें मूल्य संवर्धक पाठ्य-सहगामी क्रियाओं से जोड़ा जाए।

निष्कर्ष

मिर्जा गालिब जी ने इन पंक्तियों के द्वारा मूल्य संवर्धन हेतु अत्यंत उत्कृष्ट संदेश दिया है–

न सुनो, गर बुरा कहे कोई।

न कहो, गर बुरा करे कोई।

रोक लो, गर गलत चले कोई।

बख्श दो, गर खता करे कोई।

संदर्भ

1. गुप्त, नत्थूलाल : मूल्यपरक शिक्षा और समाज, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005

2. जयश्री : मूल्य पर्यावरण और मानव अधिकार की शिक्षा, शिप्रा प्रकाशन, दिल्ली, 2008

3. उपाध्याय, प्रतिभा : भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2009

4. श्रीवास्तव सुषमा, अग्रवाल, विनीता : समाज में मूल्यों का परिवर्तमान परिदृश्य एवं उच्च शिक्षा, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2008

मूल्य-संकट सम्भव समाधान

देशबन्धु
शोध छात्र

शिक्षा सामाजिक विषय है, समाज की उन्नति, समृद्धि एवं यथा स्थिति के संरक्षणपूर्वक विकास के लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण साधन है। भारतीय शिक्षायोग 1962-64 के अनुसार शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का सर्वोत्तम साधन है। यह परिवर्तन समाज के संरक्षण तथा अभिवर्धन के लिए आवश्यक है। समाज सदा गतिशील रहता है तथा इसकी ऊपरीगामी प्रवृतियाँ तथा अधोगामी प्रवृतियाँ निरन्तर घटित होती रहती है। यद्यपि मानवता के कल्याण के लिए ऊपरीगामी प्रवृतियों का गतिशील होना अपेक्षित है। परन्तु अधिकतर अधोगामी प्रवृतियाँ प्रबल हो जाती हैं, और समाज के अध: पतन का कारण बनती है। आज समाज में मूल्य-संकट एक बड़ी समस्या के रूप में उभर रहा है। उच्च नैतिक मूल्यों के स्थान पर स्वार्थ परता, हिंसा, भ्रष्टाचार, समाज अहितकारिणी गतिविधियों को बढावा मिल रहा है। आज समाज में अनैतिकता का खुला प्रदर्शन हो रहा है और कई परिस्थितियों में उसको महिमा किया जा रहा है। उसके प्रति युवाओं का आकर्षण बढ रहा है। यह समाज की चिन्ता का विषय है। इस विकट परिस्थिति को शिक्षा के माध्यम से ही बदला जा सकता है। शिक्षा का मेरू दण्ड है अध्यापक। जिसका निर्माण अध्यापक शिक्षा के द्वारा किया जाता है। अध्यापक नैतिक शिक्षा के माध्यम से विद्यालयीय कक्षाओं में तैयार हो रहे भावी नागरिकों को अच्छे संस्कार से युक्त किया जा सकता है। नैतिक शिक्षा के कारण ही महात्मा बुद्ध, ईसा मसीह, हजरत

मुहम्मद तथा गुरु नानक जैसे आध्यात्मिक व्यक्तियों को भी महान् शिक्षक के रूप में सम्बोधित किया जाता है। नैतिक मूल्यों का संकट केवल भारत में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में दृष्टिगोचर होता है। परीक्षा में पास होने के लिए–

(1) अवैध साधनों का आवम्बलन,

(2) उपाधि प्राप्त करने के लिए भ्रष्ट तरीकों का आश्रय,

(3) चलती कक्षाओं में एकल या सामूहिक हत्यायें एवं संगठित रूप से समाज में हिंसा की प्रवृत्ति।

भारत के साथ-सारे विश्व में देखी जा रही है। इसके समाधान के लिए अध्यापक शिक्षा को शिक्षकों के अध्यापन में इस बात की विशेष व्यवस्था करनी चाहिए, कि शिक्षक केवल अध्यापन को केवल छात्रों को सूचनाएं देने, पुस्तकीय ज्ञान को बढाने तक ही सीमित न रखें अपितु छात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए जागरूक चेष्टाएँ करें तथा इसके लिए ज्ञानात्मक, तथा प्रयोगात्मक गतिविधियों का अध्यापक शिक्षा की पाठ्यचर्या में समावेश किया जाये, तथा शिक्षकों के व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ नैतिक मूल्यों के प्रयोग को भी मूल्यांकन का विषय बनाया जाये। ज्ञान का उपयोग समाज के स्वस्थ विकास के लिए किये जाने की व्यवस्था हो तथा अध्यापकों के कार्य के मूल्यांकन में भी नैतिक मूल्यों के शिक्षण, संवाहन तथा उनके आचरण के मूल्यांकन को भी अधिभार दिया जाना चाहिए।

मूल्यसंकट एवं सम्भव समाधान

आशा
विद्यावारिधि

जीवन में सफलता का आधार वास्तव में शिक्षा में निहित है। मनुष्य जीवन पर्यन्त सीखता रहता है तथा उसके अनुभव में निरन्तर वृद्धि होती है। जैसे-जैसे वह अधिकाधिक सीखता है वह ऐसे मूल्य प्राप्त करता है जो उसके व्यवहार को निर्देशित करते हैं। ये निर्देशक और जीवन को नई दिशा प्रदान करते है, इन्हें मूल्य कहा जाता है।

मूल्य एक ऐसी आचरण संहिता या सद्‌गुणों का समूह है। जिसे अपनाकर व्यक्ति अपने चरित्र का विकास कर सकता है। इसमें मानव की आस्था, धारणायें, विचार एवं विश्वास सम्मिलित होते हैं। भारतीय धर्मग्रन्थों में मूल्य के लिए शील शब्द अनेक स्थानों में प्रयुक्त हुआ है। मूल्य वे मानक या नैतिक व्यवहार की आचार संहिता है जो संहिता से निकली परम्पराओं द्वारा पोषित तथा अन्तःकरण द्वारा संरक्षित होते हैं। मानव इनको आधार बनाकर अपनी जीवनशैली का निर्माण करता है और जीवन आदर्शों को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

Value are the ideas, belifes or norms which as society or the large majority of a society's

मूल्य एक ऐसी आचार संहिता है जिसे मानव अपने संस्कारों तथा पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपने जीवन शैली का निर्माण करता है और अपने व्यक्तित्व का विकास

करता है। मूल्य किसी वस्तु या स्थिति का वह गुण है जो समालोचना व वरीयता को प्रकट करता है। यह एक आदर्श या इच्छा है जिसे पूरा करने के लिए व्यक्ति जीता है तथा आजीवन प्रयास करता है।

मूल्यों के विभिन्न अर्थ–

- **मनोवैज्ञानिक अर्थ**–जो हमारी इच्छाओं को पूरा करता है वही मूल्य है।
- **जैविक अर्थ**–मूल्य उस वस्तु या क्रिया की विशेषताएं है जो हमारे जीवन की सुरक्षा एवं वृद्धि में सहायक होती है।
- **नीतिशास्त्र सम्बन्धी अर्थ**–वे वस्तुएं अथवा क्रियायें मूल्यवान हैं जो हमारी आत्मा को पूर्णता प्रदान करने में सहायक है।
- **दार्शनिक अर्थ**–मूल्य किसी वस्तु या व्यक्ति से सम्बन्धित नहीं होते बल्कि विचार या दृष्टिकोण से सम्बन्धित होती हैं। अतः जो चीज किसी व्यक्ति के लिए उपयोगी होती हैं वहीं उसके लिए मूल्यवान बन जाती हैं।

मानव अपनी कला, संस्कृति, दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर सदैव गर्व करता है। परन्तु आज अनास्था तथा पारस्परिक वातावरण में हमारी प्राचीन परम्परा एवं मूल्य धूमिल से हो गए हैं। आज का भारतीय पाश्चात्य उपभोक्ता संस्कृति का पोषक बन गया। उसने व्यावसायिक मानव का रूप ग्रहण कर लिया है। वह कर्तव्य सत्य अहिंसा प्रधान, आस्थाभाव वाली संस्कृति का प्रतिनिधि भी बनना चाहता है। विकास एवं प्रगति की इस दौड में हमारे मूल्य बुरी तरह से प्रभावित हो रहे हैं। विज्ञान के विकास को समुत्पन्न आपाधापी में जीवन के शाश्वत मूल्य खो गए हैं। पद धन की लिप्सा, विश्वासघात आदि प्रवृतियों ने हमारे भारतीय समाज को ग्रस्त कर लिया है। मूल्यों के ह्रास के कारण हमारे बीच सामाजिक अलगाव पनप रहा है। भारतीय सभ्यता का एक नया दोष उसे घुन की भांति खा रहा है वह है अमानुषीकरण का फैलाव और

उससे जुड़े मूल्यों का ह्रास। जितना अधिक मशीन का प्रभुत्व हमारी चेतना पर पड रहा है उसी अनुपात से हम अविश्वास एवं अनास्था के गर्त में डूबे जा रहे हैं। स्थिति यहां तक पहुँच गई है कि बड़े से बड़ा डॉक्टर, इंजीनियर भी अपने उपकरणों पर अधिक भरोसा करता है। आजकल अधिकांश लोग भौतिक सुविधायें जुटाने एवं अपना जीवन स्तर उन्नत बनाने के चक्कर में लगे हुए है। मानव स्वार्थपरता, दूसरों की भावनाओं का अनादर, मूल्यों का आचरण न करने की प्रवृत्तियों को अपनाए है जिससे मूल्यों की क्षति हो रही है।

मानव जीवनमूल्यों से भरा है। हमारे ऋषियों व समाज के श्रेष्ठतम व्यक्तियों के विचारों से मानवीय मूल्यों का आभास मिलता है। मनुष्य के विवेक पर भौतिक संस्कृति के आक्रमण के कारण जीवन के पुरातन मूल्यों में लोगों की आस्था समाप्त हो गई। परिवार बच्चों में मूल्यों का विकास कर सकता है। सर्वप्रथम परिवार में रहकर बच्चा परिवार के सम्पर्क में आता है। परन्तु आज माता पिता के पास इतना समय नहीं है कि वह अपने बच्चों में अच्छे मूल्यों का विकास कर सके। आधुनिक युग में जनसंचार के माध्यमों का खूब प्रसार हो रहा है। ये जन संचार के साधनों द्वारा कुछ ऐसे कार्यक्रमों का प्रसार भी हो रहा है जो मूल्यों के विकास को क्षति पहुँचा रहे हैं।

मूल्यों का ह्रास अथवा विघटन के कुछ अन्य कारण और भी हैं, जैसे–विकासवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण आध्यात्मिकता एवं आस्था की भावना का क्षीण होना, औद्यौगिकीकरण, नगरीकरण एवं जनसंख्या विस्फोट, सामाजिक, राजनैतिक जीवन में व्याप्त विघटनकारी प्रवृत्तियां, तर्क एवं बौद्धिकता का आधिक्य।

जीवन दर्शन में विभिन्नता के कारण व्यक्तियों के मूल्यों में विभिन्नता उत्पन्न होती है। भौतिकवादी भौतिकसुख को, मानवतावादी मानव सेवा का तथा धर्मपरायण एवं आध्यात्मिकता को सर्वोच्चमूल्य समझते हैं। आज के वैज्ञानिक तकनीकी युग की चकाचौंध में शारीरिक

निजी, बौद्धिक आदि विविध सुखों को भोगने की लालसा तीव्र हो गई है। किसी के लिए साधनभूतमूल्य महत्वपूर्ण हैं तो किसी के लिए साध्यभूतमूल्य। क्योंकि इन्हें किसी साध्य को प्राप्त करने के लिए साधन नहीं बनाया जाता है। ये मूल्य सदैव विकसित नहीं होते। मूल्य के विकास को उपयुक्त दिशा देने व सम्भव बनाने के लिए यह जरूरी है कि शिक्षक, अभिभावक, माता-पिता समुदाय के सदस्य बच्चों के शब्दों, भावों, कार्यों पर विचार करें। ये तीनों मूल्यों के सूचक की भूमिका तथा मूल्यों के विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

मूल्यों के विकास के लिए सम्भव समाधान–

- **प्रातकालीन सभा** - सभी शिक्षा संस्थानों में प्रतिदिन प्रातकालीन सभा होनी चाहिए। जिससे प्रार्थना, देश-प्रेम, गीत, नैतिक सम्मिलित होना चाहिए।
- सभी शिक्षा संस्थानों में मूल्यों की शिक्षा को अनिवार्य विषय बनाना।
- पाठयक्रम का पुनःनिर्माण।
- सभी शिक्षा संस्थानों में महापुरुषों के जन्मदिवस मनाना।
- जन माध्यम का प्रयोग।
- मूल्य उन्मुख पत्रिका।
- विद्यार्थियों में मूल्यों का विकास करने के लिए अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका।
- पाठयसहगामी क्रियाएं जैसे-स्काऊट गाईड, एन.एस.एस., भाषण प्रतियोगिता, व्यंग्य नाटक इत्यादि का आयोजन।
- मूल्यों के विकास में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका।

- अन्तर्राष्ट्रिय दिवस मनाना, जैसे–मानवाधिकार दिवस, शांति दिवस, शिक्षणसंस्थानों में मनाए जाने चाहिए। श्रेष्ठ मूल्यों के निर्माण में ये सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि आज भले ही मूल्यों में गिरावट आ रही है। मानव अपनी गौरवमयी संस्कृति एवं मूल्यों को भूलता जा रहा है। वह भौतिक संस्कृति का उपभोक्ता बन कर अपनी संस्कृति एवं मूल्यों का ह्रास स्वयं कर रहा है। उसने लालसा, घोरपाप, ईर्ष्या जैसी प्रवृत्तियों को अपना लिया है। परन्तु आज शिक्षण संस्थानों द्वारा मूल्यों के विकास एवं उत्थान हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा रही है। अध्यापक एवं माता–पिता भी बच्चे में मूल्यों का विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

संदर्भ

1. त्यागी, जी.एस.डी., शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, विनोद पुस्तक मंदिर। 1997–98
2. श्री वास्तव, सुषमा, समाज में मूल्यों का परिवर्तमान परिदृश्य एवं उच्च शिक्षा, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2008
3. जैश्री, मूल्य, पर्यावरण और मानव अधिकार की शिक्षा, शिप्रा पब्लिकेशन विकास मार्ग दिल्ली। 2008
4. सिंह, रामपाल, शिक्षा में नव चिन्तन, विनोद पुस्तक मंदिर।
5. डॉ. मिश्र, लोकमान्य, भारतीय आधुनिकी, शिक्षा, मृगाक्षी प्रकाशन, लखनऊ। 2013
6. इन्टरनेट

मूल्य संकट एवं सम्भव समाधान

टेक चन्द भारद्वाज
शोधछात्र (शिक्षाविभाग)

जीवन में सफलता का आधार वास्तव में शिक्षा में निहित है। समय के साथ-साथ शिक्षा के उद्देश्य भी बदलते रहते हैं। स्वातन्त्रयोत्तर भारत में शिक्षा को सामाजीकरण का सशक्त साधन मानते हुए इसके द्वारा वैयक्तिकता व नागरिकता के गुणों को विकसित करने का हम प्रयत्न कर रहे हैं। उत्तम सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण व हस्तान्तरण पर भी ध्यान दिया जा रहा है। शिक्षा द्वारा विकल्पों में से उत्तम को चुनने की कुशलता विकसित होनी चाहिए। उत्तम विकल्प के चयन की प्रक्रिया वास्तव में मूल्य प्रक्रिया है। विकल्प का चयन स्वार्थ को त्यागकर करना चाहिए। मूल्यों के बारे में हमारे धर्माचार्यों, शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों, शिक्षकों व अभिभावकों में आज मतैक्य नहीं हो पाया है। मूल्यों के बारे में विभिन्न विचार व्यक्त किये गये हैं।

मूल्य का अर्थ (Derivative Meaning)

'मूल्य' पद का अर्थ समाज या दर्शनशास्त्र में किसी भी तरह से स्पष्ट नहीं है (मैकमिलन व नैलर, 1964)। हम किसी एक परिभाषा पर एकमत नहीं हो सके हैं। मतैक्य के रूप में तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि मूल्य मानव अस्तित्व में किसी महत्वपूर्ण चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं। मनुष्य जीवन पर्यन्त सीखता रहता है तथा उसके अनुभवों में निरन्तर अभिवृद्धि होती है। जैसे-जैसे वह अधिकाधिक सीखता

जाता है तथा परिपक्व होता है वह ऐसे अनुभव भी प्राप्त करता है जो उसके व्यवहार को निर्देशित करते हैं। ये निर्देशक जीवन को दिशा प्रदान करते हैं तथा इन्हें मूल्य कहा जा सकता है। व्यवहार के निर्देशक के रूप में वे अनुभवों के विकसित व परिपक्व होने के साथ-साथ विकसित तथा परिपक्व होते हैं। मानव मूल्य एक ऐसी आचार-संहिता या सद्‌गुणों का समूह है, जिसे मानव अपने संस्कारों तथा पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन-शैली का निर्माण करता है तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है मानव के मूल्यों में मनुष्य की अवधारणाएँ विचार, विश्वास, मनोवृत्ति, आस्था या निष्ठा आदि मानवीय गुणों का समावेश होता है। ये मानव मूल्य एक ओर व्यक्ति के अन्तःकरण द्वारा नियन्त्रित होते हैं दूसरी ओर उसकी संस्कृति एवं परम्परा क्रमशः विस्तृत एवं परिपोषित होती हैं। 'बहुजनहिताय' इन जीवन मूल्यों की कसौटी मानी जाती है। स्वच्छता, त्याग, प्रेम, सत्य, अहिंसा जैसे मूल्यों का प्रयोग यदि मानव केवल आत्म-पोषण के लिए करता है तो ये सद्‌गुण जीवन-मूल्यों की कसौटी पर खरे नहीं माने जाते हैं।

भारत अपनी कला, संस्कृति तथा दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर सदैव गर्व करता है, परन्तु आज अनास्था तथा पारस्परिक अविश्वास के वातावरण में हमारी प्राचीन परम्परा एवं मूल्य धूमिल से हो गये हैं। आधुनिकता की भ्रामक अवधारणा अस्तित्ववादी जीवन, अनात्मपरक नास्तिकता, पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण तथा कुतर्क प्रधान चिन्तन आदि के कारण अतीत में अविश्वास एवं 'स्व' में अनास्था आदि कारणों से हमारे पुराने मूल्य समाज में धूमिल हो गये हैं। अपने पर अविश्वास का परिणाम हैं आत्मनाश अर्थात् अपने आदर्शो एवं मूल्यों, अपनी सांस्कृतिक विरासत, अपनी चिन्तन प्रणाली का परित्याग कर उसके स्थान पर बाहरी या विदेशी चिन्तन प्रणाली को सम्मिलित करना। इसके फलस्वरूप हमारे मूल्य दब से गये हैं। वस्तुतः वह पूर्णतः नष्ट नहीं है, अपितु विघटित हो गये हैं। मानव नारी का सम्मान करना चाहता है परन्तु कह नहीं पाता, वह

चोरी, डकैती आदि को गलत मानता है लेकिन छोड़ नहीं पाता है। वह दूसरों को पीड़ा देना पाप मानता है और परोपकार पुण्य के रूप में स्वीकार तो करता है परन्तु मन और आचरण में उतार नहीं पाता। वह समाज के विभिन्न क्षेत्रों में फैले भ्रष्टाचार के प्रति आक्रोश प्रकट करता है परन्तु भ्रष्टाचार का उन्मूलन नहीं कर पाता, इस प्रकार आज का प्रत्येक भारतीय संक्राति काल से होकर गुजर रहा है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि कभी वह पुरातन मूल्यों की ओर झुकता है तो कभी आधुनिकता की भ्रामक अवधारणा की ओर जाता है, फिर रूककर आत्म चिंतन करता है उक्त वातावरण ने मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता की ओर सभी का ध्यान आकृष्ट कर लिया है। हमने कर्त्तव्य या कार्य संस्कृति के स्थान पर उपभोक्ता संस्कृति को अपना लिया है। सामाजिक मूल्यों में ह्रास के कारण हमारे बीच सामाजिक अलगाव पनप रहा है। अपने आस-पास के परिवेश में हमारी रुचि समाप्त हो रही है। दूरदर्शन कार्यक्रमों के दर्शन-श्रवण ने हमारे सामाजिक जीवन का लगभग अन्त कर दिया है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए हमें किसी भी सीमा तक गिरने में हिचकिचाहट महसूस नहीं होती है। हमें दिखावा पसन्द है दिखावा कर हम गौरवान्वित महसूस करते हैं। भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने में हमारे अन्दर की मानवीयता कुण्ठित हो रही है। महानगरों की स्थिति विकराल रूप ग्रहण कर चुकी है। अधिकांश नर-नारी धनार्जन करने में व्यस्त है। अनेक लोग मलिन बस्तियों में जीवन गुजारते हैं व गरीबी ने मूल्यों में उनकी आस्था घटा दी है। संस्थाएँ अपनी व्यवस्था कायम नहीं रख पा रही है। दहेज, अस्पृश्यता, नववधुओं को जलाने व मारने, दवाओं की लत, करों की चोरी, दो नम्बर के धन का संग्रह, कालाबाज़ारी, धार्मिक उन्माद व सामाजिक-आर्थिक न्याय में कमी आदि ने हमारी इक्कीसवीं सदी की सुखद भविष्य की आशाओं पर पानी फेर दिया है। राजनीतिज्ञों की अदूरदर्शिता व हठधर्मिता निरन्तर मानव मन को उद्वेलित व तनावग्रस्त कर रही है। रोटी के टुकड़ों और रोजगार के लिए भीषण प्रतियोगिता है। तनाव हिंसा व कुसमायोजन में वृद्धि होती जा रही है। तथाकथित मूल्यों व मूल्य-विमुख नेताओं की

पूजा हो रही है। दोहरे नैतिक मानदण्ड आज के जीवन के घटक बन गये हैं। लोगों के मन, वचन और कर्म में एकरूपता नहीं है। कभी-कभी ऐसा लगता है जो नेता मूल्यों के पक्ष में अधिक तर्क देता है या मूल्यवादी बनने का दिखावा करता है वह अधिक मात्रा में छल और प्रपञ्च का सहारा लेता है वह भ्रष्ट होता है। आज समाज में मूल्य परिलक्षित नहीं हो पा रहे हैं। वर्तमान युवा पीढ़ी भावी समस्याओं का विश्वसनीय पूर्वानुमान नहीं लगा सकती। समाज में परिवर्तन की गति अनुमान से भी तेज हो सकती है। हमें संस्कृति-विहीनता अमानवीयता व अलगाव से बचना है और विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देनी है जो बालकों व बालिकाओं को भविष्य के लिए तैयार करे। मूल्यपरक शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक परिवर्तन के विविध रूपों को व उनके निहितार्थो को समझने में सक्षम बना सकती है तथा उनकी नैतिक निर्णय क्षमता व मूल्यों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता विकसित कर सकती है। हमें शिक्षा को इस प्रकार मूल्य परक बनाना चाहिए कि विद्यार्थी भविष्य के लिए सुरक्षित तैयारी कर सकें।

सम्भव समाधान

- विद्यार्थियों में अनैतिक कार्यो के विरोध का भाव जाग्रत करना।
- शिक्षा संस्थानों में महापुरुषों के जन्म दिवस मनाने चाहिए।
- मूल्यों के निर्माण के लिये शिक्षात्मक फिल्मों, नाटकों, पत्र-पत्रिकाओं रेडियों, दूरदर्शन जैसे जन-माध्यमों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- विद्यार्थियों को सादा जीवन एवं उच्च विचार की शिक्षा दी जानी चाहिए।
- विद्यार्थियों को सीखाया जाये कि ज्ञान का उद्देश्य धन-सम्पत्ति एकत्र करना नहीं है अपितु शिक्षा प्राप्त कर अपने देश और समाज की सेवा करना है।
- मूल्य परक शिक्षा में अभिभावकों को समबद्ध किया जाना

चाहिए।

- शिक्षक का चरित्र एवं आचरण उत्कृष्ट हो जिससे विद्यार्थियों पर उसका प्रभाव पड़े।

- विद्यालयों में या शिक्षा संस्थानों में अच्छा आचरण करने वाले बच्चों को पुरस्कार देकर सम्मानित किया जाये।

''यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदितरो जना:'' (श्रीमद्भगवद्गीता)

वैश्विक एवं भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यों का विश्लेषण

केसरी तिवारी
शोध-छात्र

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

मानव मूल्य एक ऐसी आचरण संहिता या सद्‌गुण समूह है, जिसे अपने संस्कारों एवं पर्यावरण के माध्यम से अपना कर मनुष्य अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण करता है और अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। इसमें मनुष्य की धारणाएँ, विचार, विश्वास मनोवृत्ति आस्था आदि समेकित होते हैं। ये मानव मूल्य (Human Value) एक व्यति के अन्त:करण में नि:सृत एवं परिपोषित होते हैं।

'बहुजन हिताय या सर्वजन सुखाय' इन जीवन मूल्यों की कसौटी कही जा सकती है। स्वच्छता, त्याग, सत्य, समय पालन, प्रेम, अहिंसा जैसे जीवन के महान् मूल्यों का उपयोग यदि मनुष्य केवल आत्मरक्षण अथवा आत्मपोषण के लिए करता है तो ये सद्‌गुण जीवनमूल्यों की कसौटी पर खरे नहीं उतरते है।

मूल्य शब्द का अर्थ

'मूल्य' शब्द को अंग्रेजी में वेल्यू (Value) कहते हैं जो लैटिन भाषा के 'Valere' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है किसी वस्तु की कीमत,

विशेषता, गुण या महत्त्व को दर्शाता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्य

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय शिक्षा मूल्य परक थी। आश्रमों तथा गुरुकुलों में जो शिक्षा दी जाती थी वो अपने आप में मूल्यों से परिपूर्ण थी। अंग्रेजों ने अपनी आवश्यकतानुसार भारतीयों के लिए नवीन शिक्षा की व्यवस्था की। इसके माध्यम से उन्होंने भारतीयों को तो शरीर से भारतीय बनाये रखा परन्तु मन मस्तिष्क से तथा व्यवहार से अंग्रेज बना दिया। इस कारण परिस्थितिवशात् पश्चिमी व्यवस्था का प्रभाव बढ़ा और लोगों में पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण का भूत सवार हो गया और हमारे देश के नागरिकों में पार्थिव मूल्यों के प्रति अप्रत्याशित मोह, अनीश्वरवाद तथा आधुनिकता को जन्म दिया, इन तथ्यों ने मानव मूल्यों के ह्रास के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी, फलतः इसकी पूर्ति हेतु मूल्य शिक्षा की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

भारत अपनी कला, संस्कृति, दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर सदैव गर्व करता रहा है, परन्तु आज परम्परा एवं जीवन मूल्य धूमिल से हो गये हैं। आधुनिकता की भ्रामक अवधारणा, अस्तित्ववादी जीवन, अनात्मपरक नास्तिकता, तर्कप्रधान चिन्तन के कारण अतीत में अविश्वास एवं स्व में अनास्था आदि कारणों से हमारे पुराने मूल्य प्रदूषित हो गये हैं, आज हम सब अपने आदर्शों एवं मूल्यों अपनी सांस्कृतिक विरासत, भारतीय जीवन की मुख्य चिन्तन शैली का परित्याग कर उसके स्थान पर बाहरी विदेशी चिन्तन शैली को स्थापित करने में लगे हैं। फलतः आज एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जरूरत है, जो शिक्षा केवल पाठ्यक्रम पाठ्यपुस्तक और परीक्षा का त्रिभुज नहीं हो बल्कि उसे तो प्रवाहमयी त्रिवेणी होकर अपने तटबंध से लेकर मझधार तक स्वच्छ होना चाहिए। संस्थान पदों की प्रतियोगिता और विचारधाराओं की वफादारी के लिए नहीं होना चाहिए बल्कि उनमें ऐसे मनोवैज्ञानिक विचार प्रकट हों कि जो ज्ञान, कौशल, भावना के साथ-साथ जीवन मूल्यों जैसे सत्य, ईमानदारी, अहिंसा,

प्रेम, उदारता, कर्तव्यबोध, राष्ट्रप्रेम, विश्वबन्धुत्व की भावना, सांस्कृतिक प्रेम आदि को छात्रों के मन मस्तिष्क में प्रवाहित होकर एक स्वाभिमानी स्वावलम्बी और सेवा भावी पीढ़ी की रचना कर सके।

भारतीय मूल्यों का प्रभाव

भारतीय प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के सुदृढ़ प्रयास से भारतीय संस्कृति मूल्य निहित थी जिसका हमारे रामायण ग्रन्थ में राजा हरिश्चन्द्र के द्वारा सत्य की रक्षा के लिए अपने परिवार तक को छोड़ना, तथा राजा दशरथ को अपने वचन की रक्षा हेतु प्राण त्यागना आदि अनेकों उदाहरण हैं। भारतीय संस्कृति में प्रेम, सत्य, सदाचार, शान्ति और अहिंसा सर्वत्र पर्याप्त रूप से दिखाई पड़ता है। यथा-

काले वर्षन्तु पर्जन्यः पृथ्वी सत्यशालिनी।

देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः।।

अपुत्रः पुत्रिणाः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः।

अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम्।। (वा. रा. पृ. 28)

वैश्विक मूल्य

जिन मूल्यों से विश्व की प्रगति और भलाई हो वे वैश्विक मूल्य कहलाते हैं। इन मूल्यों का किसी जाति समूह या देश-विदेश से सम्बन्ध नहीं होता है बल्कि इनमें विश्व के प्राणिमात्र के सम्पूर्ण प्रकार से स्वतन्त्रता न्याय अभिव्यक्ति अवसरों की समानता शिक्षा स्वास्थ्य आदि तथा सभी प्रकार की दासताओं से मुक्ति आदि मूल्यों का महत्व दिया जाता है।

भारतीय संविधान में मूल्यों का महत्त्व

भारतीय संविधान में सर्वप्रथम प्रस्तावना में ही मानव मूल्यों को ही रखा गया है। जिसमें कुछ प्रमुख-

- धर्म निरपेक्षता अर्थात् सभी धर्मों का समान रूप से आदर
- सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय विचार करने एवं प्रकट करने की स्वतन्त्रता विश्वास धर्म और पूजा की स्वतन्त्रता
- अवसर की समानता, एकता और अखण्डता के लिए बन्धुत्व की भावना आदि

इसके अतिरिक्त एनसीटीआरटी ने 83 मूल्यों को बताया जिनमें कुछ प्रमुख है-अध्ययन, आत्मसम्मान, आत्मसंयम, चरित्र ज्ञान, दयालुता, देश-प्रेम, पंचशील, परोपकार, प्रेम, मानव कल्याण की भावना, मानवीय सम्बन्ध, मितव्ययता, विश्वास, सत्य, समता, समय-पालन, समाज-सेवा, साहस, सह-अस्तित्व, स्वच्छता, नारियों का सम्मान, श्रम, शील आदि।

मूल्यों का विकास

मूल्यों के विकास की नींव बाल्यावस्था से डाली जानी चाहिए, अभिभावक पहले शिक्षक हो सकते हैं। यदि वे बिना शर्त बच्चे को प्यार दें। तो वे भी बदले में सीख पायेंगे। बच्चों को सत्य, प्रेम, अहिंसा आदि जीवन मूल्यों को समझा पाये, तो वे भी दूसरों को महत्त्व देना सीख सकेंगे। उनमें मानव मूल्यों का विकास होगा आपसी सौहार्द्र व सहयोग का भाव विकसित होगा। जिसे अपना महत्त्व पता नहीं होगा वह जिंदगी में दूसरों को महत्त्व देना व उन्हें आदर देना नहीं सीख पायेगा।

इसके लिए हमें सर्वप्रथम स्वयं को बदलना होगा शुरुआत स्वयं से करनी होगी।

मूल्यों के आत्मसातीकरण के उपाय

पाठ्यसहगामी क्रियाकलापों का समावेश अप्रत्यक्ष विधि, खेल-कूद, एन.सी.सी., स्काउटिंग तथा गाइडिंग, मौन बैठक, कथा-कथन, प्रार्थनाएँ, समूहगान, नाट्याभिनय, देशाटन समाज-सेवा, पर्वोत्सव आयोजन, योग शिक्षा, समाजोपयोगी उत्पादक कार्य आदि क्रियाकलापों का समावेश होता

है।

मूल्यों के विकासार्थ शिक्षण संस्थाओं में विविध नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, पर्यावरण सम्बन्धी, सौन्दर्यपरक, प्रजातांत्रिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों के विकास में उक्त सभी क्रिया कलापों के विशेष योगदान हो सकता है। बशर्ते इनके आयोजन में दृष्टिकोण एवं सूझ-बूझ से काम किया जाये।

मूल्य परक शिक्षा हेतु परामर्श

मूल्यों के विकास तथा छात्रों में तथा नागरिकों के मन-मस्तिष्क में पुनर्स्थापित करने हेतु निम्नलिखित सुझाव है-

1. वर्तमान पाठ्यक्रम में परिवर्तन तथा संशोधन के द्वारा ऐसा पाठ्यक्रम लागू हो जिसमें हमारी सांस्कृतिक परम्परा, सामाजिक संरचना, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, सर्वधर्म समभाव, अस्पृश्यता निवारण, विश्वशान्ति, राष्ट्रिय एकता आदि पर बल दिया जाए।

2. ऐसे सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये जाए जिनका सम्बन्ध मूल्य शिक्षा से हो। जिनका सुन्दर प्रभाव पड़े।

3. प्रत्येक विश्वविद्यालय विद्यालय एवं स्कूल में अभिभावक दिवस मनाया जाये ताकि उनका सक्रिय सहयोग मिल सके।

4. प्रार्थना सभा को और अधिक सुनियोजित एवं सरल सुग्राह्य तथा मूल्यपरक बनाये जाये।

5. शिक्षकों को अपने कार्य के प्रति निष्ठावान एवं ईमानदार होना चाहिए। जिससे मूल्य आधारित विकास हो सके शिक्षकों को अपने आदर्शात्मक मूल्यों के महत्व को छात्रों को समझ रखना चाहिए।

6. पाठ्यपुस्तकों में प्रेम, सत्य, सदाचार आदि सामग्री को समावेश किया जाए। जो आयु स्तरानुकूल हो।

7. शिक्षकों की ग्रीष्मावकाश में अल्पावकाशों में मूल्यपरक रूचि जागृत करने हेतु शिक्षक प्रशिक्षण का आयोजन किया जाये।

8. छात्रों द्वारा वार्षिक पत्रिका, स्मृति पत्रिका तैयार करवायी जाए, जिसमें अच्छे उद्धरण स्तूतियाँ कहावत प्रेरक प्रसंग लघुकथा आदि का समावेश हो।

9. वैश्विक मूल्यों के विकास के लिए वाटरशेड के महत्त्व को सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्य से जन जागरण की व्यवस्था की जाए।

10. ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के लिए जनजागरण की जाये।

11. वृक्षों के मानव जीवन में आवश्यकता तथा महत्त्व को बताकर वृक्षारोपण करने हेतु प्रेरणादायक कार्यक्रम हो।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि मानव के अन्तःकरण में शुद्ध मानवता की जागृति के लिए जीवन मूल्यों का नितान्त आवश्यकता है। 21वीं सदी में हमें भारतीय तथा वैश्विक जीवन मूल्यों की पुनर्स्थापना करना परम आवश्यक हो गया है और इसके लिए औपचारिक रूप से ही नहीं बल्कि अनौपचारिक तथा सभी को मिलकर सहयोग करना होगा तभी हमारी मानवता सुरक्षित हो पायेगी और तभी वैश्विक समस्याओं से निजात पायी जा सकती है। अन्त में मानव मूल्यों का जो परम उद्देश्य है वह है कि–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।।

सन्दर्भ

1. गुप्त, नत्थूलाल, मूल्य परक शिक्षा और समाज, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
2. दवे, रमेश, जड़ता के परिसर - शीर्षक, जनसत्ता समाचार पत्र, पृ. 6 दिनांक 29.03.2015
3. साप्ताहिक पत्रिका - उदय अण्डिया, अंक 48-49, दिल्ली, मार्च 29 - अप्रैल 4
4. वाल्मीकि, रामायणम्, गीताप्रेस, गोरखपुर

मूल्य विकास हेतु प्रभावी रचना कौशल

विवेक कुमार

प्रत्येक मानव को जीवन में कुछ न कुछ अनुभव अवश्य होते हैं, जो समय की गति के साथ-साथ बढ़ते जाते हैं। इन्हीं अनुभवों से कुछ सामान्य सिद्धान्त जन्म लेते हैं जो मानव के व्यवहार को निर्देशित करते हैं। ऐसे समान्य सिद्धान्तों को जो समस्त जीवन को एक दर्शन के रूप में परिवर्तित कर देते हैं तथा जीवन जीने की एक विशिष्ट कला को जन्म देते हैं एवं उनके पथ प्रदर्शन के रूप में कार्य करते हैं, मूल्य अथवा Value के नाम से जाना जाता है। व्यक्ति के मूल्य इस बात का दर्पण होते हैं कि वे अपनी सीमित शक्ति एवं समय में क्या करना चाहते हैं। जीवन के पथ प्रदर्शक के रूप में मूल्य अनुभवों के साथ-साथ अधिक परिपक्व होते जाते हैं। किसी भी व्यक्ति का व्यवहार उसके मूल्यों का प्रतिबिम्ब होता है। मूल्यविहीन जीवन निरर्थक होता है। मूल्य ऐसे सद्गुणों का समावेश है जिसे अपनाकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर समाज में प्रभावशाली तथा विश्वसनीय बनकर उभरता है। इस मूल्य में मानव की धारणायें, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति एवं आस्था आदि निहीत होते हैं। सामान्य रूप से मूल्य व्यक्ति की रूचियों, प्रेरणाओं एवं अभिवृत्तियों की ओर इंगित करते हैं। मूल्यों की दार्शनिक परिभाषा इसे भावना, संवेग, रूचियों एवं अरूचियों के सन्दर्भ में स्वीकार करती है। ब्राइटमैन (1958) के मतानुसार मूल्यों से तात्पर्य किसी पसन्द से होता है। वी. एस. सान्याल (1962) ने समस्त दार्शनिक परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात् यह बताया है कि मूल्य आंशिक रूप से भाव या तर्क से सम्बन्धित होते हैं जो स्थिर प्रकृति के होते हैं। मूल्यों के मनोवैज्ञानिक स्वरूप की व्याख्या करते हुए मर्फी, मर्फी एवं न्यूकौम्ब (1937) का मत है कि - मूल्य सामान्य रूप से किसी उद्देश्य की प्राप्ति का एक विन्यास है । आलपोर्ट (1951) के अनुसार - मूल्य वह

क्रिया है जो किसी उद्दीपक से उद्दीप्त होती है। एवरैट (1918) के दृष्टिकोण में मूल्य एक भावना है जो क्रियाओं से निर्मित होती है। सन् 1928 में स्प्रेंजर ने मूल्यों को छः वर्गों में विभक्त किया : सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य इत्यादि । राष्ट्रीय शैक्षणिक एवं अनुसंधान परिषद (N.C.E.R.T.) द्वारा प्रकाशित एक पुस्तिका में 83 नैतिक, सामाजिक, एवं आध्यात्मिक मूल्यों का परिगणन किया गया है। इसके अतिरिक्त हम जीवन मूल्यों को निम्न वर्गों में भी वर्गीकृत कर सकते हैं –

1. **शैक्षणिक मूल्य** : शिक्षा के क्षेत्र में अध्ययन अध्यापन, अनुशासन नियम पालन आदि मूल्य शैक्षणिक मूल्य कहलाते हैं। इनके अन्तर्गत अध्यापन में निष्ठा, मूल्यांकन में निष्पक्षता, विद्यार्थियों की सर्जनात्मकता तथा मौलिकता को प्रोत्साहित करना आदि आते हैं।

2. **नैतिक मूल्य** : ईमानदारी, त्याग, निष्ठा, करूणा, दया, उत्तर दायित्व की भावना आदि नैतिक मूल्य के अन्तर्गत आते हैं।

3. **सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्य** : राष्ट्रीय एकता, अन्तर्राष्ट्रीय भावना, सामाजिक दायित्व, आदर्श नागरिकता, प्रजातन्त्र और मानववाद आदि मूल्य समाज एवं राजनीति दोनों के अन्तर्गत आते हैं।

4. **वैश्विक मूल्य** : जिन मूल्यों का सम्बन्ध सम्पूर्ण विश्व की प्रगति से होता है उन्हें वैश्विक मूल्य कहते हैं। विश्व बन्धुत्व, सतत विकास, नि:शस्त्रीकरण, रंगभेद उन्मूलन, दासता का अन्त इत्यादि वैश्विक मूल्य हैं ।

5. **पर्यावरणीय मूल्य** : इस श्रेणी में हम पेड़ पौधों के प्रति सरोकार, पर्यावरण की शुद्धि के प्रति जागरूकता, वृक्षारोपण, वृक्षों की रक्षा आदि को रख सकते हैं।

6. **सांस्कृतिक मूल्य** : सांस्कृतिक मूल्यों में उन सभी मूल्यो का समावेश होता है जो कि हमारी सांस्कृतिक धरोहर को अक्षुण्ण बनाये रखने एवं उसके विकास के द्वारा राष्ट्र में सांस्कृतिक एकता का

वातावरण बनायें रखने में सहायक होते हैं। सांस्कृतिक मूल्यों के अन्तर्गत सहिष्णुता, दूसरों के धर्म तथा सम्प्रदाय के प्रति आदर की भावना आदि मूल्यों का समावेश होता है ।

आज हमारा समाज संक्रमण के बुरे दौर से गुजर रहा है। हमारे मूल्यों का ह्रास हो रहा है। पश्चिम से आयातित भोगवादी चिन्तन धारा के आधार पर अपने आप को आधुनिक मानने वाला भारतीय युवा अपने उच्च आदर्शों, नैतिक मूल्यों एवं जीवन प्रणाली को तुच्छ समझने लगा है। अत: आज आवश्यकता है उसे अपने मूल्यों को समझने की। यदि आज का विद्यार्थी जो कल के राष्ट्र का भविष्य है तथा शिक्षक जो भविष्य निर्माता है अपने मूल्यों यथा - सत्य, अहिंसा, सदाचार कर्तव्यपरायणता, अनुशासन, सहिष्णुता आदि को अपना सका तभी राष्ट्र की उन्नति सम्भव है।

बालकों में मूल्यों के संवर्धन के लिए सर्वप्रथम प्रयास परिवार में ही प्रारम्भ होना चाहिए। परिवार में ही उपयुक्त वातावरण द्वारा उनमें अच्छी आदतों का विकास सम्भव है। माता पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों के व्यवहार का अनुकरण बालक सबसे अधिक करता है। ऐसी परिस्थिति में हमें बच्चों के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए। उनके सामने नकारात्मक बातें नहीं करनी चाहिए। यदि बालक को हमें सत्य बोलना सीखाना है तो सर्वप्रथम हमें स्वयं अपने व्यवहार में यह लाना होगा। अगर हमारा आचरण सत्य पर आधारित होगा तो बालक भी सत्य बोलेगा। उदाहरण के लिए यदि हम अपने बालक को हमेशा यह बोलें कि ईमानदारी करनी चाहिए, सदा सत्य बोलना चाहिए किन्तु यदि हम कहीं पार्क में घूमने का टिकट खरीदते समय बच्चे की उम्र गलत बताकर पूरे की जगह आधा टिकट खरीद लें तो बच्चा यह समझेगा कि कुछ परिस्थितियों में ईमानदारी ना करें तो भी काम चल सकता है।

बच्चों के सामने कभी भी नकारात्मक शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि हमें किसी बात को करने से रोकना है तो 'यह गन्दी बात है' के स्थान पर 'यह अच्छी बात नहीं है'

का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार बच्चों के सामने किसी को डाँटना नहीं चाहिए। यदि हम अपने घरेलू नौकर को बच्चों के सामने डाँटेंगे तो वह भी उसे डाँटने लगेगा और इस तरह उसमें एक गलत आदत का विकास हो सकता है। अतः हमें अपने परिवार के वातावरण के साथ साथ स्वयं के आचरण को भी उचित रखना चाहिए जिससे परिवार से ही बालक में अच्छे संस्कार व मूल्यों का विकास हो सके।

परिवार के पश्चात् बालकों के मूल्यों के विकास में विद्यालय की जिम्मेदारी सर्वाधिक है। विद्यालय के अधिकांश क्रिया कलाप प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मूल्यों की शिक्षा का कार्य करते हैं। हम विद्यालय में नैतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों की शिक्षा देते हैं। विषयों के संज्ञानात्मक शिक्षण में भी शिक्षक के व्यक्तित्व तथा व्यवहार का, सहपाठियों के व्यवहार एवं विद्यालय के क्रिया कलापों का प्रभाव छात्र के मूल्यों पर पड़ता है। विद्यालयों में मूल्य विकास हेतु निम्न विधियों द्वारा प्रयास कर सकते हैं–

- प्रत्यक्ष विधि
- अप्रत्यक्ष विधि
- समन्वित विधि

प्रत्यक्ष विधि : इस विधि में मूल्य शिक्षा हेतु अलग से विषय निर्धारित किया जाता है। समय सारणी के अनुसार नियत अध्यापक द्वारा निर्धारित पुस्तकों के माध्यम से पढ़ाया जाता है। इसमें अधिकांशतः व्याख्या विधि का प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत **परिचर्चा, परियोजना, प्रदर्शनी, पर्यटन, तथा संचार-माध्यम** आते हैं। यह उतनी उपयोगी विधि नहीं है क्योंकि इससे बालकों पर एक अतिरिक्त विषय के रूप में बोझ ही बढ़ेगा।

अप्रत्यक्ष विधि : हम सभी जानते हैं कि 'मूल्य सिखाये नहीं जाते अपितु स्वयं आत्मसात किये जाते हैं।' (Values are not taught but caught)। इस विधि में कोइ वस्तु या विचार उन पर थोपा नहीं जाता

अपितु विद्यालय के अनुकूल एवं प्रेरक वातावरण से विद्यार्थी नैतिक, सामाजिक आदि मूल्यों को स्वयं आत्मसात् करते हैं। अप्रत्यक्ष विधि के अन्तर्गत कुछ मुख्य उपविधियाँ हैं जिनके माध्यम से हम विद्यार्थियों में मूल्यों का संवर्धन कर सकते हैं –

* कहानी कथन (Story telling)
* भूमिका निर्वाह (Role Playing)
* व्यक्ति वृत्त विधि (Case study method)
* एनीमेटेड कहानियो का प्रदर्शन (Showing of Animated stories)
* प्रार्थना (Prayers)
* समूह गान (Group songs)

कहानी कथन (Story telling) : इसमें शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों को विभिन्न मूल्यों से सम्बन्धित कहानियों को सुनाना होता है। इसमें कहानी सुनाने वाले अध्यापक की वाणी में सजीवता होनी चाहिए। बचपन में हम सभी अपनी माँ या दादी से कहानियाँ अवश्य सूनी होंगी किन्तु आज यह परम्परा लुप्त प्राय हो रही है।

भूमिका निर्वाह (Role Playing) : भूमिका निर्वाह से तात्पर्य है किसी भूमिका का निर्वाह जिसके अन्तर्गत व्यवहारों तथा भावनाओं का प्रकटीकरण होता है। इसके अन्तर्गत मूल्यों से सम्बन्धित किसी समस्या पर कक्षा के छात्रों द्वारा अभिनय कराया जाता है। इससे विद्यार्थियों की सर्जनात्मकता को बढावा मिलता है और वे अपनी भावनाओं को स्वतन्त्र रूप से अभिव्यक्त कर सकते हैं। भूमिका निर्वाह विधि में हम कोई भी विषय देकर उस पर तत्काल अभिनय करने को कहते हैं जिससे विद्यार्थियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति व विचार देखने को मिलते हैं।

व्यक्ति वृत्त विधि (Case study method): इस विधि के अन्तर्गत अध्यापक विद्यार्थियों के समक्ष कोई समस्या रखता है अथवा

कुछ परिस्थितियों को प्रस्तुत करता है। विद्यार्थियों को समस्या का समाधान बताने के लिये कहा जाता है। यह विधि विद्यार्थियों को मौलिक रूप से विचार करने के लिये प्रेरित करता है। व्यक्ति वृत्त अध्ययन की प्रक्रिया को संक्षेप में I.R.A.C. कहते हैं ।

I = Issue R = Rules

A = Analysis C = Conclusion

एनीमेटेड कहानियों का प्रदर्शन (Show of Animated stories):

आजकल टी वी पर बहुत से कार्टून आते हैं । बच्चे इन्हें बहुत ही रूचि के साथ देखते हैं। कुछ कार्टून चरित्रों का तो बच्चों में जबरदस्त क्रेज है। जैसे - डोरेमान, छोटा भीम, मिकी माउस इत्यादि। इन सभी कार्टूनों में बहुत सी बातें कल्पना के बाहर की दिखायी जाती हैं जैसे डोरेमान का टाइम मशीन में बैठकर दूसरे समय में चले जाना, छोटा भीम का अपने से कहीं अधिक ताकतवर व्यक्तियों को मारना आदि। इस प्रकार के कार्टून से बच्चों के मूल्य संवर्धन में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

हमें एनीमेशन के माध्यम से ऐसी कहानियों का एनीमेटड संस्करण बनाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों के मूल्यो को विकसित करने में सहायता मिले। इसके लिये हम सत्य, अहिंसा, श्रम, नैतिकता, सामाजिक मूल्यों तथा महापुरूषों के जीवन चरित्र से सम्बन्धित कहानियों का एनीमेशन वर्जन तैयार करके बच्चों के समक्ष प्रदर्शित कर सकते हैं।

अध्यापक शिक्षा और मूल्य : वस्तुतः आज अध्यापक शिक्षा में मूल्यों के विकास के स्थान पर अध्यापकों में मूल्य विकास की अधिक आवश्यकता है। अध्यापक में मूल्यों का विकास किस प्रकार से हो इसके पूर्व हमें किस प्रकार के अध्यापक चाहिए यह विचारणीय है। आज के अध्यापक में कुछ प्रमुख गुण इस प्रकार होना चाहिए -

* सामाजिक रूप से उत्तरदायित्वपूर्ण
* उच्च मूल्यों और नैतिकता का पोषक

* व्यवसाय के प्रति समर्पित
* नेतृत्व के गुणों से पूर्ण

आज के विद्यार्थी की आवश्यकता अलग है, उसकी सोच अलग है, आज के इस प्रतिस्पर्धात्मक युग में उसके समक्ष चुनौतियाँ भी कुछ अलग ही हैं। आज के किशोर विद्यार्थी को ऐसे अध्यापक की आवश्यकता है जो उसे संवेगात्मक रूप से दृढ़ बनाये, उसके Conflict को दूर करे और Dilemmas की स्थिति में उसका उचित मार्गदर्शन कर सके। ऐसे अध्यापकों को प्राप्त करने के लिये हमें अध्यापक बनाने की प्रक्रिया में आवश्यक बदलाव लाना होगा। जैसे -

1) अध्यापक शिक्षा को व्यवसाय और मूल्यों को एक साथ लेकर चलने की आवश्यकता है।

2)काउन्सलिंग की प्रक्रिया में बदलाव लाना होगा। आज काउन्सलिंग की प्रक्रिया Document Verification की प्रक्रिया मात्र है। प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण करने से ही प्रवेश ना देकर काउन्सलिंग में उनकी रूचि तथा योग्यता सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया जा सकता है जिससे योग्य व्यक्ति ही प्रवेश पा सकें।

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि मूल्यों के संवर्धन हेतु हमें अपने परिवार से लेकर विद्यालय तथा समाज तक ऐसा परिवेश बनाना होगा जिससे विद्यार्थियों तथा अध्यापकों में स्वाभाविक रूप से संस्कार तथा मूल्यों का विकास हो सके और यह तभी होगा जब हम स्वयं नैतिक होंगे, हमारे विद्यालय नैतिकता के रास्ते पर चलेंगे तथा हमारा समाज भी मूल्यों को आत्मसात् करेगा।

संदर्भ ग्रन्थ :

मोहन नरेन्द्र, भारतीय संस्कृति, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, 1999

पाण्डेय राम शकल, संस्कार शिल्पी, अध्ययन पब्लिसर्स, 2006

सिंह शिरीष पाल, अध्यापक शिक्षा, अग्रवाल पब्लिसर्स, 2011

मूल्य संकट और सम्भव समाधान

तृप्ता अरोड़ा

आज सम्पूर्ण विश्व अनेक प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त है पारिवारिक स्तर, विद्यालयीय स्तर, सामाजिक स्तर से लेकर वैश्विक स्तर तक अनेक प्रकार की समस्याएँ हमारे समक्ष अपने विकराल रूप में खड़ी है। पारिवारिक स्तर पर यदि हम देखें तो संयुक्त परिवारों का विघटन तथा एकाकी परिवारों का भी सफल न होना दिख रहा है। एकाकी परिवार के बच्चे आत्मकेन्द्रित होते जा रहे हैं तथा विभिन्न प्रकार के अपराधों को अंजाम दे रहे हैं इस तरह देखा जाए तो मूल्यों का संकट आज हमारे परिवारों से ही प्रारम्भ हो रहा है।

विद्यालय स्तर में मूल्यों में ह्रास का कारण अयोग्य अध्यापक, अव्यवहारिक पाठ्यक्रम अनुचित वातावरण तथा प्रशासन का भेदभावपूर्ण वर्ताव मुख्य कारण है।

समाज के गिरते हुए मूल्यों के उदाहरण स्वरूप हम भ्रष्टाचार, अनैतिक आचरण, बालकों तथा स्त्रियों का विभिन्न रूप में शोषण, बाल-श्रम जैसी समस्याओं को देख सकते हैं। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के रूप में आज हमारे सामने आतंकवाद, परमाणु अस्त्रों का प्रयोग, रंगभेद, जातिभेद, वर्गभेद, ग्लोबल वार्मिंग, जल संकट, कम होते वन, प्रदूषित वायु के रूप में अनेक प्रकार की गंभीर समस्यायें हैं।

इन सभी समस्याओं का मुख्य कारण आज हमारे समाज में मूल्यों का गिरता हुआ स्तर ही है। मूल्यों के परिणामस्वरूप हम कुछ मूल्यों को प्राथमिकता देते हैं व कुछ अन्य मूल्यों को त्याग देते हैं। मूल्य समाज को एक व्यवस्था प्रदान करते हैं तथा व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करते हैं। आज हमारा विकासशील देश तीव्र गति से औद्योगिक विकास की ओर बढ़ रहा है। इस वैज्ञानिक युग में पुराने मूल्यों से उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो रही है। उनमें आस्था कम हो रही है किन्तु

दूसरी ओर नवीन मूल्यों को भी स्थायित्व नहीं मिल पा रहा है। एक ओर हम पुराने मूल्यों में आस्था, विश्वास बनाए रखने का प्रयत्न कर रहे हैं और दूसरी ओर नवीन मूल्यों का आकर्षण भी हमारे सामने है। जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए विभिन्न प्रकार के जीवन मूल्य का महत्त्व सदा से रहा है। वर्गीकरण की दृष्टि से अगर विचार करे तो हम मूल्यों को निम्न प्रकार से विभक्त कर सकते हैं।

1. सामाजिक मूल्य
2. नैतिक मूल्य
3. शैक्षणिक मूल्य
4. आध्यात्मिक एवं धार्मिक मूल्य
5. पर्यावरण सम्बन्धित मूल्य
6. सांस्कृतिक मूल्य
7. वैश्विक मूल्य

सामाजिक मूल्य से तात्पर्य उन मूल्यों से है जिनका सरोकार समाज से होता है। व्यक्ति का व्यक्ति से व्यवहार, व्यक्ति का समाज से व्यवहार, अपने मित्रों से व्यवहार, अपने गुरुजनों से व्यवहार तथा व्यक्ति का समाज की प्रत्येक इकाई से व्यवहार आता है।

नैतिक मूल्यों के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, संतोष, आत्मसंयम, आत्मानुशासन, सहिष्णुता, करुणा, सद्भावना आदि आते हैं।

शैक्षणिक मूल्य के अन्तर्गत शिक्षक तथा शिक्षार्थी का सम्पूर्ण व्यवहार आता है। शिक्षक का नियमित, निष्ठावान, निरपेक्ष तथा समदृष्टि होना उसके आदर्श व्यक्तित्व का परिचायक है। इसी प्रकार शिक्षार्थी को भी विनयशील, आज्ञाकारी, गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला, अनुशासित प्रकृति का तथा ज्ञान को श्रद्धापूर्वक ग्रहण करने वाला होना चाहिए।

ऐसे मूल्य जो हमें अध्यात्म की ओर प्रवृत्त करे आध्यात्म मूल्यों के अन्तर्गत आते हैं जैसे सत्यं शिवं सुन्दरम्। धार्मिक मूल्यों से तात्पर्य

विभिन्न धर्मों के मूल्यों से है जैसे सनातन धर्म, इस्लाम धर्म, सिक्ख, जैन और बौद्ध आदि। इन सभी धर्मों में निहित जीवन के विभिन्न मूल्य पाए जाते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज कल विश्व के सभी राष्ट्रों के सामने एक प्रमुख समस्या है। पूरा विश्व इस समस्या के समाधान हेतु प्रयासरत है, वनों का घटता स्तर सम्पूर्ण विश्व के लिए एक चिन्ता का विषय बना हुआ है। पेड़ पौधों के संरक्षण से लेकर उन्हें बढ़ाने तक के अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। इसके साथ ही अपनी सभ्यता व संस्कृति सम्बन्धित मूल्यों को अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रयास भी जारी है।

मूल्य विकास हेतु प्रयास

एक श्लोक है **'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भागभवेत्'**। सभी लोग सुखी रहें, सभी निरोगी रहें, सबका कल्याण हो और किसी का दुःख न हो, इस श्लोक के भीतर की आत्मा सभी धर्मों में विद्यमान है। क्योंकि सभी धर्म मानव कल्याण की बात करते हैं तो फिर हम इसे किसी धर्म विशेष से कैसे जोड़ सकते हैं। अतः इस श्लोक के द्वारा हम विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रसार कर सकते हैं।

बालकों में मूल्यों को विकसित करने का प्रयास सर्वप्रथम परिवार से प्रारम्भ होना चाहिए। बालक की प्रथम गुरु माता होती है माता को ही संस्कारयुक्त होना चाहिए। सर्वप्रथम परिवार का सुखद वातावरण बालक के मूल्य विकास में सहायक होगा।

विद्यालय में मूल्य विकास हेतु अनेक प्रकार के कार्यक्रम प्रस्तुत कर सकते हैं। जिनमें कुछ प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष माध्यम से किया जा सकता है। प्रत्यक्ष माध्यम के अन्तर्गत पाठ्यक्रम में मूल्य से सम्बन्धित विषय को शामिल करके किया जा सकता है इसके अतिरिक्त मूल्यों पर परिचर्चा तथा प्रोजेक्ट के माध्यम से किया जा सकता है किन्तु मूल्यों का वास्तविक विकास अप्रत्यक्ष माध्यम से ही उचित प्रकार से

किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम अध्यापक का व्यक्तित्व तथा आचरण का नैतिकता से पूर्ण होना आवश्यक है। अध्यापक के व्यक्तित्व का प्रभाव विद्यार्थी पर सर्वाधिक होता है। वह उसके मूल्यों का सहज ही ग्रहण कर उसे अपना आदर्श बना लेता है।

समाज में गिरते हुए मूल्यों के स्तर को ऊपर उठाने के लिए हमें सर्वप्रथम अपने विचारों में परिवर्तन करना पड़ेगा। इसके लिए हमें अपने प्राचीन आदर्शों की ओर फिर से लौटना पड़ेगा। हमें 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ' न हि सत्यसमं तप:' 'परहित सरिस धर्म नहि भाई' 'मातृ देवो भव' 'पितृ दवो भव' 'इक ओंकार सतनाम कर्ता पूरक' 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' 'त्वष्ट्रे पुरुरुपाय स्वाहा' (यजु. 22.20) 'यतो अभ्युदय: नि:श्रेयस सिद्धि: स धर्म:' (वैशेषिकदर्शन 1. 2) जैसे आदर्श मूल्यों को अपने जीवन में आत्मसात करना पड़ेगा।

मूल्य आचरण का विषय अधिक है तथा ज्ञान का कम है। मूल्यों के विकास में भाव प्रधानता अधिक होती है। वास्तव में यह कहना सत्य है कि कहने से करना अधिक प्रभावशाली है। घर-परिवार में माता-पिता का आचरण ही बालक को अधिक प्रभावित करता है। इसी प्रकार से कक्षा में एक शिक्षक जो उपदेश देता है उसकी अपेक्षा वह जो आचरण करता है उसका बालकों पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। कई बार उसके आचरण की बालक पर अमिट छाप भी पड़ती है। कहने का तात्पर्य यही है कि मूल्यों के विकास के लिए शिक्षा में अध्यापक की एक अहम् भूमिका है और एक शिक्षक का परम कर्तव्य है कि वह उच्च आदर्शों का आचरण करे जिससे कि वह छात्रों में भी अनुकरण विधि एवं भूमिका निर्वहण विधि के द्वारा अनेक आदर्श मूल्यों का विकास कर सके। इसी सम्बन्ध में विद्वानों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं। मनु ने 'शिक्षक को ब्रह्म की छाया' बताया है। भारतीय प्रार्थना में 'शिक्षक को ब्रह्म, सृजनकर्ता, विष्णु तथा महेश्वर कहा गया है और शिक्षक को संसार में सर्वपूज्य माना गया है'।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

स्वामी विवेकानन्द ने एक वास्तविक शिक्षक के लिए यह कहा है कि वह छात्रों के स्तर पर आकर उन्हें समझने का प्रयास करता है और अपनी आत्मा का उनमें स्थानान्तरण करता है। ऐसे ही शिक्षक वास्तव में छात्रों को अच्छे संस्कार दे सकते हैं।

रवीन्द्रनाथटैगोर ने शिक्षक को एक जलते हुए दीपक की उपमा दी है और कहा है कि एक शिक्षक जलते हुए दीपक के समान है जो अन्य दीपकों को प्रज्वलित कर सकते हैं जिनमें तेल और बाती है। छात्रों को उस दीपक की उपमा दी है जिसमें तेल एवं बाती है परन्तु लौ नहीं है। इसलिए शिक्षक उन्हें प्रज्वलित कर सकता है। केवल विषयों के ज्ञान से छात्रों के मस्तिष्क पर बोझ नहीं रखता।

एडमस ने शिक्षक को एक मनुष्य निर्माता कहा है।

उपरोक्त परिभाषाओं से यही स्पष्ट होता है कि मूल्यों के विकास में और राष्ट्र के निर्माण में शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। तथा मूल्यों के विकास में शिक्षक को समाज के लिए आदर्श माना जाता है। मूल्य शिक्षा का कोई निर्धारित पाठ्यक्रम नहीं हो सकता। वह तो अध्यापक की योग्यता एवं कुशलता पर निर्भर होता है। पर आज देश में जिस कदर हमारे मूल्यों में गिरावट आ रही है उस हिसाब से मूल्य शिक्षा को पाठ्यक्रम में सामान्य रूप से ही नहीं अपितु विशेष रूप से दर्जा दिया जाना चाहिए और इसीलिए विश्वविद्यालय स्तर पर अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में स्थान दिया भी गया है और विद्यालयों में मूल्य शिक्षा एक विषय के रूप में लागू होना बाकी है।

यद्यपि मूल्यों के बारे में जानना सरल है, पर उन्हें व्यवहार में लाना कठिन होता है अतः शिक्षक को नैतिक मूल्यों के संरक्षक के रूप में रहना होगा, जहाँ शिक्षक अपने व्यक्तिगत आचरण से छात्रों को प्रभावित करेगा और उसको शिक्षा के समस्त क्षेत्रों में मूल्य शिक्षा के विकास की सम्भावनाओं का पता लगाना चाहिए।

अध्यापक में निहित नैतिक मूल्यों का शिक्षार्थियों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव

सर्वेश कुमार
अद्वैतवेदांत विभाग

प्रस्तावना

अध्यापक और अध्येता के पावन संबंध पर प्रकाश डालते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा है– अर्थात् भारत में गुरु और शिष्य के बीच एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध है। यही कारण है कि कठोपनिषद् के मंगलाचरण में गुरु और शिष्य से संबंधित एक विशेष प्रार्थना का वर्णन है जिसमें दोनों परमपिता परमात्मा से यह प्रार्थना करते हैं कि ''हे ईश्वर हम गुरु और शिष्य दोनों की आप साथ-साथ ...... करें, हम दोनों का साथ-साथ पालन करें, हम दोनों साथ-साथ विद्याविषय (शास्त्रविषयक) अथवा शास्त्र विषयक पराक्रम करें, हमारा पढ़ा-पढ़ाया अथवा सीखा सिखाया तेजस्वी हो और हम आप से अर्थात् परस्पर द्वेष न करें। हम दोनों के त्रिविध ताप अर्थात् दैहिक दैविक एवं भौतिक ताप शांत हों।[1] मनोविज्ञान के अनुसार हम जिस किसी भी व्यक्ति के साथ ज्यादा उठते-बैठते हैं ज्यादा अपनी बातें उसे बताते हैं अथवा उसकी बातें सुनते हैं, उसका यानी उस व्यक्ति का उतना ही प्रभाव हमारे मनः पटल पर

---

1. ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।
   तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै
   ॐ शांतिः। ॐ शान्तिः।। ॐ शान्तिः।।

पड़ता रहता है। और मन:पटल पर पड़ने वाले वे सारे प्रभाव आत्मा के अचेतन मन में संग्रहित होते जाते हैं। और धीरे-धीरे वे बातें व्यक्ति के व्यक्तित्व में अपना दूरगामी प्रभाव छोड़ जाती है। अत: यह आवश्यक है कि व्यक्ति हमेशा अपने से उच्च गुणों वाले, अपने से उच्च प्रतिभा वाले व्यक्तियों के साथ रहे ताकि उसके व्यक्तित्व में विकास की सातत्य धारा का सतत संचार हो सके क्योंकि हमारे पूरे शरीर में मन का विशेष योगदान है क्योंकि मन के ठीक रहने पर ही तन ठीक रहता है और तन के ठीक रहने पर धन ठीक रहता है और तीनों के ठीक रहने पर व्यक्तित्व ठीक रहता है। इस मन के औचित्य को स्पष्ट करते हुए विवेकचूड़ामणि में शंकराचार्य जी कहते हैं कि ''जैसे मेहा वायु के द्वारा ही ले आया जाता है और वायु के द्वारा ही दूसरी जगह भेज दिया जाता है ठीक उसी प्रकार मन के द्वारा ही व्यक्ति को बंधन और मन के द्वारा ही उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।''[2] असि च जन व्यक्ति अपने समान बुद्धि वाले लोगों के साथ रहता है तो उसकी बुद्धि सम ही रहती है। अर्थात् उसके बुद्धि में न तो घटोतरी होती है और न ही बढ़ोतरी। जब अपने से कम बुद्धिवाले लोगों के साथ रहता है तो उसकी बुद्धि में भी ऋणात्मकता दृष्टिगोचर होती है किन्तु वही व्यक्ति जब अपने से विशिष्ट लोगों के साथ रहता है तो उसकी बुद्धि भी विशिष्टत्व को प्राप्त हो जाती है।''[3] शायद इसी को आधार बनाकर गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं-

एक धरी आधी धरी आधिउ में कछु आधि।
तुलसी संगति साधु की हरइ कोटि अपराध।।

इतना ही नहीं गोस्वामी जी यहाँ तक कहते हैं कि बिना सत्संग के मनुष्य को कभी भी विवेक की प्राप्ति नहीं हो सकती और सत्संग बिना

---

2. वायुनानीयते मेघः पुनस्तेनैव नीयते।
मानसा कल्पते बन्धः मोक्षस्तेनैव कल्पते।।
3. समैश्च समतां याति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्।

ईश्वर की कृपा के किसी को मिल नहीं सकता।[4] और वास्तव में सत्संग से ओत-प्रोत एक गुरु की प्राप्ति बिना ईश्वर की कृपा के संभव नहीं है जैसा कि यह जगत विदित है कि यह ईश्वर की ही कृपा थी कि गोस्वामी जी को हनुमान जी की, विवेकानन्द को उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस की और योगानंद जी को उनके गुरुजी की प्राप्ति हुई जिसके कारण इन सब पर इनके गुरुओं ने अपने व्यक्तित्व में निहित नैतिक मूल्यों की इतनी बेहतर छाप छोड़ी और उन पर ऐसा मनोवैज्ञानिक प्रभाव छोड़ा कि इन शिष्यों के जीवन की दिशा और दशा सदा सर्वदा के लिए कायान्तरित हो गई और इनका व्यक्तित्व निखरकर इस कदर समाज के समक्ष प्रतिबिम्बित हुआ कि आज इनके स्थूलकाय न रहने पर भी इनके व्यक्तित्व के नैतिक मूल्यों को कभी भी समाज द्वारा भूलाया नहीं जा सकता और ये कायिक दृष्टि से न होते हुए भी सर्वदा समाज का दिशानिर्देशन करते रहते हैं जैसा कि विवेकानंद हमेशा कहा करते हैं-

"I am voice without form"

अर्थात् मैं शरीर के न रहने पर भी अपने व्यक्तित्व की आवाज से सर्वदा व्याप्त हूँ।

प्रस्तुत शोधपत्र में ''अध्यापक में निहित नैतिकमूल्यों का शिक्षार्थियों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव'' इस विषय पर अपने सूक्ष्मेक्षिक विचारों को मैंने शब्दों में पिरोने का सार्थक एवं भरसक प्रयास किया है।

अध्यापक एवं शिक्षार्थी

शिक्षा वह कड़ी है जो अध्यापक/शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों के बीच में योजक का कार्य करती है। अध्यापक कितना ही विद्वान् और शिक्षित क्यों न हो यदि शिक्षार्थी नहीं रहेंगे तो शिक्षण कार्य कैसे संभव हो पायेगा। शिक्षार्थी कितने ही कुशाग्र क्यों नहीं यदि शिक्षक न हो तो वह तो सिगमा जैसे चिन्ह को e ही पढ़ेगा फलतः शिक्षण की अपूर्णता होगी। अतः बेहतर

---

4. बिनु सतसंग विवेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई।।

शिक्षण हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों शिक्षण हेतु तत्पर हों अन्यथा शिक्षण किसी न किसी अंग में अपूर्ण ही होगा।

अध्यापक का व्यक्तित्व एवं उसके नैतिकमूल्य

आधुनिक विज्ञान में एक बहुत ही महत्वपूर्ण theory है जिसे हम theory of Attraction के नाम से जानते हैं। 'आकर्षण का सिद्धांत यह कहता है कि हम जहाँ भी रहते हैं और जिसके साथ भी रहते हैं वहाँ यह सिद्धान्त शत-प्रतिशत लागू होता है। इसके अनुसार संसार की प्रत्येक वस्तु जिसके संपर्क में हम आप रहते हैं वे हमें अपनी ओर आकर्षित करती है और हम भी उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते हैं। ऐसे में जिधर भी आकर्षण तल अधिक रहता है जीत उधर ही होती है। जैसे कि शिक्षक एवं शिक्षार्थी जब दोनों अध्ययनाध्यापन में एक-दूसरे के साथ रहते है और अपना वक्त बिताते हैं तो दोनों एक-दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और ऐसे में जिधर आकर्षकत्व अधिक होगा वही अपनी ओर सामने वाले को आकर्षित कर लेगा और सामने वाला उसकी ओर आकृष्ट होकर उसके वैयक्तिक गुणों से अभिभूत हो जायेगा।

अपने कर्त्तव्य के प्रति सच्ची निष्ठा, ईमानदारी, समय की पाबंदी, अपना कार्य अथवा उत्तरदायित्व स्वयं एवं निष्पादित करने की आदत, कथनी-करनी में समानतर, छात्रों के प्रति जाति, धर्म, वर्ण, लिंग इत्यादि से हटकर समत्वपूर्ण दृष्टिकोण, स्नेह, दया, करूणा, उदण्डजनों के लिए कठोर रूख एवं शक्त रवैया, हर स्थिति में अपने को समायोजित एवं ढाल लेने की अनूठी क्षमता, कठोरता के साथ नम्यता के गुण[5], अध्यापन के साथ-साथ व्यक्तित्व का सामाजीकरण, अध्ययन सामग्री को वर्तमान की समस्याओं से संबद्ध करते हुए एवं भविष्य के दूरगामी परिणाम से जोड़ते हुए प्रस्तुत करना, छात्रों का मूल्यांकन तटस्थ भाव से करना, राग-द्वेष से

---

5. वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि, को नु विज्ञातुमर्हसि।।

पूर्णतः साहित्य की स्थिति में रहना, छात्रों को सारतत्त्व का ज्ञान कराना[6], किताबी ज्ञान से हटकर व्ययावहारिक ज्ञान से जोड़ना[7], छात्रों को मौखिक रूप से नहीं बल्कि अपने व्यवहार एवं कर्मों द्वारा शिक्षा देने का यत्न करना, (जैसे कि गांधी जी ने एक बच्चे के अत्यधिक मीठे खाने पर तब तक अंकुश नहीं लगाया जब तक कि उन्होंने स्वयं अत्यधिक मीठा खाना बंद नहीं किया, और कहा भी गया है–

मनस्यैकं वचस्यैकं कर्मस्यैकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यत् वचस्यैन्यत् कर्मस्यन्यत् दुरात्मनाम्।।

इत्यादि अध्यापक में निहित ऐसे नैतिक मूल्य हैं जिनका प्रभाव छात्रों पर मनोवैज्ञानिक रूप से सतत पड़ता रहता है। जैसा कि यह अनुभव में भी देखने को हमें मिलता रहता है कि जो अध्यापक में भी देखने को हमें मिलता रहता है कि जो अध्यापक विलम्ब से कक्षा में आते हैं, उनकी कक्षा में सभी छात्र भी विलम्ब से आते हैं क्योंकि मनोवैज्ञानिक रूप से वे तैयार रहते हैं कि गुरुजी भी तो आखिर देर से ही आते हैं और इतने देर से हम चलेंगे तो कोई विशेष फर्क नहीं पड़ेगा। यही नहीं शोधार्थी द्वारा यह भी अनुभव में पाया गया है कि जो अध्यापक बिल्कुल ठीक समय पर कक्षा में आते हैं अर्थात् जिनके लिए 9 बजे का अर्थ 8:50 मिनट है, उनकी कक्षा में बच्चे भी समय से आते हैं। यही नहीं जो अध्यापक छात्रों से कक्षा में ढिलाई बरतते हैं एवं अनुशासन का माहौल नहीं कायम रखते उनकी कक्षा में छात्र बहुत शोर भी मचाते हैं और आपस में काना-फूंसी भी करते हैं। फिर वह कक्षा चाहे प्राथमिक स्तर की हो अथवा उच्चतम स्तर की।

शोधार्थी द्वारा यह भी अन्वेषण में पाया गया कि जो अध्यापक बहुत शालीन एवं अनुशासित रहते हैं उनसे सभी छात्र भी नैतिक रूप से

6. (1) साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप स्वभाव।
सार-साथ को गहि रहै थोथा देह उड़ाय।।
(2) अनन्तशास्त्रं बहुलाइच विद्या अष्पश्च कालो बहु विहनता च।
यत् सारभूतं तदुपासनीयं हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्ये।।

शालीनता एवं अनुशासन के साथ ही पेश आते हैं। कितने भी उदण्ड कोटि के विद्यार्थी हों ऐसे गुरु के समक्ष आते ही उनकी उदण्डता शिष्टाचार में तब्दील हो जाती है।

हमारे उपनिषदों में आचार्य देवो भव का Concept आया हुआ है। अब प्रश्न उठता है कि देव किसे कहें तो निरुक्तकार के शब्दों में देवो दानात् वा दीपनात् वा द्योतनाद् वा इत्यादि तो यही सही भी है कि गुरु वही है जो विद्यार्थी को विद्या का व आचरण का दान करे, उसके अज्ञान का (दीपन) प्रकाशन एवं ज्ञान का द्योतन करे। इसीलिए ऋषि बृहदारण्यक में कहते हैं कि "यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि"

अब हम यदि गुरुदेव के नैतिक मूल्यों पर और अधिक गहराई में जाना चाहें तो गीता के 16वें अध्याय में दैवासुरसम्पत् विभागयोग में दैवीय गुणों की चर्चा श्रीकृष्ण इस प्रकार करते हैं।

"अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।

दया भूतेष्वलोलुप्तं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।

तेजः क्षमाधृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता।

भवन्ति सम्पदं दैवीमार्थजातस्य भारता। गीता 10/1-3

उपसंहार

उपर्युक्त विश्लेषणों में शोधार्थी द्वारा अध्यापक में क्या-क्या नैतिक मूल्य हो सकते हैं और उनका क्यों और कैसे विद्यार्थियों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है इत्यादि की भी चर्चा की गयी। और निरुक्तकार ने तो आचार्य की परिभाषा भी इस तरह दी है कि आचिनोति ग्राहयति आचारान्

इत्याचार्यः अर्थात् जो विद्यार्थी में आचार का ग्रहण करवाता है वही आचार्य है। इस आधार पर शोधार्थी इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अन्य व्यवसाय लादे जा सकते हैं किन्तु एक वास्तविक अध्यापक का जो व्यवसाय होता है। वह लादा नहीं जा सकता। वह आन्तरिक रूप से समवाय संबंध से जुड़ा होता है और जो ऐसा अध्यापक होता है वास्तव में वही सच्चे अर्थों में राष्ट्र का निर्माण करता है शेष सभी डिग्री धारकों का निर्माण करते हैं। अतः यह बात सच्चे अर्थों में लागू होती है कि ''एक इंजीनियर की गलती ईंट पत्थरों में छिप जाती है, एक वकील की गलती फाइलों में छिप जाती है, एक डाक्टर की गलती मनुष्य के मरने पर छिप जाती है लेकिन एक अध्यापक की गलती राष्ट्र की गलती के रूप में सर्वदा उजागर रहती है वह कभी छिप नहीं सकती।

॥ जयहिंद जय भारत जय भारतीय ॥

अध्यापकशिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्यमीमांसा

गोविन्द दास
शिक्षाचार्य

शिक्षा राष्ट्र का हृदय है, जिसके निष्पन्द हो जाने पर राष्ट्र का जीवन बिखर जाता है। यदि किसी राष्ट्र में उच्च शिक्षा की कोई व्यवस्था न हो, आचार संहिता न हो, कोई उसकी पद्धति न हो, तो राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। अध्यापकशिक्षा, शिक्षा का ऐसा क्षेत्र है जिसमें अतीत की उपलब्धियों का मूल्यांकन होता है और वर्तमान की समस्याओं का हम समाधान खोजते हैं तथा भविष्य की रूपरेखा बनाते हैं। इस प्रकार शिक्षा का क्षेत्र ही वह त्रिवेणी है जो वास्तव में मन को बल देती है, पवित्र करती है, मनुष्य को मनुष्यता का पाठ सिखाती है।

मूल्य का शाब्दिक अर्थ

शाब्दिक रूप में यदि देखा जाये तो मूल्य को अंग्रेजी में वैल्यू कहते हैं और वैल्यू लैटिन भाषा का शब्द वैलियर से बना है वैलियर का अंग्रेजी में अर्थ है ability, utilty, importance तथा हिन्दी में अर्थ है योग्यता, उपयोगिता व महत्व। शाब्दिक अर्थ के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि व्यक्ति या वस्तु का वह गुण जिसके कारण उसका महत्व या उपयोगिता समझा जाता है, वह मूल्य है। मूल्य में वे सभी बातें आ जाती हैं जिनमें व्यक्ति रूचि लेता है।

डॉ. आर.के. मुकर्जी के शब्दों में, ''समाज में समस्त ऐसी इच्छायें या अभिलाषायें मूल्य कही जाती हैं जो कि अनुबन्धन की प्रक्रिया द्वारा

व्यक्ति में अन्तर्निहित हो जाती हैं जो कि सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा भी उस व्यक्ति की प्राथमिकताओं, रूचियों, महत्वाकांक्षाओं के रूप में प्रगट होती हैं।"

(Socially approved desires or goals that are internalized through the process of conditioning learning or socialization and that become subjective preference standards and aspirations.)

हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों में मूल्यों के लिए शील शब्द अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है इसे मूल्य का पर्याय नहीं अपितु समीपी शब्द अवश्य कह सकते हैं। अर्थात् शीलं वै सर्वत्र भूषणं शील सर्वत्र भूषण का कार्य करता है। महाभारत में कहा गया है कि

शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति।

न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बंधुभिः।।

अर्थात् शील ही मनुष्य जीवन का रत्न है उसे जिसने खो दिया उसका जीवन ही व्यर्थ है। वह चाहे कितना धनवान हो या समाज में व्यावहारिक क्यों न हो? उसका मूल्य नहीं रहता। कबीर जी ने भी शील का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहा है–

सीलवंत सब ते बड़ा सर्व रतन की खानि।

तीन लोक की सम्पदा रही सील में आनि।।

कहीं कहीं शील शब्द चरित्र के लिए भी

प्रयुक्त हुआ है। वस्तुतः मानवीय मूल्यों के संगठित समवाय का नाम ही चरित्र है।

पाठ्यक्रम में मूल्य मीमांसा

1947 में स्वतंत्र भारत ने एक नवीन भारत के निर्माण का स्वप्न देखा था जो प्राचीन परम्पराओं, मानवीय मूल्यों की धरोहर को संभालते

हुए गतिशील रहेगा 1986 की नवीन शिक्षा नीति में भी इस उद्देश्य की झलक देखी जा सकती है।

"In our conditions, the role of Education is to transform a static society into one vibrant with a commitment to development and emergence of a learning society in which, people of all ages and all sections not only have assess to education but also get involved in the process of continunig education."

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम परम्परा विषय पाठ्यक्रम में वांछित सुधार लाने के लिए सामान्य पाठ्यचर्या की संक्ल्पना की गई। यह सामान्य पाठ्यक्रम विषय केन्द्रित न होकर कार्यकलाप केन्द्रित हैं, जिसमें शिक्षण संस्थाओं द्वारा विविध प्रकार के अनुभवों एवं कार्यकलापों के माध्यम से शिक्षार्थियों के व्यवहारगत मूल्यों में वांछित परिवर्तनों पर विशेष बल दिया जाता है।

मूल्य मीमांसा

किसी भी राष्ट्र के निर्माण में प्रभावशाली अध्यापकों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि अनेक व्यक्तियों का निर्माण करने वाला अध्यापक केवल एक व्यक्ति न होकर अपने आप में एक संस्था होता है। सामान्य शिक्षा व्यवस्था के साथ अध्यापक शिक्षा के मूल्य का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् में लिखा है–

शिलष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था

सङ्क्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।

यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां

धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव।।

एक अध्यापक का ज्ञानगहन होता है दूसरे में ज्ञान को प्रदान करने (प्रशिक्षण) की क्षमता होती है परन्तु जिस अध्यापक में ज्ञान और प्रशिक्षण

की दक्षता होती हैं वही प्रतिष्ठा के योग्य अर्थात् मूल्यवान है।

भारत में अध्यापक शिक्षा उतनी ही प्राचीन है जितनी वैदिक शिक्षा। वैदिक काल से अध्यापन कार्य एक आध्यात्मिक कार्य माना जाता था तथा उस समय में सामाजिक, व्यक्तिगत, राजनैतिक, नैतिक व धार्मिक मूल्य के आदर्श अध्यापक के चारों ओर केन्द्रित रहते थे अध्यापक को सभी आदर्शों का जनक माना जाता था। इसलिए जहां एक ओर अध्यापक को ज्ञान के किसी एक विशिष्ट क्षेत्र अथवा अनेकों क्षेत्रों में निपुणतम् होने की अपेक्षा की जाती थी, वहीं दूसरी ओर उसे अत्यन्त उच्च नैतिक चरित्र का स्वामी माना जाता था।

एक निष्ठावान अध्यापक ही समाज का निष्पक्ष समालोचक हो सकता है हम शिक्षकों को अपना आत्म निरीक्षण कर अपने मूल्यों में कमी का अवलोकन कर उच्चतम स्तर का निर्धारण करना चाहिए। नैतिक मूल्यों से सम्पन्न ऐसा शिक्षक ही अपने आचार और व्यवहार से समाज के लिए आदर्श स्थापित कर सकेगा। शिक्षकों को अपने स्वयं के लिए एक आदर्श आचार संहिता का निर्माण करना चाहिए, जिससे वे पूरी तरह से जुड़ सकें और शिक्षक संगठनों को भी हर स्तर पर इसका पालन करना चाहिए। आचार संहिता की परिकल्पना 1986 ई. की शिक्षा नीति में की गई थी। श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर जी ने भी कहा है–

"A lamp can never light another lamp,

Unless it continues to burn its own flame,

A teacher can never truly teach,

Unless he is still learning in himself."

मूल्यगत शिक्षा के उद्देश्यों में हम उन सभी उद्देश्यों को समाविष्ट कर सकते हैं, जो कि एक आदर्श शिक्षा के होने चाहिए। स्थूलतः यह कहा जा सकता है कि मूल्यगत शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को एक कुशल एवं उत्तरदायी नागरिक बनाना है जो बदलते प्रतिमानों एवं संदर्भों

में अपने परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपने विविध दायित्वों का निर्वाह गौरवपूर्णढंग से कर सकें।

संदर्भ

1. डॉ. जी. सी. भट्टाचार्य, अध्यापक शिक्षा अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा (2011)
2. डॉ. सुषमाश्रीवास्तव, समाज में मूल्यों का परिवर्तन परिदृश्य एवं उच्चशिक्षा, अध्ययन पब्लिशर्स नई दिल्ली (2008)
3. डॉ. आर. ए. शर्मा, अध्यापक शिक्षा एवं प्रशिक्षण तकनीकी, आर. लाल बुक डिपो मेरठ (2011)
4. डॉ. गीतिका मेहरोत्रा, अध्यापक शिक्षण एवं शिक्षा नीतियाँ, ए.पी. एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन नई दिल्ली (2010)
5. डॉ. जे. सी. अग्रवाल, भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, शिप्रा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली (2007)
6. डॉ. नत्थूलाल गुप्ता, मूल्यपरक शिक्षा और समाज, नमन प्रकाशन नई दिल्ली (2005)
7. डॉ. एस.पी. गुप्ता, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद (2012)
8. Dr. R.P. Pathak : Education in the Emerging India, Atlantic publishers, Delhi (2006)
9. Dr. B.N. Pandy : Student Teaching and Education, NCERT, New Delhi

काण्ट की मूल्य-मीमांसा की शैक्षिक उपादेयता

अरुणिमा
शिक्षाचार्य

वर्तमान समय में शैक्षिक व्यवसाय में नैतिक ह्रास देखा जाता है। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में जो संस्कार और विचार की प्रतीक थी उसमें अहंकार की गंध आने लगी है। जॉर्ज डेनीसन ने अपनी पुस्तक 'बच्चों का जीवन' में कहा कि अधिकतर शिक्षक बच्चों को कहाँ पढ़ाते हैं, वे तो पाठों और पाठ्यक्रमों को पढ़ाते हैं। बच्चों को पढ़ाने वाले शिक्षक थे किसी जमाने में जब हम लोग सरकारी स्कूल में पढ़ते थे। इस स्थिति में सुधार हेतु काण्ट का नैतिक दर्शन एक नई दृष्टि दे सकता है। शिक्षकों के लिए हमारे मन में प्राचीन अवधारणा एक श्रेष्ठ एवं सम्मानयुक्त माना जाता है। परन्तु वर्तमान में ऐसी अवधारणा नहीं रही। परन्तु यदि काण्ट के मूल्यों का पालन किया जाए तो वही स्थिति वापस आ सकती है। शिक्षकों का व्यवसाय एक उच्च एवं श्रेष्ठ रूप में माना जाएगा।

1. शिक्षण व्यवसाय एक त्रिवेणी है।
2. शिक्षा व्यवसाय में शिक्षक एक शिक्षणरूपी नाव का खेवैया है।
3. शिक्षक का नैतिक पक्ष इतना सुदृढ़ हो जो ज्ञान, कौशल और भावना के साथ देश में एक स्वाभिमानी और सेवाभावी पीढ़ी रचे।

4. बाजार कितना भी व्यापक असरदार हो, वह तभी जीतता है, जब संस्कार या राष्ट्र का शैक्षिक मनोबल हारता है।

5. यदि हम अध्यापकों को काण्ट और गीता के नैतिक दर्शनों में दीक्षित कर दे तो कर्तव्य निर्वाह अपने आप होने लगेगा और शिक्षा वास्तव में मुक्ति का अभ्यास बन सकेगी।

अत एव काण्ट के विचार में ऐसे ही कार्य नैतिक हैं, जिनके सूत्रों का सामान्यीकरण किया जा सके। अन्य शब्दों में, जिन्हें सरलता से वस्तुनिष्ठ नियमों का रूप दिया जा सके। इस सन्दर्भ में काण्ट ने वैयक्तिक दृष्टिकोण एवं अभिरूचियों का सम्पूर्णतः बहिष्कार किया है। उनके अनुसार विशुद्ध नैतिकता की दृष्टि से व्यक्ति को अपने अन्दर एक ऐसी तटस्थ वृत्ति का पोषण करना होगा, जिसे सामान्यतः वह दूसरों के प्रति उनके कार्य एवं प्रेरणाओं के प्रति बनाये रखता है।

नैतिक चिन्तन के इतिहास में काण्ट का एक विशिष्ट स्थान है। सुखवादी सिद्धान्त द्वारा प्रस्तुत, माननीय नैतिक प्रकृति के विश्लेषण को इन्होंने एक विशिष्ट अर्थ में पूर्णता प्रदान करने की चेष्टा की है, क्योंकि सुखवादी की प्रमुख त्रुटि मानवीय प्रकृति का अत्यधिक सरलीकरण था।

मानवीय प्रकृति का उपयुक्त विश्लेषण क्या है? मानवीय चेतना एक विषम इकाई है और उसकी इसी तात्विक विषमता को समझने का प्रयास दार्शनिक ने सदैव किया है किन्तु जितनी योग्यता तथा सूक्ष्म अन्तदृष्टि से पाश्चात्य दार्शनिकों में काण्ट ने किया है, उतना किसी अन्य ने नहीं। यदि विवेकपूर्वक उनके विचारों का हम अध्ययन करें तो अत्यन्त अरूचिकर एवं कठोर सन्यासवाद के आवरण में निहित हमें जीवन के गहनतम तत्वों का प्रस्तुतीकरण मिलता है।

काण्ट के सिद्धान्त में नियामक तत्त्वों की विभिन्नता को स्वीकार नहीं किया गया है और न ही उन्होंने अन्तःकरण को तटस्थ माना है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि, मानवीय नैतिक जीवन उसके स्पष्ट सक्रिया

संचालन के अभाव में सम्भव नहीं। उसी परम नियामक तत्त्व के परम आदेश को काण्ट ने निरपेक्ष आदेश के रूप में प्रस्तुत किया है। अन्तःकरण, काण्ट के अनुसार बुद्धि में स्पष्ट रूपान्तरित हो जाता है और नैतिक जीवन उसका निरपेक्ष अनुसरण करने वाला जीवन है। कांट तो इससे भी अधिक मानवीय संकल्प की अपेक्षा रखते हैं। उनके अनुसार मात्र बौद्धिक आदेश के अनुरूप आचरण ही नैतिक नहीं, अनुसरण बाह्य न होकर आन्तरिक होना चाहिए और साथ ही व्यक्ति में उस आदेश के प्रति अटूट निष्ठा होनी चाहिए, जिससे वह उसे परम श्रेयस् के रूप में स्वीकार कर सके।

काण्ट ने किसी कर्म का नैतिक गुण या मूल्य उस कर्म में ही अन्तर्भूत बतलाया है। कर्म के परिणाम पर उसका मूल्य निर्भर नहीं रहता। काण्ट का यह सिद्धान्त गीता में श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए उपदेश के अनुकूल है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

काण्ट का यह विचार अन्तः अनुभूतिवाद की आधारशिला है। नैतिक गुण सामान्य नियमों से ही व्युत्पन्न किए गए है। नैतिक नियमों का ज्ञान व्यक्ति को व्यावहारिक बुद्धि (Practical Reason) के द्वारा होता है। व्यावहारिक बुद्धि द्वारा नैतिक नियमों का सहजबोध हो जाता है। अतः आचरण सम्बन्धी कोई भी निर्देश व्यावहारिक बुद्धि ही दे सकती है। मनुष्य में दो तत्व हैं- विवेक (Reason) और भावनाएँ (Sansibility)। नैतिक गुण भावनाओं पर आश्रित नहीं है बल्कि उनका आधार बुद्धि है। नैतिक निर्णयों के उपरान्त भावनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं पर हमारा निर्णय उस आश्रित नहीं रहता। नैतिक निर्णय का स्वरूप गणितशास्त्रीय (Mathmatical) है। चूँकि काण्ट ने बुद्धि को ही वह नैतिक शक्ति बतलाया है, जिससे मनुष्य को नैतिक नियमों का ज्ञान होता है, अतः उसके मत को बुद्धिवाद (Rationalism) कहा जाता है।

नैतिक नियमों को काण्ट ने निरपेक्ष आदेश कहा है। नैतिक नियम आदेश (Categorical Imperative) हैं, केवल विचार-बोध नहीं। यदि किसी अनुमान की परीक्षा की जाती है तो उसे सही या गलत ठहराते हैं। इसमें आदेश का अर्थात् 'ऐसा करना चाहिए' इसका प्रश्न नहीं उठता। पर यदि किसी कर्म का उचित निर्णय किया जाता है तो उसके साथ 'वैसा करना चाहिए' का प्रश्न होता है। व्यावहारिक बुद्धि अपने नियमों को अपने ऊपर लादती है। इसलिए नैतिक नियम आदेश है। आदेश भी दो प्रकार के होते हैं- सापेक्ष (Hypothentical) और निरपेक्ष (Categorical)। 'मनुष्य को पैसा कमाने के लिए पढ़ना चाहिए' यदि यह कहा जाए तो पढ़ने का आदेश सापेक्ष हुआ, क्योंकि यह पैसा कमाने की इच्छा पर निर्भर है। इसी प्रकार 'अमूक कर्म करना चाहिए यदि सुख प्राप्त करना हो' यह भी सापेक्ष है। नैतिक नियम निरपेक्ष है। उनका पालन किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नहीं अपितु उन्हीं के लिए होना चाहिए। यह शर्तहीन आज्ञा है। निरपेक्ष आदेश का तात्पर्य है- 'आदेश' का अर्थ है 'आज्ञा' वह तो मानवीय संकल्प एवं व्यवहार के विशिष्ट अनिवार्यता रखता हो तथा 'निरपेक्ष' का अर्थ है, एक ऐसा आदेश जो कार्य के परिणाम एवं उससे सम्बद्ध लक्ष्यों से पृथक् उससे अनियन्त्रित, मानवीय संकल्प एवं व्यवहार के लिए बाध्यता रखे। अन्य शब्दों में जिसकी गरिमा एवं महत्त्व उक्त तथ्यों पर निर्भर न करे।

अब प्रश्न है कि नैतिक नियम, जिन्हें व्यावहारिक बुद्धि आदिष्ट करती है, क्या है। चूँकि बुद्धि सभी मनुष्यों में सामान्य है, इसलिए नैतिक नियम भी सामान्य ही होंगे। काण्ट ने नैतिक नियमों की सामान्यता से निम्नलिखित सूत्रों को निकाला है-

1. निरपेक्ष आदेश की प्रकृति को परिभाषित करने वाले प्रथम सूत्र-इस प्रकार कार्य कीजिए कि हमारे संकल्प द्वारा प्रकृति के सामान्य नियम के रूप में प्रस्तुत हो सके।
2. निरपेक्ष आदेश से सम्बद्ध दूसरे सूत्र की विशेषता स्पष्ट करते

हुए काण्ट कहते हैं कि उसके द्वारा मानवीय व्यक्तित्व की सहज आंतरिक उत्कृष्टता का प्रकाशन होता है। मनुष्य मूल रूप से एक बौद्धिक प्राणी है और इस नाते वह एक विशेष 'सम्मान' से युक्त है और इस 'सम्मान' को लक्ष्य करते हुए मानवीय व्यवहार के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए वे कहते हैं-

इस प्रकार आचरण कीजिए कि मानवता चाहे आप में हो किसी अन्य के व्यक्तित्व में, सदैव साध्य रूप में सम्मानित हो, साधन रूप में नहीं।

इसी से एक दूसरा उपसूत्र निकलता है कि 'सदैव अपने-आपको पूर्ण बनाने की कोशिश करें और दूसरे के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनाकर उसका सुख-साधन करें, क्योंकि आप दूसरे को पूर्ण नही बना सकते।

3. साध्यों का साम्रज्य (Kingdom of Ends) के सदस्य बनकर काम करें। यह सूत्र दूसरे सूत्र के समकक्ष है। इसका अर्थ है कि आपमें मनुष्य होने के कारण विवेक है। विवेक ही कर्तव्य निर्धारित करता है। अतः आप साधन नहीं साध्य (End) हैं। अतः सभी साध्य है,साधन नहीं, इसलिए आप एक साम्राज्य के सदस्य हैं, ऐसे साम्रज्य के, जिसमें सभी साध्य हैं, साधन कोई नहीं।

निष्कर्ष

काण्ट के अनुसार नैतिक गुण विषयगत होते हैं। वे नैतिक नियमों पर ही आश्रित है। विवेक या बुद्धि के द्वारा ही नैतिक नियमों का ज्ञान होता है। विवेक मनुष्य के स्वभाव का आवश्यक तत्व है, अतः उसी के आदेश-नैतिक नियम हैं। नैतिक नियम निरपेक्ष आदेश है, बिना शर्तों के ही उसका पालन होना चाहिए। अतः 'कर्तव्य के लिए' सिद्धान्त जीवन

का सच्चा सिद्धान्त है। कर्तव्य में 'भावना' का कोई स्थान नहीं है। एक ही वस्तु बिना शर्त के शुभ है और वह है मनुष्य का शुभ संकल्प अर्थात् कर्तव्य का संकल्प। बुद्धि सार्वभौम है, अतः नैतिक नियम भी सार्वभौम है। वे नियम तीन प्रकार से है-

1. ऐसा कर्म करो जो सार्वजनिक हो सके।
2. सभी व्यक्तियों को साध्य समझो किसी को साधन नहीं।
3. ऐसा कर्म करो जैसे तुम 'साधनों के साम्राज्य' में हो अर्थात् ऐसे संसार में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति नैतिक नियमों की सृष्टि करने वाला भी है और पालन करने वाला भी।

अतः शिक्षा के क्षेत्र में यदि काण्ट के मूल्यों का सिद्धान्त अपनाया जाए तो शिक्षा व्यवसाय में सुधार अवश्य होगा।

सन्दर्भ

1. सक्सेना, डॉ. लक्ष्मी, नीति विज्ञान के मूल सिद्धान्त, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
2. वर्मा, अशोक कुमार, नीतिशास्त्र की रूपरेखा (पाश्चात्य और भारतीय), मोतीलाल बनारसीदास, 2005, नवाँ संशोधित सस्करण

निकष

अमलेश प्रसाद, राजेश कुमार

वैश्विक एवं भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यों का विश्लेषण

परशुराम तिवारी

शिक्षा को निर्विवाद रूप से विकास का आधार माना जाता है। जबकि विकास में मूल्यों का योगदान अपरिहार्य होता है। मूल्यों को किसी सीमा विशेष में नहीं बाँधा जा सकता। वस्तुतः मूल्य ऐसा आचरण संहिता या सद्‌गुण है, जिससे व्यक्ति अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण करता है। तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। इसमें मनुष्य की विचारधाराएँ, विश्वास, मनोवृत्ति, आस्था आदि समाहित होते हैं। ये मानव मूल्य एक ओर व्यक्ति के अन्तःकरण द्वारा नियन्त्रित होते हैं तो दूसरी ओर उसकी संस्कृति एवं परम्परा द्वारा क्रमशः निस्सृत एवं परिपोषित होते हैं। शैक्षिक उद्देश्य भी मानवीय आचरण एवं आचरण की क्षमता का विकास है। मानवीय क्षमता के तहत ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति, मूल्य एवं चरित्र महत्त्वपूर्ण निधियाँ है। मूल्य के आधार पर ही मनुष्य अपने जीवन दृष्टिकोण को बनाता है। मूल्य ही जीवन को अर्थ, उच्चता तथा श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। मूल्य आङ्ग्ल भाषा के Value शब्द का अनुवाद है। यह लैटिन भाषा के Valere शब्द से निष्पन्न है। इसके अर्थों में गुण, विशेषता, उपयोगिता, वाञ्छनीयता तथा महत्त्व आदि आते हैं। वस्तुतः किसी भी समाज में जिन बातों अथवा आदर्शों को बल प्रदान किया जाता है अथवा जिससे उन सामाजिकों का व्यवहार निर्देशित एवं नियन्त्रित होता है उन्हें इस समाज के मूल्य कहते हैं। प्रो. अर्बन के अनुसार 'मूल्य वह है जो मानव इच्छा की तृप्ति करे, जो व्यक्ति तथा उसकी जाति के संरक्षण में सहायक हो'। केवल वही परम रूप से और साध्य रूप से मूल्यवान है जो आत्माओं के विकास या आत्म साक्षात्कार की ओर ले जाएँ।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मूल्य

अब वैश्विक परिप्रेक्ष्य में यदि हम मूल्यों का विश्लेषण करे उससे पहले हमें वैश्विक परिप्रेक्ष्य को समझना आवश्यक है। वैश्विक शब्द का अर्थ विश्व से लगाया जाता है परन्तु शब्दत:। इसके व्यापक अर्थ में विश्व का एकीकरण से है यह एकीकरण राजनैतिक, सामाजिक, व्यापारिक एवं आर्थिक रूप से वस्तु विनिमय प्रणाली के तहत होता है। विश्व का प्रत्येक देश अपनी क्षमता अनुसार अपने संस्कृति और अपनी सभ्यता को बनाये रखने के लिए हर सम्भव प्रयास करता है। संस्कृति और सभ्यता मानवीय एवं मानवेतर मूल्यों के संजोने एवं संवर्द्धन करने से बनी रहती है। यदि हम मूल्यों के संवर्द्धन की बात करें तो ब्रिटेन एक ऐसा देश हैं जहाँ कभी सूर्य अस्त नहीं होता था अर्थात् हमेशा प्रभुत्व सम्पन्न देश बना रहा। यहाँ मानवीय मूल्यों को अधिक महत्त्व दिया गया लोगों के परिश्रम एवं स्वतन्त्रता का महत्त्व इन्हें औद्योगिक रूप से बहुत आगे ले गया। ये स्वतन्त्रता के मूल्य पर कोई राजकीय सहयोग नहीं चाहते थे। (यहाँ के लोग स्वभाव से रूढिवादी परन्तु विचारों से प्रगतिशील हैं) यहाँ धार्मिकता के शिक्षा में धार्मिक मूल्यों को रखा गया सभी धर्मों का समान आदर है सत्ता का केन्द्रीकरण न होना इनका सबसे उत्तम मूल्यवान पक्ष है यहीं विकास का भी उत्स है। सन् 1992 ई. पूर्व यू. एस. एस. आर. (यूनाइटेड सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक) कई स्वतन्त्र शब्दों में विघटन हो जाने के बाद लोकतन्त्रात्मक मूल्यों की स्थापना हुई। रूस की जनता को वहाँ तक स्वतन्त्रता प्रदान की जहाँ तक वे दूसरे के मूल्यों को प्रभावित किए बिना अपने मूल्यों की रक्षा करना। रूस में नैतिक मूल्यों को महत्त्व न के बराबर था महिलाओं को स्वतन्त्रता बिल्कुल न थी उन्हें जबरदस्ती मिलीं फैक्ट्रियों में काम कराया जाता था तथा आधा वेतन पुरुषों के मुकाबले दिया जाता था परन्तु लम्बे संघर्ष के बाद 1917 ई. में महिलाओं के वोट देने का अधिकार प्रदान किया गया। तब जाकर इनमें यहाँ नैतिक मूल्यों की स्थापना हुई। इसी तरह लगभग 200 वर्ष पहले उत्तरी अमेरिका एवं

यूरोप में जब औद्योगिक क्रान्ति हुई तब भी महिलाओं पर घोर अत्याचार हुए जिससे मूल्यों को ताक पर रख दिया गया। मानवीय मूल्य नस्लभेदी (रंगों) में बँट गये श्वेत के मुकाबले अश्वेत को आधा वेतन दिया जाता था, इसी तरह पूर्वी अफ्रीका का एक देश है तंजानिया जहाँ पर रूढ़िवादिता इतनी भयंकर थी कि आज भी पैर फैलाए हुए है कि वहाँ नारी मूल्य नाम की कोई चीज नहीं है यहाँ का कानून 50% का दर्जा महिलाओं को देता है परन्तु एक साल में लगभग 750 महिलाएँ जादू टोने के नाम पर मार दी जाती है। फ्रांस का शासक नेपोलियन ने अपने राजतान्त्रिक मूल्यों को सफल बनाने के लिए ज्यादा से ज्यादा योग्य लोगों को नियुक्त किया विशेषकर शैक्षिक मूल्यों को महत्त्व दिया और शिक्षा में सहायक एवं प्रभावी नीति का निर्माण किया। यहाँ नारी को भी समान आदर एवं प्रोत्साहन हासिल है। इसी तरह फ्रांस से हारने के बाद जर्मनी में सांस्कृतिक मूल्यों पर गहरा आघात पहुँचा न केवल सांस्कृतिक अपितु शैक्षिक राजनैतिक सामाजिक सभी प्रकार के मूल्य प्रभावित हुई। जर्मनी के विद्वान् पेस्टालॉजी ने शैक्षिक मूल्यों को पुनः जीवित किया। इटली धार्मिक शिक्षा को पाठ्यक्रम बनाने वाला पहला देश है यहाँ धार्मिक मूल्यों पर जेसुइट्स तथा धार्मिक व्यवस्थाओं का शिक्षण पर नियन्त्रण रहा। पादरी निर्माण प्रमुख मूल्यवान कार्य था। इस तरह स्पेन में ऐतिहासिक भौगोलिक परम्परागत मूल्यों का समावेश देखने को मिलता है यहाँ शैक्षिक मूल्य का स्तर मध्यम है। वहीं चर्च का अधिक महत्त्व है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्य

भारतीय शास्त्रों में मूल्य के पर्याय रूप में यत्र तत्र 'शील' शब्द का प्रयोग हुआ है। महाभारत में कहा गया है कि शीलवान व्यक्ति के लिए कुछ भी प्राप्त करना दुष्कर नहीं होता है। वह तीनों लोक जीत सकता है-

शीलेन हि त्रयो लोकाः शक्या जेतुं न संशयः।
नहि किञ्चिदसाध्यं वै लोके शीलवतां भवेत्॥(महाभारत)

सभी गुणों का आधार शील को बताया गया है। शीलवान व्यक्ति निरोगता, तेजस्विता एवं दुःख का दमन करने के शीलता आ जाती है।

नीरोगः कान्तिसम्पन्नः सर्वदुःखविवर्जितः।
सदाचारी भवेल्लोके दर्शनीयस्तु सर्वदा।। (महाभारत)

भगवान् बुद्ध ने धम्मपद में चन्दन से शील की तुलना करते हुए कहते हैं-

चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो।। (धम्मपद 4.12)

तेसं सम्पन्नसीलानं अप्पमादविहारिनः।
सम्मदञ्ञाविमुक्तानं मारो मग्गं न विन्दति।।(धम्मपद4.16)

भर्तृहरि लिखते हैं नीतिशतक में -

सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम्।(नीति.1.83)

इस प्रकार मूल्य का शास्त्रीय प्रमाण शील रूप में प्रकट होता है। व्यक्ति के जीवन मूल्यों के प्रमुख स्रोत उसके संस्कृति होते हैं। साथ ही उसका अपना संस्कार एवं अपना वंशानुक्रम होता है। भारतीय संस्कृति सत्य अहिंसा आदि श्रेष्ठ मानवीय गुणों पर अवलम्बित होती है। महर्षि कपिल कहते हैं-

सत्याहिंसागुणैः श्रेष्ठा विश्वबन्धुत्व शिक्षिका।
विश्वशान्तिसुखधात्री भारतीया हि संस्कृतिः।। (कपिल)

हमारी संस्कृति मूल्यों पर आश्रित है यह मूल्य और संस्कृति एक सिक्के के दो पहलू हैं। इन सिक्कों की कसौटी चरित्र के तपन में दृढ़ होती है अर्थात् मूल्य सृजन एवं रक्षण चरित्र अवलम्बित है तभी व्यक्ति को विजय प्राप्त होती है - राम विभीषण से उत्तम चरित्र सृजन हेतु सन्देश एवं संकेत करते हैं कि मानव मूल्यों के संरक्षण के लिए यह उपाय अत्यन्त उपयोगी है-

सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ ध्वजा पताका।।

बल विवेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु जोरे।।

ईश भजनु सारथी सुजाना।
बिरति चर्म सन्तोष कृपाना।।

दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा।
बर विरयान कठिन कोदण्डा।।

अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम जम नियम सिलीमुख नाना।।

कवच अभेद विप्र गुर पूजा।
एहिं सम विजय उपाय न दूजा।।

सखा धर्ममय अस रथ जाके।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।।

दोहा- महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होई सुनहु सखामति धीर।।
(रामचरितमानस, लंकाकाण्ड)

अर्थात् शूरता और वीरता जिस रथ के चक्के हैं, सत्य शील दृढ़ पताका है, बल विवेक, दम और परहित, जिनके घोड़े हैं, जो क्षमा कृपा और समता के रस्सियों से बँधे हैं, ईश भजन जिनका सारथी है और वैराग्य रूपी ढाल और सन्तोष रूपी कृपाण जिसके पास है, जो दान रूपी फरसा, बुद्धि रूपी शक्ति और विद्या रूपी धनुष से युक्त है, अमल और अचल मन ही जिसका कवच है, संयम और नियम रूपी बाण जिसके पास है उसके लिए कोई भी शत्रु जीतने को शेष नहीं रहता। वह अपराजेय और सर्वजयी होता है। रामचरितमानस के यह उद्गार उत्तम प्रकार के मूल्यों का सृजन एवं पोषक है। परोपकार हमारी संस्कृति का

अन्यतम मूल्यों में से एक है। जहाँ पत्नी परोपकार के लिए स्वयं के पत्नीत्व पर संकल्प ले लेती है कि यदि मैं (सीता) अपनी पति के सेवा में त्रुटि न हो तो हनुमान का अग्नि शान्त हो जाएँ–

यद्यस्ति पतिशुश्रुषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्व शीतो भव हनुमतः॥

(वा.रा.सु. 53/27)

सीता के यह परोपकारी मूल्य यत्र तत्र हमें देखने को मिलता है।

मूल्यों के निमार्यक तत्त्व

मूल्यों के निर्माण में छः प्रयासो के माध्यम से हम विभिन्न चिन्तन धारा को देखते हैं–

1. भोगवाद 2. कर्तव्यवाद 3. अन्तःप्रज्ञा का सिद्धान्त 4. वैधानिक सिद्धान्त 5. विकासवाद का सिद्धान्त 6. धार्मिक सिद्धान्त

1. भोगवाद – भोगवाद में सुख प्राप्ति एवं दुःख निवृत्ति समस्त कर्मों का प्रतिफल है। इस भोगवाद को अंग्रेजी में Hedoristic Theory कहते हैं। इसके समर्थक बैघम तथा जे एस मिल है। इन्होंने शारीरिक सुख से अच्छा मानसिक सुख माना है।

2. कर्तव्यवाद – इस सिद्धान्त के अनुसार शिवसंकल्प से किया गया कार्य नैतिक होता है तथा अन्य मनोवेगों से किया गया काम अनैतिक होता है। इस मत के प्रमुख दार्शनिक काण्ट थे। केवल उद्देश्य अच्छा होने से कार्य नैतिक नहीं कहलाएगा अपितु प्रयोजन भी अच्छा होना चाहिए। गाँधी दर्शन इसी पर अवलम्बित है।

3. अन्तःप्रज्ञा का सिद्धान्त – इसके अनुसार नैतिकता हमारे कर्तव्य तभी हो सकते हैं जब उसकी प्रेरणा अन्दर से मिले। वटलर के अनुसार – अन्तःकरण बता देता है कि अमुक कार्य हमारे लिए अच्छा है अमुक बुरा। कालिदास भी शाकुन्तलम् में कहते हैं–

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषिमे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥

(शा. 1.19)

4. वैधानिक सिद्धान्त - इस मत के अनुसार देश का कानून ही सर्वोच्च होता है। पं. नेहरु ने कहा था 'कानून को जड़ नहीं होना चाहिए। कानूनी प्रशासन और जीवनमूल्यों की गति समानान्तर होनी चाहिए।

5. विकासवाद का सिद्धान्त - डार्विन इसके पोषक रहे हैं। इनके अनुसार परिस्थितियाँ और वातावरण के साथ अनुकूलता ही नैतिकता की कसौटी है। यह परिणाम पर विश्वास करता है न कि साधनों की पवित्रता पर।

6. धार्मिक सिद्धान्त - इसमें धार्मिकता को अच्छे बुरे कार्यों की कसौटी होती है। भारत में कर्म परिपाक का सिद्धान्त विशेष महत्त्वपूर्ण है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय मूल्यों का महत्त्व साथ चलने रहने एवं सबके कल्याण में निहित होता है हम स्व की बात के साथ और की भी ध्यान रखते हैं यही शाश्वत वेद कहता है-

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्।
समानो मन्त्रः समिति समानी।
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रयेवः।
समानेन वो हविषा जुहोमि
समानी व आकुतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

(ऋ.10.191.2.4)

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

यही भारत की सर्वोच्च मूल्य सङ्कल्पना है।

सन्दर्भग्रन्थ -

1. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम् (मूल), कालिदास ग्रन्थावली
2. गुप्ता, नत्थुलाल, मूल्यपरक शिक्षा और समाज, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली
3. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर
4. पाण्डेय, रामशकल, तुलसी और मूल्य शिक्षा, अध्ययन पब्लिशर्स, नई दिल्ली
5. पाण्डेय, रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
6. भर्तृहरि, नीतिशतकम्, चौखम्बा, वाराणसी
7. महर्षिवाल्मीकि, रामायणम्, गीताप्रेस, गोरखपुर
8. माथुर, एस., शिक्षा के दार्शनिक आधार, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा
9. वेदव्यास, महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर
10. सरयूप्रसाद, तुलनात्मक शिक्षा, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा
11. पाण्डेय, के. पी., शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
12. नवोदय टाइम्स, फरवरी, 2015, सम्पादकीय

वैश्विक एवं भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यों का विश्लेषण

संदीप उनियाल

मूलभूत प्रश्न- हमारे शैक्षिक, नैतिक सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आदि मूल्यों की उपादेयता एवं औचित्य के साथ जुड़ा हुआ अत्यन्त सार्थक एवं सटीक प्रश्न यह है कि हमारी जीवन-शैली कैसी है और कैसी होनी चाहिये? हम किस प्रकार की जीवन-शैली अपनाना चाहते हैं? आज प्राय: औसत बुद्धिवादी के सामने कुछ अहम सवाल उठते रहते हैं और उसे उलझन में डालते रहते हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह होता है कि उन्हें स्वयं अपने मूल्य स्पष्ट नहीं होते। कभी-कभी वे स्वयं नहीं जान पाते कि वे क्या चाहते हैं जब मानव को अपने मूल्य स्पष्ट होंगे तभी वह मूल्यपरक निर्णय निष्पक्ष एवं युक्तिसंगत रूप में ले सकेगा। सामान्य मनुष्य की हमेशा एक प्रबल इच्छा होती है कि वह सब परिस्थितियों में, सब दशाओं में, सबके साथ सत्य एवं सद्व्यहार करें। जिससे हमेशा उसका अनुकूल प्रभाव पड़े और समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढे। इन लक्ष्यों की पूर्ति हेतु उसके मन में प्राय: निम्नांकित प्रश्न उठते रहते हैं-

(क) अपनी चित्त-वृत्तियों को व्यवस्थित कैसे करें?

(ख) अपना शारीरिक एवं मानसिक विकास कैसे करें?

(ग) आदर्शमित्र, पालक एवं नागरिक कैसे बनें?

(घ) प्रकृति प्रदत्त साधनों का उपयोग अधिकतम कैसे करें?

(ङ) मानसिक शान्ति कैसे प्राप्त हो?

(च) अपने वरिष्ठ अधिकारियों को कैसे प्रसन्न रखें ? इत्यादि।

इन प्रश्नों के उत्तर विविध जीवन-मूल्यों के आधार पर दिये जा सकते हैं जिनमें से वैश्वीकरण और भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यों को दर्शाया जा रहा है।

वैश्विक मूल्य- किसी जाति, समूह या देश विशेष से सम्बन्ध न होकर, जिन मूल्यों का सरोकार सम्पूर्ण विश्व की प्रगति एवं भलाई से होता है, वे मूल्य वैश्विक मूल्य कहलाते हैं। इसमें सबके लिए स्वतन्त्रता, न्याय एवं अवसर की समानता, नि:शस्त्रीकरण, सभी प्रकार की दासताओं का उन्मूलन, रंग-भेद जैसी घिनौनी व्यवस्था का बहिष्कार जैसी घातक व्यवस्थाओं का निषेध एवं उन्मूलन आदि मूल्यों का समावेश किया जा सकता है।

भारतीय संस्कृति ने पृथ्वी को माता का स्वरूप माना है। अथर्ववेद में इसी प्रकार की प्रार्थना की गई है। यह प्रार्थना विश्व बन्धुत्व से प्रेरित है। सम्पूर्ण पृथ्वी हमारी माता है। अत: हम किसी एक देश का, किसी एक प्रान्त का, नई या पुरानी संप्रदाय का हित नहीं चाहते, बल्कि विश्व का हित चाहते हैं। इस वैश्विक मूल्य को लोग यदि समझे एवं आत्मसात् करें तो रंग-भेद एवं सांप्रदायिकता के कुचक्र स्वयं ही शांत होंगे और विश्व में शांति का वातावरण बन सकेगा।

भारत ने उदारवादी नीति अपनायी है। इसने वैश्वीकरण को बढावा दिया है। सन् 1991 से भारत आर्थिक रूप से अन्य देशों के साथ विशेष रूप से सम्मिलित हुआ है। आज का युग वैश्वीकरण का युग है। इसमें उदारीकरण, निजीकरण की प्रक्रिया विश्व-स्तर पर चल रही है। शिक्षा और विकास तथा आर्थिक व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे हैं। विभिन्न राष्ट्रों में आज जो क्रिया-प्रतिक्रिया अनेक क्षेत्रों में हो रही है, यह राष्ट्रों को एक-दूसरे के निकट ला रही है। जिससे कि भौगोलिक सीमाएँ भी कम होंगी।

वैश्वीकरण शब्द विश्व से बना है जिसका अर्थ सम्पूर्ण विश्व है। अत: वैश्वीकरण का अभिप्राय है एक देश की अर्थव्यवस्था का दूसरे देशों की अर्थव्यवस्था से एकीकरण। वैश्वीकरण से अभिप्राय है-

वैश्विक अर्थात् विश्वव्यापी बनना अथवा सम्पूर्ण विश्व या सभी लोगों को प्रभावित करना। वैश्वीकरण का प्रारम्भ 18वीं शताब्दी में हुआ था। परन्तु भारत की ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की प्रणाली इसका ही एक प्राचीन प्रत्यय है। भारत में वैश्वीकरण का श्रेय 1991 में आई.एम.एफ. नरसिम्हा राव की सरकार को जाता है, जिन्होंने विश्व बैंक के आदेश पर नई आर्थिक नीति लागू की।

शिक्षा और वैश्वीकरण (Education and Globalization)

वैश्वीकरण तकनीकी, कृषि, अन्तरिक्ष, स्वास्थ्य, सूचना प्रौद्योगिकी, पर्यावरण, सामाजिक विज्ञान आदि के क्षेत्रों में हो रहा है वैश्वीकरण के शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ लक्ष्य है-

1. छात्र-छात्राओं को ज्ञान के नये-नये क्षेत्रों से परिचित कराना।
2. नयी तकनीकी द्वारा शिक्षा प्रदान करना।
3. छात्राओं में नई दृष्टिकोण का विकास करना।
4. छात्रों में अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास करना।
5. विश्व नागरिकता की भावना को बढावा देना।
6. विश्व संस्कृति तथा मानव मूल्यों का विकास करना।

वैश्वीकरण और शिक्षा का पाठ्यक्रम (Globalization and Curriculum of Education)

आज के समय में शिक्षा का आधुनिकीकरण हो गया है जिसके फलस्वरूप ज्ञान का क्षेत्र भी विस्तृत हो गया है। शिक्षा में प्रत्येक स्तर पर विभिन्न पाठ्यक्रमों को सम्मिलित किया गया है तथा आज एक ऐसे विस्तृत पाठ्यक्रम की आवश्यकता है जिसमें विविधता तथा अधिकता सम्मिलित हो। इससे विभिन्न देशों के बीच सकारात्मक वातावरण विकसित होगा। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर छात्र-छात्राओं की आवश्यकता के अनुसार कोर्सों को बनाने के लिए विभिन्न निपूणता एवं महान् चिन्तन की आवश्यकता होती है जिसको विश्व स्तर पर विशेषज्ञों द्वारा बनाया

जा सकता है।

शिक्षा और वैश्वीकरण में अध्यापक का भूमिका

(Role of teacher in Globalization and education)

आज ऐसे शिक्षक की आवश्यकता है जो बालक का सर्वांगीण विकास कर सके तथा उसे विश्व स्तर का ज्ञान हो सके और इस वैश्वीकरण के युग में सामंजस्य स्थापित करने योग्य बना सके। इसलिए एक अध्यापक से आशा की जाती है कि उसका ज्ञानकोश विस्तृत होना चाहिए और उससे ऐसा ज्ञान हो जो वह नये ज्ञान को बदलते समय के अनुसार ग्रहण करता रहे और अध्ययनशील हो । अध्यापक का विकास आधुनिकता, सामाजिक परिवर्तन और साम्यवादी विचारधारा में होना चाहिए।

वैश्वीकरण के लाभ (Merits of Globalization)

1. वैश्वीकरण से प्रतियोगिता को बढ़ावा मिलता है।
2. अधिक-प्रतियोगिता होने से कम कीमत में गुणवत्ता वाली वस्तुएँ प्राप्त होती है।
3. छात्रों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नौकरियों के अवसर प्राप्त होते हैं।
4. उपयोगिताओं को विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ आसानी से उपलब्ध हो जाती है।
5. अधिक उत्पादन की समस्या वैश्वीकरण से दूर हो जाती है।

वैश्वीकरण के अवगुण (Demerits of Globalization)

वैश्वीकरण के अनेक लाभ हैं, परन्तु इसकी कुछ हानियाँ भी है जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता यह निम्नलिखित है-

1. संस्कृति व परम्पराओं का पतन- वैश्वीकरण के कारण देश की संस्कृति व परम्पराओं का पतन होने लगता है। दूसरे देशों से यहाँ आकर निवेश करने से लोग उनकी संस्कृति को अपनाने लगते हैं।

वे अपनी संस्कृति को भूल जाते हैं।

2. आय का असमान वितरण- वैश्वीकरण के कारण सम्पत्ति का असमान वितरण बढ़ जाता है अमीर और अमीर तथा गरीब और गरीब हो जाता है।

3. बेरोजगारी को बढ़ावा- वैश्वीकरण के कारण अधिक उत्पादन होने की वजह से श्रम शक्ति की अपेक्षा मशीनों का अधिक प्रयोग होने लगता है जिससे बेरोजगारी की समस्या होती है।

4. शहरों में उत्पन्न समस्याएँ- शहरों में अधिक कम्पनियाँ आने के कारण लोग शहर की तरफ रोजगार के लिए आने लगते हैं जिससे शहरों में जनसंख्या प्रदूषण आदि की समस्याएँ उत्पन्न होने लगती है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य-

'सा विद्या या विमुक्तये' का स्पष्ट तात्पर्य है कि विद्या मुक्त करती है। विष्णु पुराण के इस श्लोक में न केवल विद्या के वास्तविक महत्त्व को केन्द्र में रखा गया है साथ ही यह जीवन के सभी पहलुओं का भी समावेश कर लेता है। इस श्लोक को पढ़ते ही सवाल उठते हैं किसकी मुक्ति, किससे मुक्ति, किसलिए मुक्ति? और यह भी विद्या की प्रक्रिया क्यों है, वह किस मुक्ति के प्रयोजन को पूरा करती है। भारतीय परम्परा की सभी धाराओं में 'विद्या' की अवधारणा पर गहरा और विस्तृत विचार हुआ है। वैदिक, बौद्ध, जैन और अनन्तर पौराणिक और सिख सम्प्रदाय सभी मुक्ति, निर्वाण या कैवल्य आदि को जीवन का चरम लक्ष्य मानते हैं। लेकिन वह बंधन क्या है जिससे ये सभी मुक्त होना चाहते है? यह अविद्या से मुक्ति है जो वास्तविक बंधन या दुःख का कारण है। जैन दर्शन मानता है कि वास्तविकता के कई रूप और पहलु हो सकते हैं जिनकी जानकारी ज्ञान की भिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से होती है। इन्हें मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्याय और केवल कहा गया है। यह स्मरणीय है कि जैन दर्शन में जीव को 'ज्ञान स्वरूप'

अर्थात् शुद्ध चेतना कहा गया है।

भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में, प्रथमतः तो विद्यार्थी को केन्द्रीयता ध्यान आकर्षित करती हैं। शिक्षक या गुरु का वह दायित्व माना गया है कि वह किसी भी विद्यार्थी को अपनी अन्तर्जात प्रतिभा और सामर्थ्य को पहचानने और उसे सम्भव सीमा तक विकसित करने में अपनी भूमिका का समुचित निर्वाह करें। इसलिए सामान्यतः एक उम्र के बाद विद्यार्थी को गुरुकुल, आश्रम या गुरु के घर रहना होता था, जहां उसके परिवार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता था। शिक्षा-संस्थान या गुरुकुल आदि राज्य अथवा बाजार के नियन्त्रण से पूरी तरह मुक्त थे।

शिक्षा प्रक्रिया को तीन चरणों में विभाजित किया गया था- श्रवण, मनन, निदि्ध्यासन। पहले चरण में विद्यार्थी को गुरु का प्रवचन सुनना होता था (आज हम उसमें पाठ्यपुस्तक या सामग्री को शामिल कर सकते हैं।) दूसरे चरण में उस पर स्वयं विचार करना तथा समस्याओं को स्वयं या गुरु की सहायता से सुलझाना तथा तीसरे चरण में स्वयं उसका व्यावहारिक अनुभव करना होता था। यह ध्यातव्य है कि उपनिषदों में अध्यापक के सम्मुख प्रश्न प्रस्तुत करने और वाद-विवाद को बहुत महत्व दिया गया है।

मुक्त व्यक्ति के लक्षण बताते हुये **महाभारत में कहा गया है,** "जो अपने को सब में और सबको अपने में अनुभव करता है, वह मुक्त है। जो इस ज्ञान के साथ जीवन जीता है कि अन्य में भी वही आत्मा है जो स्वयं उसमें है वह ऐसी चेतना पा लेता है जो मृत्यु से परे है।" तथा 'अन्य के साथ अपने एकत्व का और ज्ञान प्रकार साथ होने का अनुभव करते हुए जो सबका मित्र है। जिसने अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रण से निर्लिप्त है, गर्व से मुक्त है- ऐसा व्यक्ति सदैव मुक्त है।"

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
यदा पश्यति भूतात्मा ब्रह्मसम्पद्यते तदा॥

आत्मवत् सर्वभूतेषु पश्चरेभियताः शुचिः।

अमानी निशाभिमानः सर्वत्ते मुक्त एव सः।।

सर्वमित्रः सर्वसहः शमे रक्तो जितेन्द्रियः।
व्यपतेय भयमन्युश्च आत्मवान् मुच्यते नरः।।

निष्कर्ष- (Conclusion)

माना वैश्वीकरण की कुछ हानियाँ है, परन्तु इसके लाभों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। वैश्वीकरण आज देश की एक आवश्यकता बन गया है क्योंकि कोई भी देश सम्पूर्ण विकास अकेले नहीं कर सकता। विकासशील देश के लिए तो वैश्वीकरण एक वरदान है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण के होने से ''या विद्या सा विमुक्तये' अब **''या विद्या सा वियुक्तये''** हो चुका है।

अन्त में, मैं तैतीरिय उपनिषद् की इस प्रार्थना का स्मरण करना चाहूंगा

''ऋतं च स्वाध्याय प्रवचने च।
सत्यं च स्वाध्याय प्रवचने च।।

तपश्च स्वाध्याय प्रवचने च ।
दमश्च स्वाध्याय प्रवचने च।।

अतिथियश्च स्वाध्याय प्रवचने च।
मानुषं स्वाध्याय प्रवचने च।

प्रजनश्च स्वाध्याय प्रवचने च।
प्रजातिश्च स्वाध्याय प्रवचने च।।''

अध्यापकशिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्यमीमांसा

कार्तिकपाल

पश्चिमी दर्शन के परिवार में मूल्यमीमांसा अन्य शाखाओं की अपेक्षा एक शिशु है। नीतिशास्त्र या नैतिक शुभ का सिद्धान्त दर्शन के अत्यधिक प्राचीन क्षेत्रों में से एक है व सौन्दर्यशास्त्र या सौन्दर्य की विद्या ने दार्शनिकों को बहुत समय से ध्यान आकृष्ट किया है। यह विश्वास किया जाता है कि इन विभिन्न मूल्यों सम्बन्धी क्षेत्रों को समझने में यह सामान्य क्षेत्र कुंजी का काम करेगा। इसे मूल्यमीमंसा का नाम दिया गया है। मूल्यों के निर्धारक धर्म व संस्कृति है और इनका अर्थापन दर्शन करता है। इस प्रकार भूतों की पृष्ठभूमि, दर्शन, धर्म व संस्कृति है। प्रत्येक दर्शन मूल्यों का अर्थापन अपने ढंग से करता है समाज के अपने मूल्य होते हैं। जिन विषयों का सम्बन्ध मानव जीवन के मूल्यों, उद्देश्यों और आदर्श से होता है, उनका विवेचन मूल्यशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

मूल्यमीमांसा का अर्थ

मूल्यों के निर्धारक धर्म तथा संस्कृति है और इनका अर्थापन दर्शन करता है। इस प्रकार मूल्यों की पृष्ठभूमि दर्शन, धर्म एवं संस्कृति है। इसलिए मूल्यों की सार्वभौमिक परिभाषा देना और उनका अर्थापन करना कठिन है। प्रत्येक दर्शन मूल्यों का अर्थापन ढंग से करता है, समाज के अपने मूल्य होते हैं।

मूल्यों का शाब्दिक अर्थ

शाब्दिक अर्थ में मूल्य व्यक्ति के गुणों के महत्त्व देता है, जिससे व्यक्ति का महत्त्व बढता है और समाज में आदर सम्मान होता है। यह गुण अथवा विशेषता आन्तरिक अथवा बाह्य हो सकती है। मूल्यों

से व्यक्ति की उपयोगिता एवं महत्त्व है, व्यवहारिक दृष्टि से मनुष्य की इच्छाओं की सन्तुष्टि को 'मूल्य' की संज्ञा दी जाती है।

मूल्यों का दार्शनिक अर्थ

मूल्यों के दार्शनिक अर्थापन में व्यक्ति को महत्त्व नहीं दिया जाता है अपितु विचारों एवं दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जाती है। एक वस्तु किसी व्यक्ति के लिए उपयोग हो सकती है, परन्तु किसी अन्य व्यक्ति के लिए नहीं, उस वस्तु की कई भी उपयोगिता नहीं है। उसके लिए उस वस्तु का कोई मूल्य नहीं होगा, इस प्रकार दार्शनिक विचार एवं दृष्टिकोण का मूल्य से सीधा सम्बन्ध होता है। दार्शनिक विचारधारा पर स्थान, समय एवं परिस्थिति का प्रभाव होता है। इसलिए जो विचार एवं दृष्टिकोण परिस्थिति के अनुरूप तथा उपयोगी है उसे 'मूल्य' कहते हैं।

मूल्य का सामाजिक अर्थ

मूल्यों का विकास सामाजिक स्वरूप के अन्तर्गत धीरे धीरे समाज के सदस्यों की अन्त:प्रक्रिया से होता है। अपनी जीविका के लिए समस्याओं का सामना करना होता है। समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ उसे सहयोग करना तथा उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना होता है। अपनी संस्कृति के अनुरूप व्यवहार करना होता है। इस प्रकार बिना सामाजिक मूल्यों के सामाजिक प्रणाली में शान्ति का अनुरक्षण करना सम्भव नहीं होगा, मानवी अनुभवों एवं अस्तित्व से मूल्यों की प्राप्ति की जाती है। जिन्हें सामाजिक 'मानक' भी कहते हैं।

मूल्यमीमांसा के अनुसार मूल्यों का अर्थ

मूल्य मीमांसा के अनुसार मूल्यों को मानदण्ड तथा निर्णायक कहते हैं। यह मानदण्ड भावात्मक तथा बौद्धिक होते हैं, इनका क्षेत्र मनोवैज्ञानिक नहीं है, अपितु दार्शनिक अधिक है। मूल्यों के आधार पर ज्ञान एवं अनुभवों की सार्थकता की परख की जाती है। मूल्य दर्शन की पाठ्यवस्तु है, अपितु शिक्षा एवं दर्शन ही मूल्यों के सम्बन्ध में निर्णय

ले सकते हैं और मूल्यों से ज्ञान की सार्थकता की परख भी की जाती है।

मूल्यों का शैक्षिक अर्थ

शिक्षा के मूल्यों का सम्बन्ध उन क्रियाओं से होता है जो अच्छी उपयोगी तथा मूल्यवान होती है। **एडम्स** के अनुसार शिक्षा को द्विपदीय प्रक्रिया मानते हैं एक पद शिक्षक तथा दूसरा पद छात्र होता है। शिक्षा विभिन्न प्रकार के अव्यूहों तथा प्रविधियों का उपयोग करके छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाता है। वह जिनको उपयोगी तथा मूल्यवान समझता है उनकी सहायता से समुचित वातावरण का सृजन करता है। छात्र जिन्हें मूल्यवान समझता है उनमें क्रियाशील होता है। शिक्षक एवं छात्र उन्हीं क्रियाओं में सहभागी होते हैं, जो शिक्षा की दृष्टि से उपयोगी एवं मूल्यवान होते हैं।

कनिंघन के अनुसार शिक्षा के मूल्य ही शिक्षा के लक्ष्य होते हैं, इन्हीं गुणों एवं क्षमताओं को शिक्षा द्वारा प्रोन्नत किया जाता है। इन्हीं को आन्तरिक मूल्य महा जाता है। **ब्रुवेकर** भी शिक्षा के लक्ष्यों की शिक्षा के मूल्य कहता है।

मूल्यमीमांसा की विशेषताएँ

मूल्य मीमांसा की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है–

1. मूल्य जीवन के मानक रूपी मानदण्ड है।
2. मूल्यों को समाज द्वारा स्वीकृति दी जाती है।
3. मूल्यों को आकांक्षाओं के रूप में धारण करते हैं।
4. मूल्यों की प्रकृति व्यवहारिक (आचरण) होती है।
5. मूल्यों का सम्बन्ध भावनाओं तथा संवेदनाओं से होता है।
6. मूल्यों में नैतिक नियमों का पालन किया जाता है।
7. मूल्यों का सम्बन्ध धर्म व संस्कृति से होता है।

8. मूल्यों का विकास अनुकरण से होता है।

9. जीवन के प्रति दृष्टिकोण को मूल्य मानते हैं।

10. मूल्यों का सन्दर्भ बिन्दु समाज होता है। इनका सम्बन्ध भावात्मक पक्ष से अधिक होता है।

मूल्यशास्त्र की प्रकार

मूल्यशास्त्र को मुख्यत: तीन भागों में विभक्त किया जाता है - 1. तर्कशास्त्र, 2. नीतिशास्त्र, 3. सौन्दर्यशास्त्र

1. तर्कशास्त्र - इसके अन्तर्गत दर्शन का युक्तिपूर्ण एवं तर्कपूर्ण विवेचन किया जाता है। तर्कशास्त्र के अन्तर्गत आगमन-निगमन विधियाँ अध्ययन के लिए प्रयुक्त की जाती है। इसके अन्तर्गत चिन्तन, कल्पना, तर्क की पद्धति इत्यादि के बारे में विचार किया जाता है। दर्शन की अध्ययन पद्धति का तर्कशास्त्र एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

2. नीतिशास्त्र - इसके अन्तर्गत मानव के आचरण की विवेचना की जाती है। साथ ही उन लक्षणों को भी विचारोपरान्त निश्चित किया जाता है जो मनुष्य के कर्म-अकर्म, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य और भद्रता-अभद्रता के अनुसार आचरण का आधार प्रदान करते हैं कि मनुष्य का आचरण क्या हो? और उसे कैसा आचरण करना चाहिए?

3. सौन्दर्यशास्त्र - इसके अन्तर्गत सौन्दर्य, सौन्दर्यानुभूति, सौन्दर्य के लक्षण एवं मापदण्ड क्या है? इत्यादि प्रश्नों से सम्बन्धित समस्याओं का वाहन विवेचन किया जाता है।

मूल्यमीमांसा व अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य

सौन्दर्यशास्त्र साहित्य तथा कला को दार्शनिक आधार प्रदान करता है। साहित्य तथा कला का शिक्षा में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

मूल्यमीमांसा के अनुसार अध्यापक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिए-

1. चारित्रिक मूल्यों का विकास करना - चरित्र के विकास के बिना जीवन उपयोगी नहीं है, मूल्यमीमांसा दर्शक भी इसी बात पर जोर देते हुए कहते हैं के अध्यापक शिक्षा का उद्देश्य चरित्र का विकास करना है।

2. नैतिक मूल्यों का विकास - अध्यापक शिक्षा का उद्देश्य नैतिक व धार्मिक मूल्यों का विकास होना चाहिए। जीवन में नैतिक व धार्मिक मूल्यों का विशेष स्थान होता है। नैतिक व धार्मिक मूल्यों की शिक्षा देनी आवश्यक है।

3. आध्यात्मिक मूल्यों का विकास

4. सामाजिक मूल्यों का विकास

मूल्यमीमांसा व अध्यापक शिक्षा की प्रक्रिया

अध्यापक शिक्षा की प्रक्रिया का संचालन प्रशिक्षण महाविद्यालय में किया जाता है तथा उसमें विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम व पाठ्यसामग्री क्रियाओं की व्यवस्था की जाती है, जिनके द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है-

* मूल्यों को सिखाने व सीखने अपना ही एक क्रम होता है।

* ज्ञानात्मक पक्ष-भावात्मक पक्ष-आचरण पक्ष।

मूल्यमीमांसा दर्शनशिक्षा की प्रक्रिया के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर जोर देने की बात कहता है-

* शिक्षा की प्रक्रिया में समस्या समाधान एवं सामाजिक सक्षमताओं को महत्त्व दिया जाए।

* शिक्षा की प्रक्रिया में मानव मूल्यों को ध्यान में रखा जाए।

* सामूहिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाए।

* शिक्षा में नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों के विकास के लिए कार्यक्रमों का आयोजन किया जाय।

मूल्यमीमांसा व शिक्षण विधियाँ

शिक्षण विधियाँ ऐसी होनी चाहिए जिससे कि विद्यार्थियों में मूल्यों का विकास हो। आगमन तथा निगमन दोनों ही तर्कशास्त्र की महत्त्वपूर्ण शाखाएँ है। मूल्यों के विकास में परिवार, धार्मिक संस्थाएँ व शिक्षा संस्थाओं का विशेष योगदान है, वास्तव में मूल्यों का विकास घर-परिवार में अपने बड़ों के व्यवहार को अनुसरण से अधिक होता है। क्योंकि वे उनके लिए आदर्श होते हैं। शिक्षण विधियाँ पाठ्यवस्तु केन्द्रित होती है इसलिए विद्यालयों में मूल्यों के विकास के लिए पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाता है। जिसमें निम्नलिखित विधियों का उपयोग करते हैं। अतः तर्कशास्त्र शिक्षा के सिद्धान्तों तथा व्यवहार दोनों से सम्बन्धित है-

1. अनुकरण विधि - इस विधि में शिक्षक की भूमिका एक आदर्श रूप में होनी चाहिए, जिसके अनुकरण से मूल्यों का विकास हो।

2. नाटकीय विधि - ऐसे ऐतिहासिक प्रकरणों पर विद्यालय में नाटकों का आयोजन किया जाए, जिससे नैतिक व सामाजिक मूल्यों का विकास हो।

3. कहानी विधि

4. शैक्षिक यात्राएँ

5. भूमिका निर्वाह विधि

6. क्रिया-केन्द्रित प्रशिक्षण विधि - इससे मूल्यों का विकास होता है। जैसे एन. सी. सी. के शिविरों में अभ्यर्थियों को जो कार्य सौंपे जाते हैं उन कार्यों को वे बड़ी निष्ठा से करते हैं जिससे नेतृत्व का विकास होता है।

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि मूल्यों पर हमारा जीवन आधारित है। वास्तव में आचरणों से मूल्यों का बोध होता है। मूल्यों के ज्ञान से मात्र मीमांसा होती है। मूल्यों की यथार्थता तो हमारे संस्कारों तथा

आचरण में निहित होती है जिनसे हमें सन्तोष प्रापत होता है। वास्तव में मूल्यदर्शनों की महत्त्वपूर्ण समस्या है। जिनका सीधा सम्बन्ध दर्शन की तत्त्वमीमांसा से होता है। तत्त्वमीमांसा दर्शन की सैद्धान्तिक समस्या है, जबकि मूल्यमीमांसा उसकी व्यवहारिक समस्या।

सन्दर्भग्रन्थ -

1. शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार - डा. एस. एस. माथुर, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, सप्तम संस्करण, 2009
2. शिक्षा दर्शन के आयामिक सिद्धान्त - डा. एम. बी. सिंह, श्रीमती सुनीता सिंह, ए. पी. एच. पब्लिशिंग कारपोरेशन, अन्सारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली, 2010
3. शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार - डा. अरुण कुमार, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, 2014
4. अध्यापक शिक्षा - डा. जी. सी. भट्टाचार्य, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
5. अध्यापक शिक्षा - आर. ए. शर्मा, शिखा चतुर्वेदी, लाल बुक डिपो, मेरठ, 1993

मूल्य संकट एवं सम्भव सामाधान

सोनम जैन

आज के मनुष्य के आचरण में तेजी से आती हुई नैतिक गिरावट को देखकर प्रायः किसी न किसी रूप में सभी चिंतित हैं। देश के प्रायः सभी राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और शैक्षिक मंचो से जीवन मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में विचार किये जा रहे है, उपाय सुझाये जा रहे है और कार्यक्रम भी क्रियान्वित किये जा रहे है। वैयक्तिक आचार और सामाजिक व्यवहार के परिशोधन को लेकर काफी साहित्य भी भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हुआ है। किन्तु यह कोई नई चिन्ता नहीं है। हमारे धर्म सूत्र, स्मृतियाँ और धर्म निबन्ध ग्रन्थ इस बात के प्रमाण है कि समय समय पर इन साहित्यों के द्वारा ही विद्यार्थी, गृहस्थ, वृद्धजन, व्यापारी शासक और अध्यापक वर्ग को मर्यादा में बांधकर रखने का प्रयत्न किया जाता रहा है। प्राचीन काल में इन नियमों को श्रद्धा और विश्वास से कुछ इस प्रकार गुम्फित किया जाता था कि कोई भी सरलता उसका उल्लंघन करने का साहस नहीं कर पाता था और यदि कोई करता भी तो उसे तब तक के लिए समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था!, जब तक वह शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित प्रायश्चित नहीं कर लेता। फलतः राज्यों की सीमाएँ घटती बढ़ती रही, राज्य विभक्त और संयुक्त होते गये, शासक वंश बदलते गये, नये धर्म और सम्प्रदायों का जन्म होता रहा, विरोधी मत और सिद्धान्त उदित और अस्त होते रहे पर नैतिक मूल्य जो जैसे थे वैसे ही बने रहे, उन सब परिर्वतनों से अप्रभावित और निष्कम्प। ये वे ही आचार और नैतिक मान्यताएँ थीं जिन्होंने राजनैतिक उथल-पुथल और विदेशी आक्रमणों द्वारा राजनीतिक शक्ति के अधिग्रहण के बावजूद लेह-लद्दाख से लेकर रामेश्वरम् और द्वारका से लेकर कामाख्या तक भारतीय जनों को!

एकसूत्रता से आबद्ध बनाये रखा। इतना ही नहीं, उन्होंने विदेशी, विध र्मी विजयी आक्रान्ताओं तक की जीवन और शासन-प्रणाली को बहुत दूर तक अपने साँचे में ढाल लिया और अन्य किन्ही वातों में अंतर रहा हो, पर जीवन मूल्यों में टकराहट या अवमूल्यन की स्थिति नहीं पैदा हुई।

आज देश राजनैतिक दृष्टि से स्वतन्त्र सुगठित और एकसूत्रबद्ध है। धर्मों और संप्रदायों का बाहुल्य है किन्तु उनके बीच कोई ऐसी टकराहट नहीं है जिसका प्रभाव किसी की नैतिक आस्थाओं पर पड़ सके। उलटे सबके पास एक-दूसरे से काफी कुछ मिलते-जुलते जीवन मूल्य और नैतिक मूल्य है। जीवन को अनुशासित और नियंत्रित करने की जितनीशक्ति शासन के पास आज है, उतनी भारत के किसी शासक के पास कभी नहीं थी। अपने मानव मूल्यों और आचार-संहिता को अखंड़ित और अविघटित बनाये रखने के लिए असीम शक्ति राज्य के हाथ में है, फिर भी कहा जाता है कि हमारा नैतिक अवमूल्यन हो रहा है, हमारी आस्थाएँ विखंड़ित हो रही है, सामाजिक विघटन हो रहा है और परिवार छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। ऐसा क्यों?

इसके अनेक कारण हैं। प्रथम तो यह कि अंग्रेजों से पूर्व भारत पर जितने आक्रमण हुए थे, वे केवल राजनैतिक थे और उस समय पर राजनीति सामान्य जनता को केवल बाहर से छूती थी। अंग्रेजो का आक्रमण केवल राजनीतिक नही, संस्कृतिक भी था। दूसरे स्वराज्य के बाद आवागमन में बहुत मुक्तता आ गई जिससे भौगोलिक सीमाएँ शिथिलप्राय हो गई। ऐसे समय में जो राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से समृद्ध थे, वे औरों पर छाते गये। आर्थिक दृष्टि से कमजोर राष्ट्रों में खुले तौर पर विदेशी माल आयात होने लगा। अत्यंत विकसित राष्ट्र सहायता के रूप में दुर्बल राष्ट्रो को न केवल धन, अपितु खाद्य, वैज्ञानिक सामग्री और मशीने भी देने लगे। उधर लंबी छुट्टी के बाद जैसे सैनिक आराम का जीवन बिताने की ओर उन्मुख होता है वैसे ही भारत भी योग से भोग की ओर आकृष्ट हुआ। भारत ने अपना राजनीतिक ढाँचा ही नहीं,

अर्थनीति, शिक्षा प्रणाली, विकास प्रक्रिया और जीवन शैली सब कुछ पश्चिमी राष्ट्रो से ग्रहण की। फलतः यूरोप और अमेरिका भाषा, साहित्य, वेशभूषा, खान-पान और रहन-सहन सभी कुछ हमारे आरध्य बन गये है। उपर से दरिद्र और अनाकर्षक दिखने वाली भारतीय सभ्यता और संस्कृति ने वस्तुवादी देशों के सामने घुटने टेक दिये। जो काम पच्चीस सौ वर्षो के विदेशी आयुध-आक्रमण नहीं कर पाये, उसे तीस-चालीस वर्षो के अंग्रेजो की मैत्री ने कर दिया। फिर भी आज भारतीय प्रगति शत प्रतिशत अमरीकी संपन्नता और चिन्तन का पर्याय नहीं बन पाई है यह भी चिन्तन का विषय है। कोई भी संस्कृति या जीवन प्रणाली स्वयं में पूर्ण या सर्वथा दोषहीन नहीं होती है। हर संस्कृति अच्छे बुरे घटकों का मिश्रण होती है फिर भी होता यह है कि देश अपनी संस्कृति के सर्वोत्कष्ट अंगों को अंगों को छोड़कर बाहरी संस्कृति के दुर्बलतम अंगों को ही ग्रहण करता है क्योकि संस्कृति कोई भी हो उदात्त घटक तप और संयम की मांग करते है जिनका प्रभाव ही तो जन मानस विशिष्ट गुण होता है। इसलिए भारत ने विदेशो से कुछ अच्छी बातों के साथ जिन आपात रमणीय बातों का आयात किया है, वे है- अतीत पर अनास्था, अपने आदर्शो और जीवन प्रणाली के प्रति तुच्छता का भाव, भौतिक समृद्धि के प्रति ललक-भरी दृष्टि, वर्जनाहीन समाज के प्रति आदर, अद्यैर्य, असहनशीलता और असंयम युक्त भोगवृत्ति। आज हम सभी विचारक बन मानवीय मूल्यों की खोज में विभिन्न सम्मेलनों का आयोजन करते है लेकिन हमें नहीं भूलना चाहिए की भारत के नैतिक अवमूल्यन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमारा भी हाथ है।

तब क्या किया जाये? जीवन मूल्यों का ज्ञान और उसका औपचारिक शिक्षण यद्यपि महत्वपूर्ण है, किन्तु क्या मात्र उदात्त जीवन की संरचना के लिए पर्याप्त है? आदर्शों और मूल्यों का सहज बोध सामान्य नागरिक को होता है। काफी परिश्रम और व्यय के बाद शोध संस्थान जिस निष्कर्ष पर पहुचे हैं, वें युगों युगों से मानव को ज्ञात रहे है। मुख्य समस्या तो उनके क्रियान्वयन की, उन्हे व्यवहार में उतारने की

है। समाज और शिक्षा सब उसी से जुड़े है। भारतीय शिक्षण पद्धति में कभी भी किसी काल में नैतिक शिक्षा या मूल्य शिक्षा पाठ्यक्रम का अंग नहीं रही। लेकिन आज हमे पग-पग पर मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता महसूस होती है। हमारे प्राचीन मूल्यों में पूर्णतः विघटित हो चुके हैं और कुछ बड़ी तीव्र गति से विघटित हो रहे हैं, किन्तु नये मूल्य अभी प्रतिष्ठापित नहीं हो पाये है जो आज के माहौल को देखते हुए जरूरी महसूस होते है। इसलिए यहाँ कुछ समाधान प्रस्तुत किये जा रहे है:–

- मूल्य संकट के सामाधान हेतु जहाँ मूल्यपरक शिक्षा जरूरी है वही मूल्यपरक शिक्षा के सफल क्रियान्वयन के लिए वर्तमान पाठ्यक्रम में परिवर्तन संशोधन आवश्यक है। कोर पाठ्यचर्या अविलम्ब लागू की जानी चाहिए हमारी संस्कृति परम्परा, सामाजिक संरचना, समाजवाद, धर्म निरपेक्षता, सर्वधर्म सम्भाव, अस्पृश्यता निवारण, पर्यावरण संरक्षण, विश्व शान्ति, राष्ट्रीय एकता आदि पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।
- पाठ्यपुस्तको में इस प्रकार की सामग्री समाविष्ट हो जिससे छात्रों में सत्यपालन, सदाचार, प्रेम शान्ति अहिंसा आदि मानव मूल्यों का आभ्यन्तरीकरण सरलता पूर्वक हो सके। इन पाठ्यपुस्तको की भाषा शैली विद्यार्थियों के वय-क्रम के अनुरूप हो।
- मूल्यपरक शिक्षा की संकल्पना से शिक्षकों के अवगत कराने एवं इन ओर उनकी रूची जाग्रत करने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण का व्यापक कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए। इस हेतु संसाधन व्यक्तियों (resource persons) का एक दल तैयार किया जाय जो कि स्तर पर यथा सुविधा ग्रीष्मावकाश में अथवा अन्य लधु अवकाश में मूल्यपरक शिक्षण सम्बन्धी कार्यशालाओं (workshops) का आयोजन करके इस उद्देश्य को पूर्ण कर सके।
- मूल्यपरक शिक्षण से सम्बद्ध मानक पुस्तके, पुस्तिकाएँ तथा अन्य सामग्री प्रत्येक विद्यालय और महाविद्यालय में पर्याप्त मात्रा में

उपलब्ध कराई जायें।

- विविध पथों के महापुरूषों की जीवन गाथा और उनके संदेशो को शैक्षिक क्रिया-कलापों में उचित स्थान प्रदान किया जाय।
- भाषा शिक्षण के माध्यम से अनेक जीवन-मूल्यों को सरलतापूर्वक आत्मसात् कराया जा सकता है। इसके लिए पारम्परिक शिक्षण पद्धति से हाटकर भाषा में कुछ नये आयाम जोड़ने होंगे। इसमें कथा-कथन, समूह गायन, नाटकीकरण, सस्वर काव्य-पाठ, जीवनी, वीर कथाएँ आदि का अनुपातिक महत्व हो। छात्रों से एक स्मृति प्रस्तिका तैयार करवाई जाये जिसमें वे सालभर में पाठ्यपुस्तकों से अथवा अमान्य पुस्तक-पुस्तिकाओं से अच्छे उद्धरण, सूक्तियाँ, कहावत, प्रेरक प्रसंग, लघुकथा आदि का संकलन करें। इस पुस्तिका की प्रगति की जाचँ समय-समय पर की जाय ताकि छात्रों द्वारा पारस्परिक अनुकरण की प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया जाए। परिश्रम, गुणवत्त एवं बोध प्रश्नों के आधार पर इस पुस्तिका पर कुछ अंक भी दिये जा सकते हैं।
- विद्यालय और महाविद्यालय की दीवारों पर उपयुक्त स्थानों पर महापुरूषों के आदर्श कथन लिखे जाने चाहिए। जिला स्तर पर सूक्ति-फलक आदि का निर्माण करवाकर उसकी आपूर्ति प्रत्येक विद्यालय में की जा सकती है। ऐसी सामग्री के समुचित एवं सुगढ़ प्रदर्शन के लिए सम्बद्ध विभाग द्वारा आवश्यक निर्देश दिए जाय।
- महापुरूषों के जन्म दिवसो को सुनियोजित ढंग से मनाया जाय ताकि विद्यार्थी उनके जीवन और कार्यो से सरलतापूर्वक परिचित हो सके और उनके विविध नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात् करने हेतु प्रेरित हो।
- हर विद्यालय में अभिभावक दिवस मनाया जाना चाहिए ताकि उनका सहयोग इस हेतु प्राप्त किया जा सके। अन्यान्य तरीकों से भी उनका सक्रिय योगदान प्राप्त जा सकता है।
- भाषण, सम्भाषण, वाद-विवाद, एकांकी, कवि-सम्मेलन आदि समय

पर आयोजित किये जाए, जिनके विषय विविध जीवन मूल्यो से प्रभावित हो, जिनका सुप्रभाव पड़ सके।

- मूल्यों को आत्मसात् करने के लिए मूल्य-दर्पण-प्रविधि (value sheet method) का उपयोग व्यावहारिक रूप में किया जा सकता है।
- पाठ्यसहगामी क्रिया-कलापों में कविता, कहानी, निबन्ध, एकांकी आदि साहित्यिक प्रतियोगीताओं का आयोजन किया जाय जिनसे विद्यार्थियों की रचनात्मक शक्ति का विकास हो सके। चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत आदि ललित कलाओं में भी प्रतियोगीताओं का आयोजन कर छात्रों कर आयोजन कर छात्रों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। शिक्षा के संलक्ष्यों को उस समय तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि हम विद्यार्थियों की सृजन क्षमता को जाग्रत कर उसे सही दिशा नहीं दे देते।
- शिक्षको को अपने कार्य के प्रति निष्ठावान एवं ईमानदार होना चाहिए। जब तक नहीं होता, तब तक मूल्यपरक शिक्षा का कार्यक्रम पूर्णतः सफल नहीं हो सकता। शिक्षको द्वारा अपने आचरण एवं कार्यों से आस्था, निष्ठा, कठोर, परिश्रम, सत्यपालन, आज्ञापालन, समयपालन, प्रेम, सदाचरण आदि मूल्यों का आदर्श छात्रों के समक्ष रखना चाहिए तभी विद्यालयों पर उसका सुप्रभाव पड़ेगा। अतः यह बहुत आवश्यक हो गया है कि शिक्षकों की नियुक्ति के समय उनकी जाच-परख विविध मनोवैज्ञानिक तरीकों द्वारा ठीक तरह की जाय।
- मूल्यो के आत्मसातीकरण के लिए आत्म-विवेचन प्रविधि (self evalution Technique) अत्यंत सरल किन्तु विशेष महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। इस प्रविधि को अपनाने में न विशेष धन की आवश्यकता होती है और न ही समय की। यह प्रविधि उत्तम-मध्यम सभी प्रकार के विद्यालयों में सरलतापूर्वक अपनाई जा सकती है। राष्ट्र के कर्णधारों की यह अपेक्षा है कि हमारी बहुआयामी संस्कृति से

सम्पन्न समाज में शिक्षा ऐसे वैशविक एवं शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा करें जो लोगों को एकता के सूत्र में बांध सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- राजबली पाण्डेय, भारतीय नीति का विकास, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
- उर्वशी सूरती, नैतिक शिक्षा और बाल विकास, प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
- हरिदत्त शर्मा, अनुशासन और नैतिकता, ज्ञानदीप प्रकाशन, दिल्ली।
- कृष्णचन्द्र, नैतिक जीवन का सिद्धान्त, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।
- नत्थूलाल गुप्त, मानव मूल्यों की खोज, विश्वभारती प्रकाशन, सीताबर्डी, नागपुर।

प्रतिवेदन और पत्रिकाएँ

- शिक्षा की चुनौती: नीति संबंधी प्ररिप्रेक्ष्य, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- साहित्य परिचय, बाल समस्य विशेषांक, अगस्त-अक्टूबर 1980 (संयुक्तांक), विनोद पुस्तक मुदिर आगरा।

व्यावसायिक विकास एवं आचार में मूल्य मीमांसा

अशोक कुमार
शिक्षाचार्य छात्र

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मानव के जीवन में मूल्यों का अत्यन्त महत्व है। उसके जीवन का प्रत्येक कार्य किसी न किसी मूल्य से सम्बन्धित होता है। क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः वह अपनी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति क्रय-विक्रय के माध्यम से समाज में करता है। वह कुछ बेचता है एवं उसके बदले कुछ लेता है धन के रूप में या वस्तु के रूप में, जिसके माध्यम से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। एक व्यापारी बाज़ार से थोक भाव में खरीदी हुई वस्तुओं को लूटकर बिक्री के रूप में उपभोक्ताओं को देता है एवं कुछ लाभांश वह ले लेता है, जिससे उसकी जीविका चलती है। यदि वह स्वयं उत्पादक हो तो वह थोक व्यापारियों को अपना माल बेचेगा। आफिस में काम करने वाले क्लर्क, कारखानों या मजदूरी करने वाले मजदूर विद्यालय में पढ़ाने वाले अध्यापक, डॉक्टर, इंजीनियर सभी कुछ न कुछ बेचते हैं–चाहे वह शारीरिक श्रम के रूप में हो मानसिक श्रम के रूप में उसकी बिक्री से जो उनको मूल्य धन की प्राप्ति होती है उससे वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज में प्रत्येक वस्तु का कुछ मूल्य है। बेचने वाले में यह योग्यता होनी चाहिए कि वह अपनी वस्तु के उप्युक्त ग्राहक को दूढ़कर उसे उचित मूल्य पर माल बेच सके। उसी प्रकार समाज में जिस व्यक्ति के पास धन है वह अनेक वस्तुएँ खरीद सकता है। यदि उसमें सामर्थ्य है तो वह वांछित वस्तु का उपयुक्त

मूल्य दे सके, लेकिन कभी-कभी उपयुक्त मूल्य देने पर भी उसे वांछित वस्तु प्राप्त नहीं हो पाती। उसका एकमात्र कारण यही होता है कि वह उपयुक्त विक्रेता ढूंढ नहीं पाता।

इस विवेचन से मात्र इतना आशय है कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज में रहते हुए क्रय-विक्रय की इस क्रिया को करना पड़ता है। हाँ इतना अवश्य है कि समय तथा स्तरानुकूल ये प्रक्रियाएँ अपना स्वरूप खोज लेती हैं। अस्तु हम कह सकते हैं कि समाज में मानव-मानव की भावनाओं एवं उसकी क्रियाओं का भी मूल्य होता है। एक गीतकार को चाहे कितना ही धन क्यों न दिया जाए कि तुम पशुओं के बीच में बैठकर गीत सुनाओं तो परिणाम क्या होगा? हो सकता है कि वह अपनी आर्थिक परिस्थितियों से पीड़ित होकर धन के लालच में यह कार्य कर दे किन्तु, क्या उसका अन्तरतम विद्रोह नहीं करेगा? इसी प्रकार से यदि शिक्षक अपने विद्यार्थियों से आदर नहीं पाता तो उसका भी शिक्षा कार्य करने से जी उचट जाता है।

आज हम इक्कीसवीं सदी में है। आज के युग को हम आर्थिक युग या भौतिक युग कहते हैं। आज आध्यात्मिकता, नैतिकता, मानवता, सामाजिकता आदि गुणों का क्षरण भौतिकवादी संस्कृति में तेज़ी से हो रहा है। आज विज्ञान इतना आगे जा चुका है कि समाज में मानव जीवन को ऐश्वर्यशाली बनाने हेतु तरह-तरह 'की नित नवीन तकनीकियां इजाद हो रही हैं। परन्तु इनका लाभ उठाने हेतु सर्वप्रथम आवश्यक है धन। अतः आज हर व्यक्ति अपने जीवन को बेहतर बनाने हेतु धन कमाने में लगा है। लोगों को सेवाएं चाहिए। अतः व्यवसायीकरण तेजी से हो रहा है। इस बाज़ारवादी संस्कृति में लोग ज़्यादा से ज़्यादा लाभ कमाना चाह रहा है। ज़्यादा से ज़्यादा लोगों ने लाभ कमाने हेतु आज समाज में प्रतिस्पर्धा इतनी अधिक हो गई है कि छोटे लोगों की व्यवसाय समाप्त हो रहा है, आज के समय में बाज़ारों का स्थान मॉलों (Shoping Complexs) ने लिया है। लोग भी मॉल से वस्तुएं खरीदने में अपनी शान समझते हैं, भले ही वह वस्तु सड़क के किनारे फूटकर विक्रेताओं के पास आधे मूल्य में मिल रही हो। आज के समय में वस्तुएँ नहीं ब्रांड बिकते है। समाज में लोग स्वयं

व्यावसायिक विकास एवं आचार में मूल्य मीमांसा

अशोक कुमार
शिक्षाचार्य छात्र

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मानव के जीवन में मूल्यों का अत्यन्त महत्व है। उसके जीवन का प्रत्येक कार्य किसी न किसी मूल्य से सम्बन्धित होता है। क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः वह अपनी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति क्रय-विक्रय के माध्यम से समाज में करता है। वह कुछ बेचता है एवं उसके बदले कुछ लेता है धन के रूप में या वस्तु के रूप में, जिसके माध्यम से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। एक व्यापारी बाज़ार से थोक भाव में खरीदी हुई वस्तुओं को लूटकर बिक्री के रूप में उपभोक्ताओं को देता है एवं कुछ लाभांश वह ले लेता है, जिससे उसकी जीविका चलती है। यदि वह स्वयं उत्पादक हो तो वह थोक व्यापारियों को अपना माल बेचेगा। आफिस में काम करने वाले क्लर्क, कारखानों या मजदूरी करने वाले मजदूर विद्यालय में पढ़ाने वाले अध्यापक, डॉक्टर, इंजीनियर सभी कुछ न कुछ बेचते हैं-चाहे वह शारीरिक श्रम के रूप में हो मानसिक श्रम के रूप में उसकी बिक्री से जो उनको मूल्य धन की प्राप्ति होती है उससे वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज में प्रत्येक वस्तु का कुछ मूल्य है। बेचने वाले में यह योग्यता होनी चाहिए कि वह अपनी वस्तु के उप्युक्त ग्राहक को ढूढ़कर उसे उचित मूल्य पर माल बेच सके। उसी प्रकार समाज में जिस व्यक्ति के पास धन है वह अनेक वस्तुएँ खरीद सकता है। यदि उसमें सामर्थ्य है तो वह वांछित वस्तु का उपयुक्त

मूल्य दे सके, लेकिन कभी-कभी उपयुक्त मूल्य देने पर भी उसे वांछित वस्तु प्राप्त नहीं हो पाती। उसका एकमात्र कारण यही होता है कि वह उपयुक्त विक्रेता ढूंढ नहीं पाता।

इस विवेचन से मात्र इतना आशय है कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज में रहते हुए क्रय-विक्रय की इस क्रिया को करना पड़ता है। हाँ इतना अवश्य है कि समय तथा स्तरानुकूल ये प्रक्रियाएँ अपना स्वरूप खोज लेती हैं। अस्तु हम कह सकते हैं कि समाज में मानव-मानव की भावनाओं एवं उसकी क्रियाओं का भी मूल्य होता है। एक गीतकार को चाहे कितना ही धन क्यों न दिया जाए कि तुम पशुओं के बीच में बैठकर गीत सुनाओं तो परिणाम क्या होगा? हो सकता है कि वह अपनी आर्थिक परिस्थितियों से पीड़ित होकर धन के लालच में यह कार्य कर दे किन्तु, क्या उसका अन्तरतम विद्रोह नहीं करेगा? इसी प्रकार से यदि शिक्षक अपने विद्यार्थियों से आदर नहीं पाता तो उसका भी शिक्षा कार्य करने से जी उचट जाता है।

आज हम इक्कीसवीं सदी में है। आज के युग को हम आर्थिक युग या भौतिक युग कहते हैं। आज आध्यात्मिकता, नैतिकता, मानवता, सामाजिकता आदि गुणों का क्षरण भौतिकवादी संस्कृति में तेज़ी से हो रहा है। आज विज्ञान इतना आगे जा चुका है कि समाज में मानव जीवन को ऐश्वर्यशाली बनाने हेतु तरह-तरह 'की नित नवीन तकनीकियां इजाद हो रही हैं। परन्तु इनका लाभ उठाने हेतु सर्वप्रथम आवश्यक है धन। अतः आज हर व्यक्ति अपने जीवन को बेहतर बनाने हेतु धन कमाने में लगा है। लोगों को सेवाएं चाहिए। अतः व्यवसायीकरण तेजी से हो रहा है। इस बाज़ारवादी संस्कृति में लोग ज़्यादा से ज़्यादा लाभ कमाना चाह रहा है। ज़्यादा से ज़्यादा लोगों ने लाभ कमाने हेतु आज समाज में प्रतिस्पर्धा इतनी अधिक हो गई है कि छोटे लोगों की व्यवसाय समाप्त हो रहा है, आज के समय में बाज़ारों का स्थान मॉलों (Shoping Complexs) ने लिया है। लोग भी मॉल से वस्तुएं खरीदने में अपनी शान समझते हैं, भले ही वह वस्तु सड़क के किनारे फूटकर विक्रेताओं के पास आधे मूल्य में मिल रही हो। आज के समय में वस्तुएँ नहीं ब्रांड बिकते है। समाज में लोग स्वयं

को दूसरों से अधिक सम्पन्न दिखाने की होड़ लगाए हुए हैं। आलम यह है कि आज के समय में लोग अपने दुःखों से उतना दुःखी नहीं हैं जितना की पड़ोसी के सुख से। आज के समय में व्यवसायीकरण हर क्षेत्र में हावी हो रहा है, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मूल्यों पर पड़ता है।

शिक्षा का भी व्यवसायीकरण तेजी से हो रहा है। लोग आज विद्यालयों के माध्यम से अधिकाधिक लाभ कमाने का प्रयास कर रहे हैं। कोई यह नहीं सोचता कि विद्यालयों में छात्रों को कैसी शिक्षा मिल रही है, बस यह देखते हैं कि हमारे छात्र अधिक से अधिक जानकारी हासिल कर सकें। छात्रों का व्यवहारिक ज्ञान निरन्तर घटता जा रहा है, नैतिक पतन हो रहा है क्योंकि शिक्षक उन्हें ऐसा ज्ञान दे रहा है, जिससे उनकी सूचनाओं में वृद्धि हो, शिक्षक गुरु का रोल नहीं निभाता सिर्फ अपनी ड्यूटी (duty) करता है जैसे कि छात्र मेरे विषय में फेल न हो, मेरा पाठ्यक्रम समय से पूरा हो आदि। छात्रों को विद्यालय में नैतिक ज्ञान बहुत कम मिलता है, जिससे मूल्यों का क्षरण हो रहा है। छात्र भी यह सोचता है कि हमने शिक्षा पाने हेतु मूल्य चुकाया है, शिक्षक पढ़ाकर हमपे कोई एहसान नहीं कर रहा है। अतः शिक्षक की नज़र में छात्र आज शिष्य न होकर केवल student होकर रह गया है और छात्रों की नज़र में शिक्षक, गुरु न होकर केवल Teacher रह गया है।

व्यावसायीकरण के कारण आज ग्रामीण संस्कृति का भी क्षरण हो रहा है, शहरीकरण का विस्तार हो रहा है। ग्रामीण संस्कृति में जहाँ सही अर्थों में बच्चों को व्यवहारिक और नैतिक ज्ञान प्राप्त होता था, लोग धनार्जन हेतु शहरों का रूख अख्तियार कर रहे हैं। संयुक्त परिवार जो भारतीय संस्कृति के मेरूदण्ड हैं, वे टूट रहे हैं, एकाकी परिवारों में वृद्धि हो रही है, बच्चे जो गाँवों में दादा-दादी से कहानियों के माध्यम से व्यवहारिक ज्ञान और नैतिक ज्ञान प्राप्त करते थे। वह सब उनसे छूटता जा रहा है। व्यवसायीकरण से जहाँ समाज में एक ओर उन्नति को प्राप्त करता जा रहा है वहीं दूसरी ओर नैतिकता, सामाजिकता, मानवता आदि की अवनति हो रही है। आज लोगों को वह ज्ञान नहीं चाहिए जो स्वयं का

और समाज का कल्याण हो आज ऐसा ज्ञान चाहिए जिससे उन्हें बेहतर नौकरी दिला सके। आज समाज में सा विद्या या विमुक्त्ये के स्थान पर सा विद्यया या नियुक्त्ये हो गया है। व्यवसायीकरण केवल यहीं तक सीमित नहीं है। आज व्यवसाय, वृद्धाश्रम, चाइल्ड केयर सेन्टर और बच्चों को जन्म देने के लिए किराए की कोख तक पहुँच गया है। सोचो उन दूध-पीते बच्चों के बारे में जिनकी माँ का प्यार-दुलार चाहिए पर माँ के पास समय नहीं है बच्चा बेबी सेण्टर पर पल रहा है। बच्चा जब थोड़ा और बड़ा हुआ तो वह बोडिंग स्कूल पहुँच जाता है। जिन बच्चों की उम्र दादा-दादी के माध्यम से नैतिक शिक्षा प्राप्त करने की थी, उनके मस्तिष्क में नयी-नयी सूचनाएँ डाली जा रही हैं। ऐसे बच्चों को रिश्तों की अहमियत कैसे समझ में आएगी।

इस प्रकार से आज हम व्यावसायिक बुलन्दियों पर पहुँच रहे हैं पर किसी न किसी क्षेत्र में पिछड़ते भी जा रहे हैं। व्यावसायीकरण तो हो क्योंकि उसके बिना हम उन्नति नहीं कर सकते पर उसका क्षेत्र निर्धारित करने की जरूरत है। हमें आने वाली पीढ़ी की शिक्षा के विषय में सोचने की जरूरत है। इसी व्यावसायीकरण का नतीजा है कि आज के समय में वृद्धाश्रमों की संख्या में वृद्धि हो रही है। क्योंकि जब बच्चों को माता-पिता की ज़रूरत थी दादा-दादी, परिवार, पड़ोस की ज़रूरत थी तो वह बेबी सेन्टर या बोंडिग स्कूलों में था। अतः आज उन्हें यह महसूस ही नहीं होता कि माँ-बाप उनकी जिम्मेदारी हैं। अतः आवश्यकता है बच्चों को मूल्य परक शिक्षा देने की। समाज के मनीषी यद्यपि मूल्य शिक्षा का मूल्य बहुत पहले ही समझ गए थे। तभी स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ही इस दिशा में प्रयास शुरू हो गया था। जरूरत है उसे प्रभावी रूप से लागू करने की। क्योंकि कहीं न कहीं मूल्य परक शिक्षा प्रदान करने में अध्यापकों से भी कमी रह जाती है। अतः समाज के निर्माता शिक्षको हेतु सुझाव दिए जा रहे हैं, जिन्हें तीन मुख्य भागों में बांटा गया है–

- विद्यार्थियों के प्रति कर्त्तव्य
- समाज के प्रति दायित्व

- व्यवसाय के प्रति दायित्व

विद्यार्थियों के प्रति कर्त्तव्य

1. अध्यापक का अपने विद्यार्थियों के प्रति व्यवहार इस प्रकार का हो कि विद्यार्थी अपनी क्षमता एवं शक्ति का पूर्ण विकास कर सके।
2. अध्यापक को अपना नैतिक दायित्व समझना चाहिए।
3. विद्यार्थियों के सम्बन्ध में वह समस्त जानकारी रखे, ताकि विद्यार्थी के हितों की रक्षा करने में उसे आसानी हो।
4. प्राइवेट ट्यूशन आदि शासकीय अनुमति प्राप्त करके ही करे, वह भी छात्रों की वास्तविक मदद करने के लिए न कि धन के वशीभूत होकर।
5. विद्यार्थियों में आत्म विश्वास जागृत करें।
6. अध्यापक छात्रों के साथ पुत्र तूल्य व्यवहार करे।
7. अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों से महापुरुषों की जीवनी तथा कहानियों के माध्यम से नैतिक शिक्षा दे।

समाज के प्रति दायित्व

- अध्यापक को देश-प्रेम एवं देशभक्त आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए।
- संस्था के प्रति अपने दायित्व पालन में बिना किसी बाधा अपने सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए।
- सामाजिक सुविधाओं का उपयोग नीतियों एवं वैधानिक प्रावधानों के रूप में करना चाहिए।
- अपने विषय ज्ञान की गम्भीरता एवं सदाचरण के द्वारा समाज

में ऐसे आदर्श प्रस्तुत करने चाहिए जो नयी पीढ़ी में मानवीय मूल्यों का विकास तथा प्रतिष्ठा में पुनः सहयोग प्रदान कर सके।

व्यवसाय के प्रति दायित्व

- सर्वप्रथम तो शिक्षक को अपने व्यवसाय में आस्था, निष्ठा, लगाव एवं लगन होनी चाहिए तभी वह विद्यार्थियों एवं समाज के प्रति अपने विविध दायित्वों को पूर्ण कर सकेगा।
- परंपरागत तथा साहित्य में उल्लिखित शिक्षकीय उच्च आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करने का प्रयत्न परिश्रम पूर्वक करना चाहिए।
- शिक्षा नीति के विविध प्रावधानों को स्वीकार एवं कार्यान्वित करने के लिए उत्तरदायित्वपूर्ण तरीके का आचरण एवं व्यवहार करे।
- अध्यापको को अपने अधिकारों के साथ कर्त्तव्यों तथा विभिन्न व्यवसायिक उत्तरदायित्वों के प्रति भी पूर्ण सजग एवं सक्रिय रहना चाहिए।

संदर्भ

1. मूल्य परक शिक्षा और समाज गुप्ता, नत्थु लाल
2. पाण्डेय, डॉ. रामशकल, भारतीय शिक्षा के विभिन्न आयाम, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
3. उपाध्याय, डॉ. प्रतिभा, भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियां, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. पाठक पी.डी. एवं त्यागी, गुरु सरनदास, शिक्षा के सिद्धान्त, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

वैश्विक एवं भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यों का विश्लेषण

सोनू शर्मा
शिक्षाचार्य

मूल्य क्या है?–मूल्य का सम्प्रत्यय हमारे दर्शनों से ही उद्भूत हुआ है। दर्शनों का प्रारम्भिक प्रश्न ही है कि यथार्थ क्या है? सत्य क्या है? मूल्य क्या है? मूल्य को समझने के लिए वास्तविकता और मूल्य के बीच के अन्तर को समझना होगा। अर्थात् क्या होना चाहिए और क्या है? का निर्धारण उदाहरण द्वारा समझ सकते है–जैसे सूर्यास्त लाल होता है। लेकिन हम कहेंगे कि सुर्यास्त बहुत सुन्दर है तो वह कथन मूल्य कथन हो जायेगा फिर सत्य असत्य की बात ही नहीं रहेगी। यह दृष्टिगत भेद से मूल्य होगा।

व्युत्पत्तिक दृष्टि से विचार करे तो मूल्य शब्द अंग्रेजी के Value शब्द का समानार्थी है जो लैटिन भाषा के Value से बना है और इसका अर्थ योग्यता या महत्व है। संस्कृत में ''मूल्य'' के लिए ''इष्ट'' शब्द है ''वह जो ईच्छित है'', अर्थात् जो कुछ भी इच्छाओं या आवश्यकताओं की संतुष्टि करें वह ''मूल्य'' कहा जायेगा। मूल्य एक प्रकार से इच्छा की संतुष्टि में है, जिसके द्वारा ईच्छाओं की संतुष्टि हो या जो इच्छाओं की संतुष्टि में साधन बन सके वह ''मूल्य'' है।

परिभाषा

पार्क के अनुसार–''वे वस्तुएं मूल्यवान हैं, जो इच्छित हैं।''

अतः इच्छित वस्तु स्थिति, विचार, आदर्श, लक्ष्य एवं दृष्टिकोण सभी का मूल्य मनुष्य के लिए होता है। मूल्यों को निर्णय (Judgement) तथा मानदण्ड (Standard) या मूल्यांकन (Appraisal or evaluation) के दृष्टिकोण से भी देखा जाता है।

स्टेनली के अनुसार–''मूल्यों का निर्माण मनुष्य की रूचि द्वारा होता है, अतः मूल्यों के अंतर्गत मनुष्य द्वारा इच्छित वस्तु की परख अथवा मूल्यांकन भी आता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य वस्तु स्थिति, विचार, आदर्श, लक्ष्य एवं दृष्टिकोणों को परख कर उनका मूल्यांकन कर अपने निर्णय का निर्माण करता है। (अच्छा-बुरा; सत्य-असत्य, सुन्दर-असुन्दर, उपयोगी-अनुपयोगी, ज्ञान-अज्ञान आदि) यह वही प्रक्रिया है जब मनुष्य अपने ''मूल्यों'' का निर्माण करता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्य–भारतीय ऋषि अथवा मनीषियों ने ''मूल्यों की व्याख्या'' मानव कल्याण की कामना से की है, सर्वे-भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत्।। अर्थात् सबके ''सुख'' की कामना भारतीय जीवन का आदर्श है। सहिष्णुता, शांति और विनय आदि मूल्यों की प्राप्ति कान, आँख आदि इन्द्रियों के अनुभव द्वारा ही संभव है।

मनुस्मृति में धर्म के दस गुणों का विवेचन है जो सार्वभौमिक या विश्वव्यापि नैतिकता के आधार है। यही ऐसे ''मूल्य'' है जिन्हें धारण कर मनुष्य एक धार्मिक व्यक्ति कहला सकता है–

''धृतिः क्षमा-दमोस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः

धीर्विद्याः सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्''

ज्ञान प्राप्ति के लिए धृतिः (धैर्य) क्षमा, दम (मन का नियन्त्रण) आदि ''मूल्य'' सबसे महत्वपूर्ण साधन है। इनके अतिरिक्त अस्तेय (चोरी न करना) शोच, (आंतरिक व ब्राह्य शुद्धता) इन्द्रिय निग्रह, धी (बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध आदि ''मूल्य'' है जो उच्च मानवीय मूल्य हैं।

भारतीय पक्ष में मूल्य-शब्द–''शील'' के पर्याय के रूप में भी ग्रहण किया जाता है। श्री भतृहरि ने शील को सर्वश्रेष्ठ आभूषण स्वीकार किया है।

''सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम्''।।63 नीतिशतकम्

ऐश्वर्य का आभूषण सज्जनता, शूरवीरता का वाक्संयम, ज्ञान का शांति भाव, शास्त्र का विनय, धन का पात्र दान, तप का भूषण क्रोध का न होना, सामर्थ्यवान का क्षमा और धर्म का भूषण निष्कापटय है। परन्तु सुशील सब मनुष्यों के लिए समस्त आभरणों का मूलकारण और उत्मोत्तम आभूषण है।

इसी तरह धर्म, सत्य, सदाचार आदि को भारतीय मूल्यों में समाहित किया जाता है।

1. यतोऽभ्युदयनिश्श्रेयससिद्धिः सः धर्मः। वैशेषिक सूत्र 1/1/21

2. श्रुति-स्मृतिविहितो धर्मः तद्लाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्। वासिष्ठ धर्म सूत्र, 1/4/5

3. श्रुतिस्मृतिपुराणेषु प्रोक्तो धर्मः सनातनः।

वर्णाश्रमस्वरूपेण निषेत्यः सर्वदा जनैः।। स्कन्दपुराण, ब्राह्मखड, 3/11/17

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मूल्य–वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अगर हम मूल्यों में विचार करे तो हमें दो प्रकार के देश नजर आते है। 1. विकसित देश 2. विकासशील देश। विकसित देश अपनी प्रभुता सम्पन्नता एवं विस्तारवादी नीति के कारण मानवीय मूल्यों को दरकिनार कर देते है। विकसित देशों को स्वहित दिखता है। U.S.A. संयुक्त राज्य अमेरिका अपने विस्तारवादी नीति के कारण-जापान के दो सम्पन्न राज्यों-हिरोसिमा एवं नागासाकी को परमाणु बम से तहस-नहस कर दिया। जिसके कारण आज भी वहाँ

अपंगता की स्थिति बनी हुई है। उसने (अमेरिका) किसी भी प्रकार के मानव मूल्य को स्मरित नहीं किया तथा वह भूल गया कि मानवता ही विकास का मूल है। हम सभी जानते है कि उसी तरह द्वितीय विश्व-युद्ध, विश्व के सम्प्रभुत्ववादी देशों के बीच लड़े गये, जिससे सांस्कृतिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सामाजिक मूल्यों का घोर पतन हुआ। जिसके फलस्वरूप सबसे अधिक क्रूरता का शिकार नारी जाति को झेलना पड़ा। हम जानते है कि विश्व में नारी मूल्यों का समादर (सम्मान) वैश्विक राष्ट्रों ने तब देना शुरू किया जब नारी ने स्वयं अपने हक एवं समानता की लड़ाई लडनी शुरू की जो देश जिस देश पर आक्रमण करता है तो उसकी सांस्कृतिक विरासत को ही लूटता है। लूटता है। वह धर्म एवं आध्यात्म को पीछे छोड़ देता है।

ऐसे ही जर्मनी, फ्रांस, रूस आदि देशों ने किया है। उनके लिए ''अहिंसा परमो धर्मः'' परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्'' का कोई महत्व नहीं होता है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मूल्यों की आवश्यकता–जो मूल्य सम्पूर्ण विश्व की प्रगति एवं भलाई से सम्बन्धित होते हैं, वे वैश्विक मूल्य कहलाते है। इन मूल्यों का किसी जाति समूह या देश-विदेश से सम्बन्ध होता है, इनमें प्राणिमात्र के लिए स्वतन्त्रता न्याय एवं अवसर की समानता सभी प्रकार की दासताओं का उन्मूलन आदि मूल्यों का समावेश किया जा सकता है। ''अतः हमें विश्व बन्धुत्व की भावना रखनी चाहिए। ''सर्वे-भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःख भाग भवेत। अर्थात् सबके सुख की कामना करनी चाहिए। अहिंसा परमो धर्मः'' एवं परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्'' को महत्व देना चाहिए।

संदर्भ

1. मूल्य शिक्षा, चतुर्वेदी रश्मि, ए.पी.एच, पब्लिशिंग कारपारेशन, अनसारी रोड़ दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

2. मनुस्मृतिः, आचार्यः कौण्डिन्नयायनः शिवराज, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्कार-2010

3. भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ, उपाध्याय प्रतिभा डॉ., शारदा पुस्तक भवन, पाँचवा संस्करण-2009,

4. भतृहरिः शतकत्रयम्, गोपीनाथ पी., राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली-110058, संस्करण-2010

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य मीमांसा

यासमीन अशरफ
शिक्षाचार्य छात्रा

गो हज़ारों साल से है इनसान का वजूद।

निगाह अब भी तरसती है, इनसान के लिए।।

इसी इंसानियत या मानवीय संवेदना के विकास, संवर्धन एवं अनुरक्षण को प्रोत्साहित करने के लिए आज के सम्प्रेषण एवं विज्ञान के क्षेत्रों में होने वाले प्रभावों से अभिभूत विश्व-समुदाय को मूल्य शिक्षा की आवश्यकता महसूस हुई है। मूल्य-मीमांसा की बात करें तो मीमांसा का तात्पर्य है विवेचना। अत: मीमांसा-दर्शन के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य हुआ ज्ञान-प्राप्ति की विवेचना की प्रक्रिया। शिक्षा की प्रक्रिया से व्यक्ति को अपने आप का ज्ञान होता है। अंग्रेजी में इसे "Process of know thyself" कहा गया है। मीमांसा दर्शन के अनुसार शिक्षा मनुष्य की वह प्रक्रिया है जो कर्त्तव्य, धर्म का पालन सिखाती है और जीवन को सुखी बनाती है।

मूल्य मीमांसा (Axiology)–मूल्य मीमांसा अर्थात् सद् जीवन। मूल्य मीमांसा का क्षेत्र शुभ-अशुभ, सुन्दर-असुन्दर, अच्छा-बुरा से सम्बन्धित है। मूल्य मीमांसा हमारी अनुशासन सम्बन्धी धारणाओं को प्रभावित करते हैं। विद्यालय-संगठन विद्यालय-व्यवस्था के नियम, बड़े-छोटे के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध, बराबरी वालों के बीच सम्बन्ध, अनुशासन के नियम, छात्रों के कर्त्तव्य एवं व्यवहार, अनुशासन की विधियाँ इत्यादि सभी विषय मूल्य-मीमांसा से सम्बद्ध है।

मूल्य परक शिक्षा की जितनी आवश्यकता आज महसूस की जा रही है उतनी पहले कभी नहीं थी, क्योंकि आज हम एक गहन संक्रान्ति काल (Transitional Period) से गुजर रहे हैं। हमारे प्राचीन परम्परागत मूल्यों में कुछ तो पूर्णत: विघटित हो चुके हैं और कुछ बड़ी तीव्र गति से विघटित हो रहे हैं, किन्तु नए मूल्य अभी प्रतिष्ठित नहीं हो पाए हैं। आज सदाचरण, सत्य, अहिंसा, प्रेम शान्ति जैसे शाश्वत परम्परागत मूल्यों (Traditional Values) की महती आवश्यकता है।

ये मूल्य न केवल व्यक्तिगत उत्थान के लिए अपितु सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रगति के लिए तथा शान्ति के लिए बहुत जरूरी है। हमारी प्राचीन एवं संस्कृति से परिपोषित एवं वैयक्तिक अस्मिता एवं विभिन्न सामाजिक संस्कृतियों एवं परिस्थितियों से नियंत्रित जीवन मूल्यों की पुन: प्रतिष्ठा में शिक्षण संस्थानों का अपना विशिष्ट योगदान होता रहा है। शिक्षण व्यवस्था हमारी सामाजिक व्यवस्था का अभिन्न अंग है। मूल्य पूर्णत: नष्ट नहीं हुए हैं, उनका अस्तित्व है, भले ही वे धूमिल अथवा विघटित अवस्था में हो। अत: अभिभावक, शिक्षक, शिक्षार्थी, प्रशासक तथा समाज के विभिन्न घटकों के सामूहिक प्रयत्न से वर्तमान स्थिति बहुत कुछ सुधारी जा सकती है।

नई शिक्षा नीति में मूल्यों के गिरते स्तर पर चिंता करते हुए मूल्य परक शिक्षा (Value Education) पर विशेष बल दिया गया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Tempor) लोकतांत्रिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को मन में बैठाना और विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना नई शिक्षा-नीति के लक्ष्यों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। नई शिक्षा नीति में सामान्य पाठ्यचर्या पर विशेष बल दिया गया है। जिसमें शिक्षण संस्थाओं में विविध प्रकार के अनुभवों एवं कार्यकलापों के माध्यम से शिक्षार्थियों के व्यवहारगत वांछित परिवर्तनों पर विशेष बल दिया गया है। अमेरिका में यह पाठ्यक्रम निम्नलिखित सांस्कृतिक चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रारम्भ किया गया था–

तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या की चुनौती।

औद्योगिक समाज की मनोवृत्तियों में परिवर्तन सम्बन्धी चुनौती।

पारिवारिक वातावरण की चुनौती।

बढ़ते हुए अपराधों तथा बाल अपराधों की चुनौती।

नैसर्गिक संसाधनों की बढ़ती कमी की चुनौती।

शिक्षार्थियों के दाखिले की चुनौती

मानव मूल्यों के संक्रमण (Transition of Value) की चुनौती

उपर्युक्त चुनौतियों के द्वारा शिक्षा में सक्रियता अभिभावकों में वांछित जागरूकता एवं सनाज में सहयोग एवं समूह भावना पैदा करके परिस्थितियों में वांछित सुधार लाया जा सकता है। इसलिए शिक्षा में गुणात्मक सुधार के संदर्भ में सामान्य पाठ्यचर्या का विशेष उल्लेख किया गया है। वैयक्तिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास के विविध कार्यक्रमों की समुचित व्यवस्था करना आवश्यक है। वस्तुतः पाठ्यक्रम शिक्षक के हाथ में एक साधन है जिससे वह अपने विद्यालय में अपने उद्देश्य के अनुसार अपने छात्र को कोई भी रूप दे सकता है।

What does this title, "Common Learning mean? It means that this course consists of learning experiences which everyone needs to have, regardless of that occuption he may expect to follow or where he may happen to live. "Common learnings extends through the three years of high-school and the two year of community Institute. It meets for two periods daily, in grades ten, eleven and Twelve and for one period daily, in grades thirteen and fourteen. It is required of all students.

In Moder education the term core has come to be applied to what part of the experiences curriculum which is concerned with those types of experiences, thoughts neccessory for all learners in order to develope certain behaviour competencies considered

neccessory for effective living in our democratic society.

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, समाज-शास्त्रीय तथा राष्ट्रीय आधारों पर पाठ्यक्रम का विवेचन किया जाता है। पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त एवं नियम जिन विभिन्न आधारों पर निर्धारित किए जाते हैं, उन सब में मूल्यों को यथा स्थान दिया गया है। शिक्षक पाठ्यक्रम के द्वारा केवल बौद्धिक विषयों को ही नहीं सिखाता अपितु व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक विविध क्रियाकलापों, नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का उसमें समावेश करता है। पाठ्यक्रम में संस्कृति के संरक्षण, हस्तान्तरण तथा नव-सृजन के लिए प्रावधान करता है। पाठ्यक्रम में विषयों का समावेश, उपयोगिता वास्तविकता एवं सांस्कृतिक संरक्षण आदि तीनों ही दृष्टियों से होनी चाहिए अर्थात् पाठ्यक्रम में मानव जाति के अनुभवों पर केन्द्रित विषयों को भी उतना ही स्थान मिलना चाहिए जितना कि तात्कालिक उपयोगिता के विषयों को।

धर्म मनुष्य को पूर्णतः संतुलित बनाता है इसके लिए जरूरी है जिन्दगी में अनुशासन और प्रेम को महत्व दिया जाए। व्यक्ति मूलतः सात्विक होता है। सद्‌गुणों का समूह ही जीवन मूल्य है। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने नज़रिए से मूल्य को देखता है। व्यक्ति के इस वैभिन्य वैचारिक मूल्यों से मिर्ज़ा गालिब का एक शेअर याद आ रहा है।

हर शख्स बना लेता है अखलाक़ का भयार।

अपने लिए और, औरों के लिए और।।

अर्थात् व्यक्ति अपने व्यवहार मूल्यों की भी एक सीमा निर्धारित कर लेता है। वह अपने लिए तो कुछ और होता है और दूसरों के लिए कुछ और होता है।

अतः सात्विक मनुष्य को सद्‌मूल्यों एवं नीतिगत ज्ञान प्रदान किया जाए जिससे उच्च आदर्श एवं सद् का व्यवहार सर्वत्र परिलक्षित हो।

संदर्भ

1. मूल्यपरक शिक्षा और समाज नत्थुलाल गुप्ता प्रथम संस्करण, 2000 नमन प्रकाशन, नई दिल्ली

2. Ronald C. Founce & Nelson L. Bossing, "Developing the Core Curriculum".

3. Quted in Developing the Core Curriculum

4. शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, डॉ. लक्ष्मीलाल के. ओड़, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

मूल्य संवर्धन में पाठ्य-सहगामी क्रियाओं की भूमिका

काली शंकर मिश्र
शिक्षाचार्य

मूल्य संवर्धन में सहयोगी पाठ्य-सहगामी क्रियाएं

कहा गया है कि (Value can be caught, but not to be taught) अर्थात् मूल्य ग्रहण किए जा सकते है, लेकिन पढ़ाएं या सीखाए नहीं जा सकते है। इस दृष्टि से विद्यालयों में पाठ्य सहगामी क्रियाओं की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। जहाँ छात्र परिवेश द्वारा मूल्यों को स्वानुभव से ग्रहण करते है।

1. सांस्कृतिक कार्यक्रम (Cultural Programmes)–

विद्यालयों में समय-समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है तथा सभी विद्यार्थियों को समारोह में किसी न किसी रूप में हिस्सा लेने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के ऐतिहासिक सामाजिक व धार्मिक कथानकों पर आधारित नाटक व नृत्य नाटिकाएँ रंगमंच पर प्रस्तुत किए जा सकते है। जिनमें किसी प्रकार नैतिक शिक्षा छिपी हो।

इस प्रकार के कार्यक्रमों के माध्यम से विद्यार्थी को अपनी सांस्कृतिक धरोहर, आदर्श तथा सामाजिक परिस्थितियों व विसंगतियों का भी ज्ञान होता है, तथा इन विसंगतियों के दुष्परिणामों के प्रति एक चेतना जाग्रत

होती है। रंगमंच पर सामाजिक-राजनैतिक भ्रष्टाचार, पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याओं पर आधारित विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा बालकों व नवयुवकों में ऐसे संकटो के प्रति जागरूकता उत्पन्न होती है तथा इन समस्याओं से निपटने के लिए उनमें वांछनीय मूल्यों का प्रस्फुटन और संचारण भी होता है।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों के द्वारा धार्मिक सहिष्णुता, भाईचारा, एकता, उदारता, सेवा भाव, मिलजुल कर कार्य करने आदि जैसे सांस्कृतिक व सामाजिक मूल्यों के आरोपण के साथ-साथ सौन्दर्य बोधात्मक मूल्यों का भी विकास होता है।

(2) खेलकूद (Games and Sports)–

विद्यालयों में खेल कूद के कार्यक्रम अवश्य होना चाहिए क्योंकि खेल के मैदान में विद्यार्थी भाई-चारा, सहकारिता मिलजुल कर कार्य करना अपने टीम के साथियों का ध्यान रखना अनुशासन, नेतृत्व, हार-जीत के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, प्रजातांत्रिक मूल्यों के साथ-साथ सबसे महत्वपूर्ण मूल्य ''स्वास्थ्य मूल्य'' को भी ग्रहण करता है।

(3) श्रव्य-दृश्य कार्यक्रम (Audio-Visual Programmes)–

पाठ्य सहगामी क्रियाओं के अंतर्गत विद्यालय में शिक्षाप्रद, फिल्में दिखाई जा सकती हैं, जो देशप्रेम महा-पुरुषों के जीवन, अनेक सामाजिक समस्याओं, पर्यावरण तथा विज्ञान पर आधारित हो। फिल्मों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है विद्यार्थियों में राष्ट्र प्रेम, साहस, सहिष्णुता, त्याग, पर्यावरण, प्रेम तथा अन्य सामाजिक मूल्यों का आरोपण हो सकता है।

(4) विभिन्न पर्वों का आयोजन (Organising different festivals)–

पन्द्रह अगस्त 26 जनवरी जैसे राष्ट्रीय पर्वों के अतिरिक्त विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित पर्व जैसे कि होली दीवाली, ईद, क्रिसमस, बैसाखी आदि का आयोजन किया जा सकता है। इसमें उनमें समीपता (Cohisiveness), भाई-चारा, सहकारिता, सर्वधर्म, समभाव, सह अस्तित्व

जैसे मूल्यों का विकास सम्भव है।

(5) सामूहिक कार्यक्रम (Community Programmes)–

विभिन्न समुदायों के छात्र-छात्राओं को आपस में मिलने और अंतक्रिया (Interact) करने की अनुमति दी जानी चाहिए जिससे सामुदायिक सौहार्द, समीपता परस्पर सम्मान, सहिष्णुता जैसे मूल्य विकसित हो सकते हैं।

(6) धार्मिक कार्यक्रम (Religion Programmes)–

धर्म रहित शिक्षा पंगु है, अत: आवश्यकता है कि शिक्षा संस्थानों में सभी धर्मों की शिक्षा समभाव से दी जाए धार्मिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का अंग होना चाहिए, लेकिन ध्यान यह रखना है शिक्षकों का स्वयं का दृष्टिकोण उदार हो वे स्वयं सर्व धर्म समभाव रखते हों। सभी धर्मों का एक ही सार है, वह है ''मानवता'' यही धार्मिक शिक्षा का केंद्रीय विचार होना चाहिए। विद्यार्थी स्वयं विभिन्न धर्म ग्रन्थों को पढ़कर समझें कि किसी भी धर्म में हिंसा, आतंक घृणा आदि अपमूल्यों को स्थान नहीं है, सभी धर्म प्रेम और मानवता का ही पाठ पढ़ाते हैं। इस प्रकार की क्रियाओं द्वारा विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों जैसे प्रेम, भाई, चारा तथा अनेक आध्यात्मिक मूल्यों का भी विकास सम्भव है।

(7) समाज सेवा कार्यक्रम (Social Service Programmes)–

समाज सेवा कार्यक्रमों के अन्तर्गत विद्यार्थियों को घटना स्थल पर ले जाकर प्रत्यक्ष अनुभव कराया जा सकता है। भूकम्प पीड़ित, सूखा ग्रस्त तथा बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों, विभिन्न प्रकार के अस्पतालों, अनाथालयों, विकलांग केन्द्रों, कुष्ठ आश्रमों, मलिन बस्तियों, सुदूर ग्रामीण अंचलों आदि स्थानों पर विद्यार्थियों को ले जाकर दु:ख-दर्द का अनुभव कराया जाए तथा उन्हें राहत कार्यों में भी सम्मिलित किया जाए तभी उनमें संवेदनशीलता, दया, सेवा आदि अनेक मानवीय मूल्यों की अनुभूति हो सकती है।

Value Crises And Possible Solution

Kaushal Kumar Jha

The Almighty God created this world with all amenities for all to achieve the highest goal of life.

Our lovely blue planet, the Earth. is the only home we know. Venus is too hot. mars is too cold. But the Earth is just ritght, a heaven for humnas. After all we eveoled here. But our congenital climate ay be unstable. We are perturbing our poor planet in serious and Contradictory ways. Is there any danger of driving the environment of the earth towards the planetary Hell of Venus or the global ice age of Mars? The simple answer is that nobody knows. The study of the global climate, the comparison of the Earth with other worlds, are subjects in their earliest stages of development. They are fields that are poorly and grudgingly funded. In our ignorance, we continue to push and pull, to pollute the atmosphare and brighten the land, oblivious of the fact that the long-term consequences are largely unknown.

Our intelligence and our technology have given us the power to affect the climate. How will we use this power? Are willing to tolerate ignorance and complacency in matters that affect the entire human family? Do we value short-term advantages above the welfare of the earth? or will we think on longer time scales, with concern for our children and our grand children, to understand and protect the complex life support system of our planet? The Earth is a tiny and fragile world. It needs to be cheished?

S.B.Chawan·Committee Report presented to the Rajya Sabha on February 26, 1999 states : values are principles which direct our

actions and activieties. They are in -buily in our society common to not only all the communities but also to all religions at all times. These values, if deteriorded will hasten or accelerate the break-down of family, society and nation as a whole India has an age-but also to all religgions at all times. These values if deteriorated will hasten or accelerate the breakdoen of family, society and nation as a whole India has an age-old tradition of values interwoven in the natinal fabric. although there has been advancement in science and technology, there has been general erosion of valuses, which is reflected in day-to-day life of large section of present societ. Our young generation under the growing influence of negative aspects of western culture is stranded on the crossroads, not able to decide which way to take. (Aruna Roy & Others vs. Union of India, Supreme court, write petition,98 of 2002, dated 12.09.2002)

Einstein, the gratest scientists of our times expresed strongly in favour of values to strengthen the social fabric of the society. He said: A positive aspiration and effort for an ethical and mral configuration of our common life is of overriding importance. Here,not science can save us. I belive, indeed solely the practical and factual in our education has led directly to te importance of ethical values.

Mind has to be loosened from misdeeds(durvyapara) and engaged in azquiringvirutes (sadgunas). In Gieta, Lord Krishna talks ablut developing human values and says that a mind which has divine qualities (daivisampatti) has santi. These values make us untrospective and correct our personality.

There is growing recognition that many adolescents are not sufficiently prepared to deal with te demands of modern society. Traditional mechanisms for passing on lifeskills,(e.g.family, community, role models, cultural traditions) may no longer be dequate in many communities. The reasons given for this include the weakening of traditional support structures as urbanization breaks up the etended family. There is also the power of the the media in shaping the development of youth and the rapid social changes that make the lives of young people, their expectations, values and opportunities so different from that of thesir parents. In addition,

adole scents face increasing risks to their health and development, cush as HIV/AIDS abuse, stress, violence and suicides.

How can we overcome these problems of 21st centur. The ansers is the importing of lifeskills education with values as the most important ingredient.

Lifeskills education is a unified and developmental approach to help children and adolescents learn how to deal with difficulties of daily life, growing up and risk sitations. Through long-term curriculam over a number of ears of schooling, many diverse needs and problems can be addressed, based on the same underlying pedagogival approach - the learning and application of lifeskills. Likeskills education is an essential component of health and values promotion. It is not a Panacea for all problems, but is an important aspect for addressing young people's needs in the face of a wide range of problems, including drug abuse, violence, HIV/AIDS and a wide ranace of needs, including the promotion of safety peace and human rights.

National Education Policey (1986)expressed:

"In our culturally plural society, education should foster universal and eternal values oriented towards the unity and inteegrity of our people. Such value orientation should help climinate obscurantism, religious fanaticism, violence, superstitution and fatalism".

Values education is not only restrivted to students but is relevant to all categories of people whether in business or industry or politics or civil service. Only value education can transform the indivifuals and has the potentiality to change the ills of the present day society.

It would not have been necessary to mention religion, or belief amounting to what is understood by religion, so explivitly in this context if it were psychologically possible to provide a moral observation point apart from the affiliation or identification with the ethical teachings of paricular religions. It is the gravity of historical associations that enables us to stand on our feet. Otherwise

human beings float without any sense of direction from one hastily adopted view-point to another. If education can inculate thoughtfulness and reverence and demonstrate the need to belive, it will have fulfilled the real objects of religious and moral instruction.

However, we are not able to inject values in the people as the atmosphere is vitiated all aound. The future of the country depends upon the people who are dedicated, detached and possess values essential for self-development, and national development. The University Education Commission (1948) rightly feels that:

"Moral and religious instructions do not help in moral improvement. What we need is not the importing of instruction but the transmitting of vitality. We must cuvilise the human heart. Education of the emotions and discipline of the will are essential parts of a sound system of education."

Prof. R.T.Deopurkar rightly obsered that values in the educational systems of modern india need to be revised in the light of the values in the educational systems in ancient India and their Critical evaluation, because the educational systems in free India can best be developed on the sund foundation of the values of our own history, traditions, conventions and heritage. We may take the best elements of the east and the west, both ancient and modern,and tryto develop our own national values in modern Indian Education. Any blind initation of a foreign schems is bound to fail to flourish on the native soil if it does not take into consideration our oen past history, tratitions, conventions and heritage of values in life and education.

References

1. Goel,Aruna and Goel,S.L.Deep &Deep Publications Pvt.Ltd.,Rajouri Garden, New Delhi

2. Mujeeb,M., Meenakshi Prakashan,Meerut,1971




श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय) बी-4, कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली-110016
द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी
30 - 31 मार्च, 2015
अध्यापक शिक्षा में मूल्यमीमांसा: वर्तमान परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियाँ
Axiology in Teacher Education: Present Context and Challenges
ज्ञान-विज्ञान संकाय
विभाग)


Dr Rachna Verma Mohan
Prof. R.P.Pathak
Head & Dean